गुरुवाणी

भाग-३

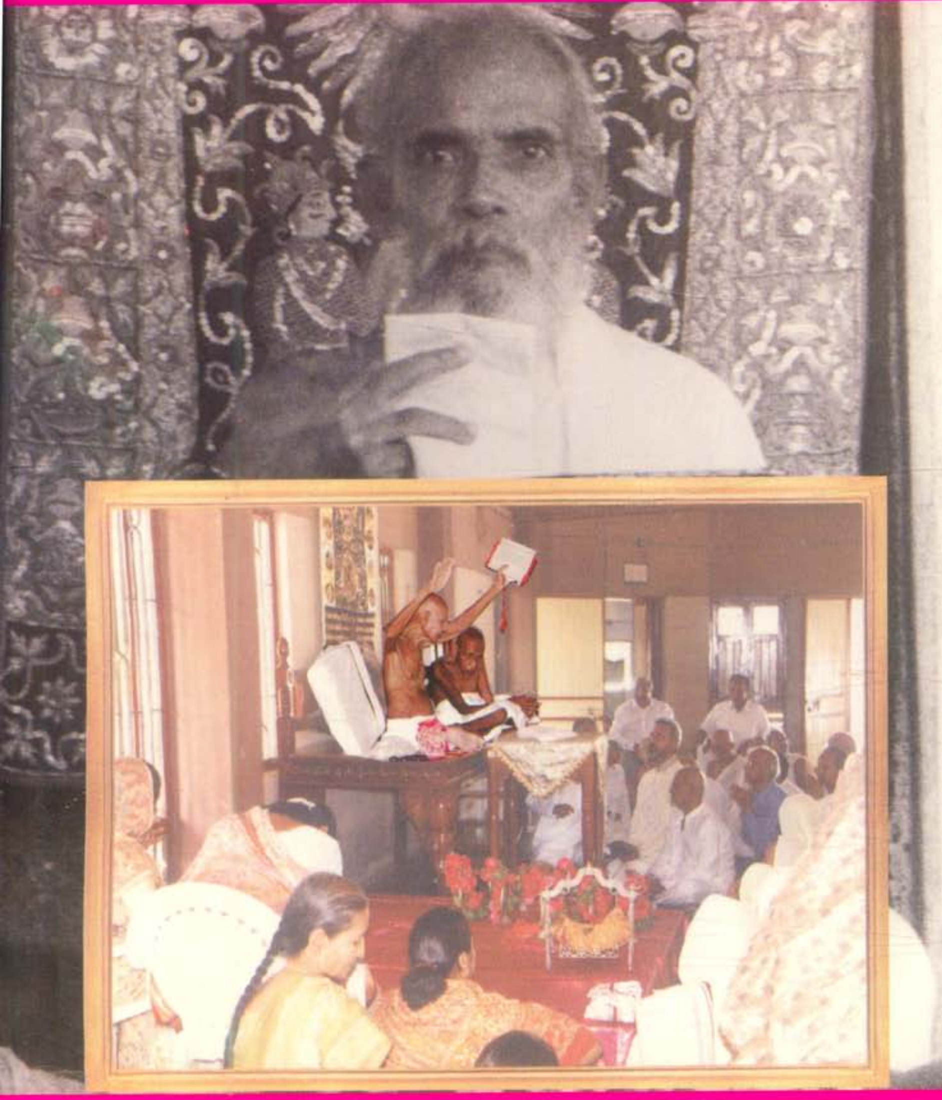

पूज्यपाद गुरुदेव मुनिराजश्री भुवन विजयान्तेवासी

मुनि जंबुविजय

गुरुवाणी

भाग-३

विक्रम संवत् २०४१, समीग्राम के चातुर्मासान्तर्गत
दिये गये प्रवचन

प्रवचनकार

पूज्यपाद गुरुदेव मुनिराज श्री भुवनविजयान्तेवासी
मुनिराज श्री जम्बूविजयजी महाराज

सम्पादिका

साध्वी श्री जिनेन्द्रप्रभाश्रीजी

हिन्दी अनुवादक

साहित्य वाचस्पति महोपाध्याय विनयसागरजी

प्रकाशक

श्री सिद्धि-भुवन-मनोहर जैन ट्रस्ट, अहमदाबाद, (गुजरात)

प्रकाशक :-

श्री सिद्धि-भुवन-मनोहर जैन ट्रस्ट
अहमदाबाद (गुजरात)

मूल्य	:	सदुपयोग
हिन्दी आवृत्ति	:	प्रथम संस्करण
प्रति	:	१०००
©	:	प्रकाशकाधीन
प्रकाशन वर्ष	:	सन् २००८, वि. सं. २०६५

प्राप्ति स्थान :-

१. अशोक भाई बी. संघवी,
c/o महावीर ट्रेडर्स
४१०, दवा बाजार,
शेफाली सेंटर के सामने, पालडी,
अहमदाबाद - ३८० ००६
फोन - ०७९-२६५७८२१४ / मो. ९८२५०३७१७०

२. अजयभाई - अहमदाबाद - मो. ९८२५०३०६५८

मुद्रक - मुद्रेश पुरोहित
सूर्या ओफसेट
आंबली, अहमदाबाद - ३८० ०५८
फोन - ०२७१७-२३०११२

प्रस्तावना

गुणी एवं गुणानुरागी, मुक्त विचार रूपी गगन में विचरण करने वाले, जङ्गम विद्यापीठ के समान पूज्य गुरुदेव का गतवर्ष अहमदाबाद जैन सोसायटी में चौमासा था। उस समय ग्राम **नाना आसम्बिया** निवासी **कुलीन भाई मोरारजी गाला** तथा **कल्याणजी लालजी नन्दु** कच्छ में पधारने हेतु विनंती करने के लिए आए। पहले तो पूज्य गुरुदेव ने अस्वीकार कर दिया, परन्तु आगन्तुकों का कहना था कि कच्छ बहुत समय से मेघराजा से वंचित है। आप वहाँ पधारें और अठारह अभिषेक के द्वारा कच्छ की अनेक वर्षों से प्यासी भूमि को हरियाली युक्त बनावें और अबोल प्राणियों को बचावें। पूज्य गुरुदेव तो करुणा के सागर! स्वयं के लिए नहीं किन्तु जीवों की रक्षा के लिए सब कुछ करने को तैयार। उनके सत्याग्रह के कारण पूज्यश्री ने कच्छ में आने की स्वीकृति तो प्रदान कर दी किन्तु चौमासे के बाद शंखेश्वरजी आने पर उनका स्वास्थ्य अचानक ही अधिक खराब हो गया। श्रावकगण **शंखेश्वरजी** में पुनः विनंती के लिए पधारे। उस समय स्वास्थ्य अधिक अस्वस्थ होने पर भी जीवों पर करुणा के कारण कच्छ का दुष्काल दादा की कृपा से दूर हो इस भावना से और उनके प्रत्येक कार्य में तन, मन और धन से साथ देने वाले **मोरारजी भाई** तथा **कल्याणजी भाई** की तरफ से कृतज्ञ भाव तथा दाक्षिण्यता के कारण कच्छ में पधारने की एवं नाना आसम्बिया में चौमासा करने की स्वीकृति दी। ग्रीष्म ऋतु की भयंकर गर्मी में ४०० किलोमीटर का विहार कर पूज्य गुरुदेव कच्छ में पहुँचे। तत्पश्चात् वैशाख सुदि छठ के दिन से समस्त कच्छ में श्रावकों द्वारा अभिषेक की योजना बनी। पूज्य गुरुदेव तो भद्रेश्वर तीर्थ में रहे। सुन्दर रीति से अभिषेक पूर्ण होने के बाद धीरे-धीरे विहार करते हुए पूज्य गुरुदेव ने संवत् २०५३ के आषाढ़ सुदि दूज को नाना आसम्बिया

में चातुर्मास हेतु प्रवेश किया। छोटा होने पर भी मनोहारी और भक्तिभाव से पूरित इस ग्राम में **कुलीनभाई मोरारजी गाला परिवार ने** तथा **कल्याणजी लालजी नन्दु परिवार ने** चातुर्मास में साधर्मिक भक्ति का अत्यधिक लाभ लिया और स्वयं की लक्ष्मी को सार्थक किया।

अट्ठारह अभिषेक के अर्न्तगत भगवान का तो कुछ ही कलशों के द्वारा ही अभिषेक किया किन्तु करुणा के सागर भगवान ने समग्र कच्छ की भूमि को कई गुणा कलशों से नहला दिया। ऐसे महापुरुष के पुनीत चरणों से कच्छ की धरती धन्य बनी, हरियाली बनी। केवल लोक ही नहीं अपितु पशु–पक्षी भी तृप्त हुए। कितने ही वर्षों से समग्र कच्छ के निवासियों ने ऐसी वर्षा की झड़ी देखी नहीं थी। जब भगवान ने पृथ्वी को हरियाली युक्त बनाया तब पूज्य गुरुदेव ने लोगों के हृदय को आर्द्र–आर्द्र कर दिया।

चौमासे में पूज्यश्री ने **पूज्य शान्तिसूरिजी महाराज** विरचित **धर्मरत्नप्रकरण** नाम के सुन्दर ग्रन्थ पर व्याख्यान प्रारम्भ किया। उस ग्रन्थ में श्रावक के २१ गुणों का वर्णन आता है। सुन्दर और सरल शैली में श्रोताओं के हृदय में आर–पार उतर जाए ऐसा वर्णन पूज्य गुरुदेव ने किया। उसमें से ११ गुणों का वर्णन गुरुवाणी पुस्तक के प्रथम एवं द्वितीय भाग में आ गया है। शेष १० गुणों का वर्णन इस तृतीय भाग में दे रहे है। पूज्य गुरुदेव द्वारा भिन्न–भिन्न समय में तथा भिन्न–भिन्न स्थलों में दिये गये व्याख्यानों को मैंने उन–उन तिथियों में संकलित किया है। प्रारम्भ में धर्म कैसा होना चाहिए इसकी ओर संकेत किया और फिर गुणों का वर्णन किया है। ११ गुण निम्न हैं :– **१ मध्यस्थ २ गुणानुरागी ३ सत्कथा ४ सुपक्ष से युक्त ५ विशेषज्ञ ६ सुदीर्घदर्शी ७ वृद्धानुग ८ विनीत ९ कृतज्ञ १० परहित चिन्तक ११ लब्धलक्ष्य**। साथ ही नवपद, दीपावली और ज्ञानपंचमी के व्याख्यान का भी संकलन है।

सचोट, सुन्दर और सरल शैली में जनता को आकर्षित करते हुए पूज्य गुरुदेव के प्रवचन पहले और दूसरे भाग में प्रकाशित होने पर लोगों की अत्यधिक मांग बढ़ गई। तीसरे भाग की भी अत्यधिक आतुरता से प्रतीक्षा होने लगी। इसी के साथ ही **कुलीनभाई** तथा **कल्याणभाई** ने भी

कहा कि चौमासे के व्याख्यानों का संग्रह पुस्तक के रूप में शीघ्र ही प्रकाशित किए जाएँ और इसके प्रकाशन का सारा लाभ हम दोनों लेंगे। लाभार्थी के सहयोग एवं पूज्य गुरुदेव की कृपा से ये व्याख्यान पुस्तक के रूप में प्रकाशित किए गए।

यह काम मेरे लिए अत्यन्त कठिन होते हुए भी **पूज्य तारक गुरुदेव की कृपा** और संघमाता शतवर्षाधिकायु पूज्या माताजी **श्रीमनोहरश्रीजी** महाराज सा. (पूज्य **जम्बूविजयजी** म. सा. की सांसारिक मातुश्री) तथा पूज्य सेवाभावी गुरुदेव श्री **सूर्यप्रभाश्रीजी** म. सा. आदि का शुभाशीष ही मेरा प्रेरक बल रहा है। वर्तमान में संयम जीवन की अप्रमत्त भाव से आराधना करने वाले मेरे सांसारिक पूज्य पिता श्री **धर्मघोषविजयजी** महाराज तथा मातुश्री **आत्मदर्शनाश्रीजी** म. सा. के स्नेहाशीर्वाद से भी मुझे सम्बल मिला।

पूज्य गुरुदेव ने अन्तिम संशोधन पर दृष्टि डालकर त्रुटियों को दूर किया। उसके लिए मैं उनकी अत्यन्त ऋणी हूँ तथा **शिष्य परिवार** ने संशोधन में जो सहयोग दिया है उसके लिए भी मैं उनका आभार मानती हूँ।

पूज्य गुरुदेव के विशुद्ध विचार लोगों के हृदय तक पहुँचाने के लिए प्रेरणा देने वाले और पुस्तक मुद्रण की समस्त जिम्मेदारी लेने वाले श्री **अजयभाई** का भी मैं बहुत–बहुत आभार मानती हूँ।

अन्त में यह पुस्तक आज के युवावर्ग को भी सत्य पथ दिखाने के लिए और अनेक भव्यों को इस राह की ओर चलने के लिए प्रेरित करे यही मेरी मनोकामना है। वीतराग की आज्ञा के विरुद्ध कुछ लिखने में आया हो तो वाचकगण क्षमा करें।

यह पुस्तक वात्सल्यमयी गुरुमाता के पवित्र चरण कमलों में समर्पित करके मैं यत् किन्चित् रूप से ऋण मुक्त बनने की वान्छा करती हूँ।

कार्तिक वदि १२, सं. २०५३ **–मनोहरसूर्यशिशु**
नाना आसम्बिया (कच्छ)

अनुक्रमणिका

धर्म कैसा?:- १-६
* अहिंसा युक्त धर्म १
* प्रमोद भावना ४
* अब्राहम लिंकन ४
* करुणा भावना ५
* मध्यस्थ भावना ६

संयम से युक्त धर्मः- ७-१२
* संयम के भेद ७
* मन चंगा तो कठौती में गंगा ७
* प्रसन्नचन्द्र राजर्षि ८
* ज्ञानी गुरु और वृद्ध शिष्य ११

वाणी का संयमः- १३-१७
* धर्म उत्कृष्ट मंगल है १३
* स्टीयरिंग पर काबू न रहे तो १३
* २७ वर्ष तक एक ही पाठ १४
* काया का संयम १५
* जीव हरण करने वाली लक्ष्मी १५

काया का संयमः- १८-२३
* समाधि कैसे मिले? १८
* आँख का असंयम-इलाचीकुमार १८
* रस्से पर ही केवलज्ञान १९
* कान का असंयम २०
* रौहिणेय चोर २१
* अभयकुमार की निष्फलता २२

धन नहीं धर्म का संग्रह करोः- २४-२९
* भयंकर भूतकाल २४
* पानी के पैसे २५
* धन की जल समाधि - दो भाईयों का दृष्टान्त २६

आवश्यकता का संयमः- ३०-३४
* मानव की पूंजी ३०
* आवश्यकताओं को कम करो ३१
* भीतर तो देखो? ३२
* विवाह अर्थात् प्रभुता में प्रयाण या पशुता में ३३
* सयाजीराव गायकवाड ३३

धर्म मित्र कैसा हो ?:- ३५-४१
* धर्म राजमार्ग है ३५
* चार गति का वर्णन ३५
* हमारा सदा का साथी ३७
* तीन मित्रों का रूपक ३८

अनमोल रत्नः- ४२-४७
* बंगले का सच्चा मालिक कौन? ४२
* प्राणप्रियमित्र - शरीर ४३
* वार-त्यौहार का मित्र-स्वजनवर्ग ४३
* माँ-बाप की ओर कैसी निर्लज्जता....! ४४
* पहचान वाला मित्र-धर्म ४४
* चिन्तामणिरत्न की शोध करने वाले युवक की कथा ४५
* रत्न की परीक्षा ४६
* भगवान के साथ भी माया ४७

मानव जीवन की सार्थकता किसमें है?:- ४८-५०
* चिन्तामणिरत्नरूप धर्म ४८
* धन से धर्म खरीद सकते हैं क्या? ४८
* रत्न को प्राप्त करने वाला युवक ४९

मध्यस्थता:- ५१-५५
* भीष्मपितामह ५२
* बड़े मुल्ला का ताबीज ५३
* मध्यस्थ गुण- सोमवसु ब्राह्मण की कथा ५३
* धर्म कहाँ से प्राप्त किया जाए ५४

मध्यस्थता:- ५६-५९
* सुख का आभास ५६
* धर्म की शोध में निकला हुआ ब्राह्मण ५६
* सत्य की शोध करने वाला ब्राह्मण ५७
* गुरु की खोज में घूमता हुआ ब्राह्मण ५८

गुणानुरागी:- ६०-६५
* चार दुर्लभ वस्तुएं ६०
* बारहवाँ गुण - गुणानुरागी ६१
* गुणानुराग का प्रथम चरण ६१
* गुणानुराग का दूसरा चरण ६२
* गुरु दत्तात्रेय ६३
* सबसे अधिक चतुर-सोक्रेटिस ६३
* धूप की पूजा किसलिए? ६४
* परोपकारी स्वामी रामतीर्थ ६४
* लक्ष्मी के तीन रूप ६४

गुणानुराग:- ६६-७२
* सुख की चाबी ६६
* गुणानुरागी-अब्राहम लिंकन ६६
* डाकू में से संत ६७
* शाल-महाशाल ६८
* श्रोताओं के तीन प्रकार ६९
* संयम हेतु आपाधापी ७०
* गुणानुराग से केवलज्ञान प्राप्त हुआ ७१

गुणानुराग:- ७३-७९
* धर्मरूपी मूल्यवान लॉकर की चाबी ७३
* तृषातुर बन्दर ७३
* लोभ मेरे पाप से! ७४
* भगवान के साथ भी माया! ७५
* पहले शस्त्रविराम ७५
* गुणानुराग का तीसरा चरण ७६
* हम दो हमारे दो ७७
* सन्त और वेश्या का दृष्टान्त ७७

सत्कथा:- ८०-८४
* दया पात्र कौन? ८०
* चार विकथाएँ-१. स्त्री कथा ८१
* २. भक्त कथा ८२
* ३. देश कथा ८२
* ४. राज कथा ८३
* अजब अलौकिक शक्ति! ८३

सुपक्ष से युक्त:- ८५-८९
* डाकू से सन्त किसने बनाया? ८५
* वृद्धाश्रम की व्यथा ८६
* वाणी का चमत्कार! ८७

अंधेरे में भटकता जगत्:- ९०-९६
* सुदीर्घदर्शी ९०
* इस लोक का धन कहाँ तक? ९०
* साथ क्या आएगा? ९१
* दृष्टि रूपी चश्मा ९२
* आज का सुधरा हुआ? मानव ९२
* पश्चिमी अनुकरण ९३
* लॉर्ड कर्जन कट ९४
* राम रक्षक है तो कौन क्या बिगाड़ेगा? ९५
* किसकी रुचि? ९६

दीर्घ दृष्टिः- **९७-१०२**
* लिखा हुआ लेख मिथ्या नहीं होता है ९७
* कर्म राजा का झटका ९८
* खोखला धर्म १००
* स्थान रखने के लिए धर्म १०१
* धन को सम्मान देती दुनिया- (सेठ की कथा) १०१

दीर्घ दृष्टिः- **१०३-१०८**
* छिलके वाला धान १०३
* छोटी बहू का चातुर्य १०४
* पुण्य के चार भेद १०५
* विशेषज्ञ १०६
* अन्ध श्रद्धालु मूर्ख की कथा १०६

श्री सिद्धचक्र के व्याख्यानः- **१०९-११८**
* प्रथम पद १०९
* प्रथम अरिहंत कैसे? १०९
* विचारधारा का पुण्य ११२
* संसार एक समुद्र है ११४
* कामवासना के कारण ही पाप का मार्ग ११६
* मातृपितृभक्त श्रवण ११७

अरिहंत का नामः- **११९-१२५**
* मानवता बड़ा धर्म है ११९
* विचारों की प्रतिध्वनि- (चन्दन का व्यापारी) १२१
* अरिहंत शब्द भी महान है १२३
* व्यथा किस-किस की? १२४

वीतराग की वाणी और दर्शनः- **१२६-१३३**
* भूखी प्यासी वृद्धा माँ की कथा १२६
* दर्शन की अपूर्व शक्ति (पिता-पुत्र की कथा) १२७
* दर्शन की तन्मयता- (वृद्धा माँ की कथा) १२९
* जिन के ध्यान से जिन १३०
* सिद्धपद १३०
* सिद्ध का सुख कैसा? १३१
* सुख की व्याख्या १३२
* सिद्ध का वर्ण लाल क्यों? १३३

तीसरा पद आचार्य पदः- **१३४-१४१**
* शासन का दीपक १३५
* मानदेवसूरि महाराज १३६
* कालिकाचार्य १३७
* धर्म केवल विधि बन गया १३९

उपाध्याय-साधु-दर्शनपदः-१ **१४२-१५१**
* चौथा पद-नमो उवज्झायाणं १४२
* पाँचवाँ पद-नमो लोए सव्वसाहूणं १४३
* गुरु - यह तत्त्व है १४५
* छट्ठा पद-नमो दंसणस्स १४६
* समकित के भेद १४७
* समकित के आभूषण १४८
* भक्ति तीन प्रकार की १५०

दर्शन-ज्ञान-चारित्रः- **१५२-१५८**
* समकित का चौथा आभूषण १५२
* नास्तिक को पाठ पढ़ाने वाला प्रधान १५२
* तीर्थ सेवा १५३
* समकित के पाँच दूषण १५४
* सांतवाँ पद-नमो नाणस्स १५५

* आठवाँ पद-चारित्र पद १५६
* राग का त्याग और त्याग का राग १५६
* त्याग का भी अहंकार १५७

नौवाँ पद - नमो

तवस्स:- १५९-१६५
* तप के दो भेद १५९
* बाह्य तप के छ: भेद १५९
* अभ्यन्तर तप के छ: भेद १६२
* बाहुबली ने बल को अक्षय किया १६३

सिद्धचक्र का ध्यान:- १६६-१७२
* एक के पुण्य से अनेक बच गए १६७
* प्रश्न का निराकरण १६९
* किसमें से पुण्य बाँधा १६९
* चरक ऋषि की परीक्षा १७१

महामंत्र नवकार:- १७३-१७७
* तीन-तीन जन्मों को सुधारने वाला.....! १७३
* सम्पत्ति विष है १७५

वृद्धानुग:- १७८-१८३
* गुणस्वरूप धर्म १७८
* वृद्ध किसे कहें? १७९
* हृदयपारखी बुढ़िया की कथा १८०
* संग वैसा ही रंग १८२

वृद्धानुग:- १८४-१९१
* वाणी रूपी किरणें १८४
* घरडां गाडां वा (दृष्टांत) १८४
* अरर! बुड्ढा जी गया...! १८६
* मन्त्री पद के लायक कौन? १८८
* परिवर्तनशील जगत-सुबुद्धि मन्त्री की कथा १८९
* मन्त्री की योजना १९०

विनय:- १९२-१९७
* छ:हों खण्ड में जागृत शासन १९२
* श्रेय और प्रेय १९२
* विनय १९३
* नम्रता सबको अच्छी लगती है १९३
* पुष्पशाल की कथा १९४
* गुणों को ग्रहण करने के लिए पात्र १९५
* पिता-पुत्र का संवाद १९६

विनय:- १९८-२०३
* धर्म रूपी वृक्ष का मूल १९८
* विनयी कौन? साधु या राजपुत्र १९९
* चार प्रकार की बुद्धि २०१
* वैनियकी बुद्धि-दो शिष्यों का दृष्टान्त २०२

विनय:- २०४-२११
* विनय के अभाव में समाज की दुर्दशा २०४
* विनयी शिष्य का उत्तर २०५
* स्वर्ग यहीं है २०७
* नौ प्रकार का दान २०७
* वाणी का दान २०८
* काया का दान २०८
* नमस्कार दान २०९
* गुरुकृपा से क्या नहीं होता-पू. धर्मसूरि महाराज २०९

कृतज्ञता:- २१२-२१९
* भवचक्र का पूर्णविराम! २१२
* कृतज्ञता २१२
* शेयर बाजार का राजा २१४
* दो के स्थान पर दो लाख २१५

* माता-पिता का उपकार २१७
* विनयी पुत्र की आकुलता २१७
* जैसी करणी वैसी भरणी २१८

कृतज्ञता:- २२०-२२७

* शिष्य बनना सहज है २२०
* यहाँ ही स्वर्ग है २२१
* भर्ता का उपकार २२२
* उपकार का बदला! २२३
* धर्माचार्य का उपकार २२३
* अनन्त उपकारी षट्काय जीव २२४
* कृतज्ञी कुमारपाल २२५
* कुंभार टुकड़े की आयम्बिल शाला २२६

परहित चिन्तक:- २२८-२३६

* संज्ञा में डूबा हुआ जगत २२८
* शिवभक्त संन्यासी २२८
* धर्म की संज्ञा में डूब जाओ २२९
* परहित चिन्तक २३०
* विचारों का चमत्कार....! २३१
* विचारों के पुण्य से राजा बना २३३
* जीवदया प्रेमी-भणसाली २३५

लब्ध लक्ष्य:- २३७-२४०

* भगवान की दया अर्थात् क्या? २३७
* सफल होने के पाँच कारण २३८

दीपावली पर्व:- २४१-२४८

* पुण्यपाल राजा के आठ स्वप्न २४२
* जैसे के साथ तैसा २४६
* पाँचवें आरे का स्वरूप २४७
* छट्ठे आरे का स्वरूप २४७

ज्ञानपंचमी:- २४९-२५३

* अज्ञानता से भटकती आत्मा २४९
* अंधेरे को दूर करता हुआ कुटुम्ब २४९
* समस्त क्रियाओं का मूल श्रद्धा है २५१
* रत्नाकरसूरि महाराज २५३

श्री सिद्धगिरिमंडन श्री ऋषभदेव भगवान

श्री शत्रुंजयतीर्थाधिपति श्री आदीश्वरपरमात्मने नमः

श्री शंखेश्वरजी तीर्थमां बिराजमान देवाधिदेव

श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ भगवान

पूज्यपाद महातपस्वी गणिवर्य पं. श्री मणिविजयजी महाराज (दादा)ना शिष्यरत्न

पूज्यपाद संघस्थविर आचार्यदेव श्री १००८

विजय सिद्धिसूरीश्वरजी (बापजी) महाराज

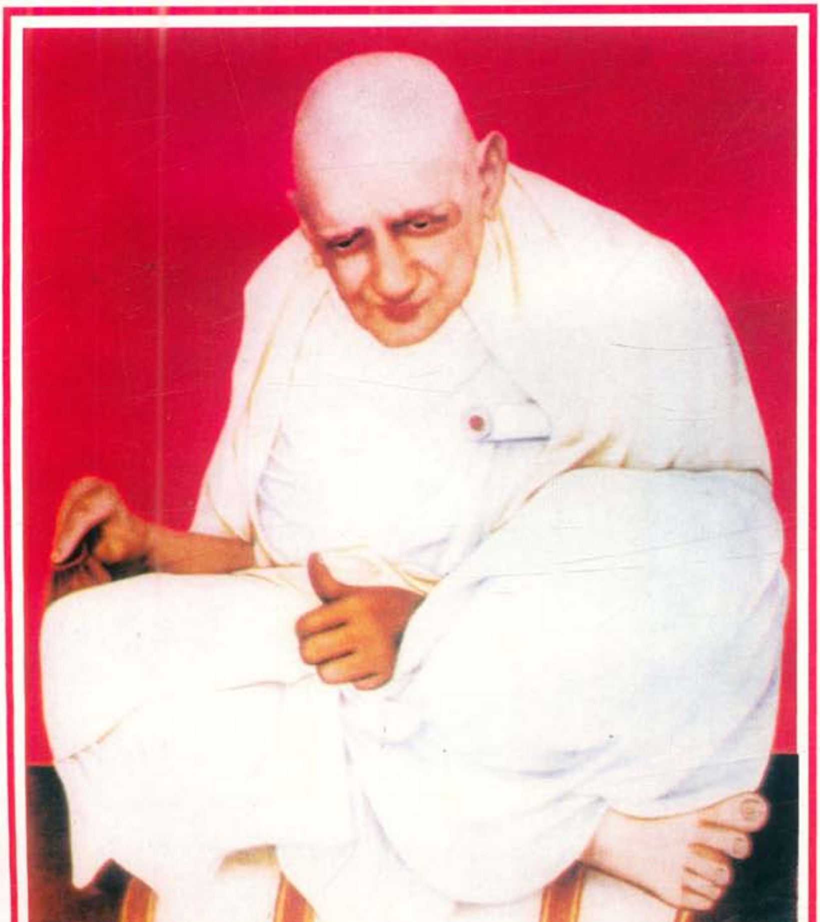

जन्म : वि. सं. १९११ श्रावण सुदि १५, वळाद (अमदावाद पासे)

दीक्षा : वि. सं. १९३४ जेठ वदि २, अमदावाद

पंन्यासपद : वि. सं. १९५७, सुरत

आचार्यपद : वि. सं. १९७५ महा सुदि ५, महेसाणा

स्वर्गवास : वि. सं. २०१५ भाद्रपद वदि १४, अमदावाद

पूज्यपाद संघस्थविर आचार्यदेव श्री १००८ विजयसिद्धिसूरीश्वरजी (बापजी)
महाराजना पट्टालंकार

पूज्यपाद आचार्यदेवश्री विजयमेघसूरीश्वरजी महाराज

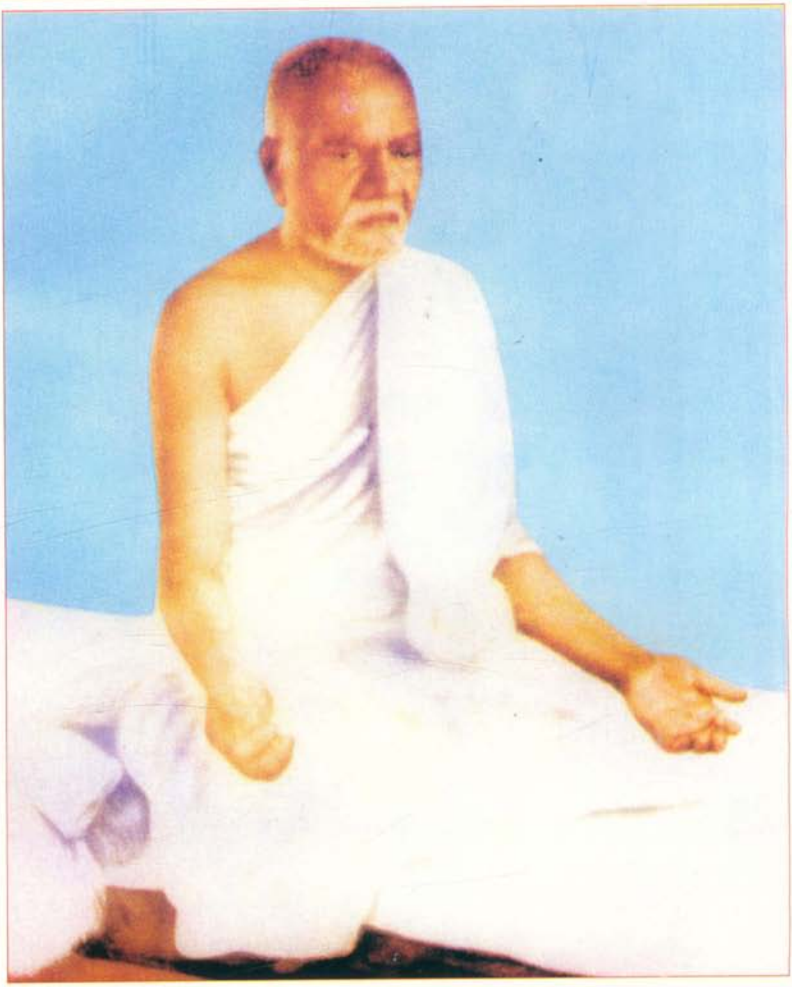

जन्म : वि. सं. १९३२ मागशर सुदि ८, रांदेर
दीक्षा : वि. सं. १९५८ कारतिक वदि ९, मींयागाम–करजण
पंन्यासपद : वि. सं. १९६९ कारतिक वदि ४, छाणी
आचार्यपद : वि. सं. १९८१ मागशर सुदि ५, अमदावाद
स्वर्गवास : वि. सं. १९९९ आसो सुदि १, अमदावाद

पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय संघस्थविर श्री १००८ आचार्यदेवश्री
विजयसिद्धिसूरीश्वरजी (बापजी) महाराजना पट्टालंकार
पूज्यपाद आचार्यदेवश्री विजयमेघसूरीश्वरजी महाराजना शिष्यरत्न

पूज्यपाद गुरुदेव मुनिराजश्री भुवनविजयजी महाराज

(मुनि जंबूविजय म.ना पिताश्री तथा गुरुदेव)

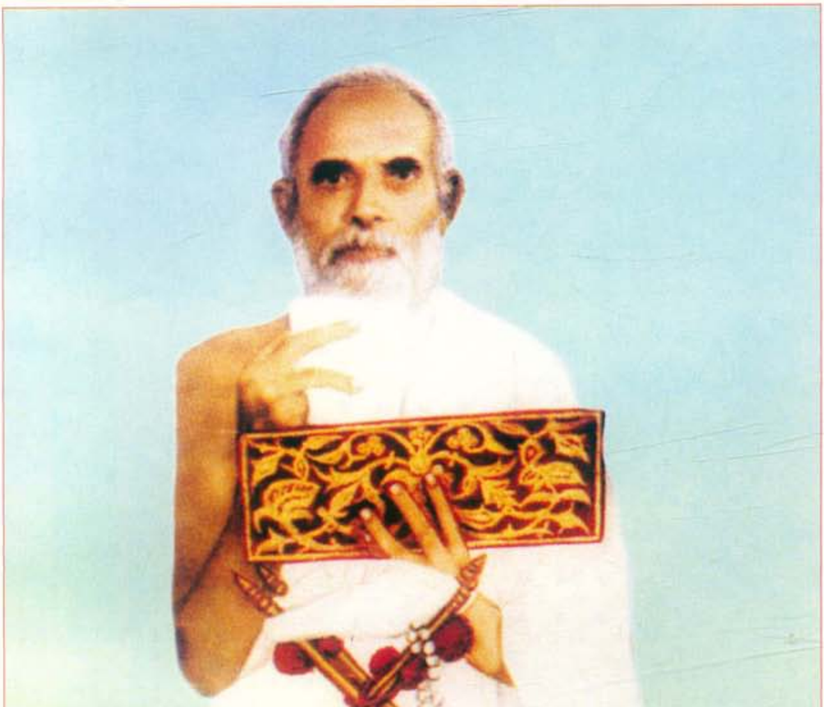

जन्म : वि. सं. १९५१ श्रावण वदि ५, शनिवार, ता.१०–८–१८९५, मांडल
दीक्षा : वि. सं. १९८८ जेठ वदि ६, शुक्रवार, ता.२४–६–१९३२, अमदावाद
स्वर्गवास : वि. सं. २०१५ महा सुदि ८, ता.१६–२–१९५९, शंखेश्वरजी तीर्थ

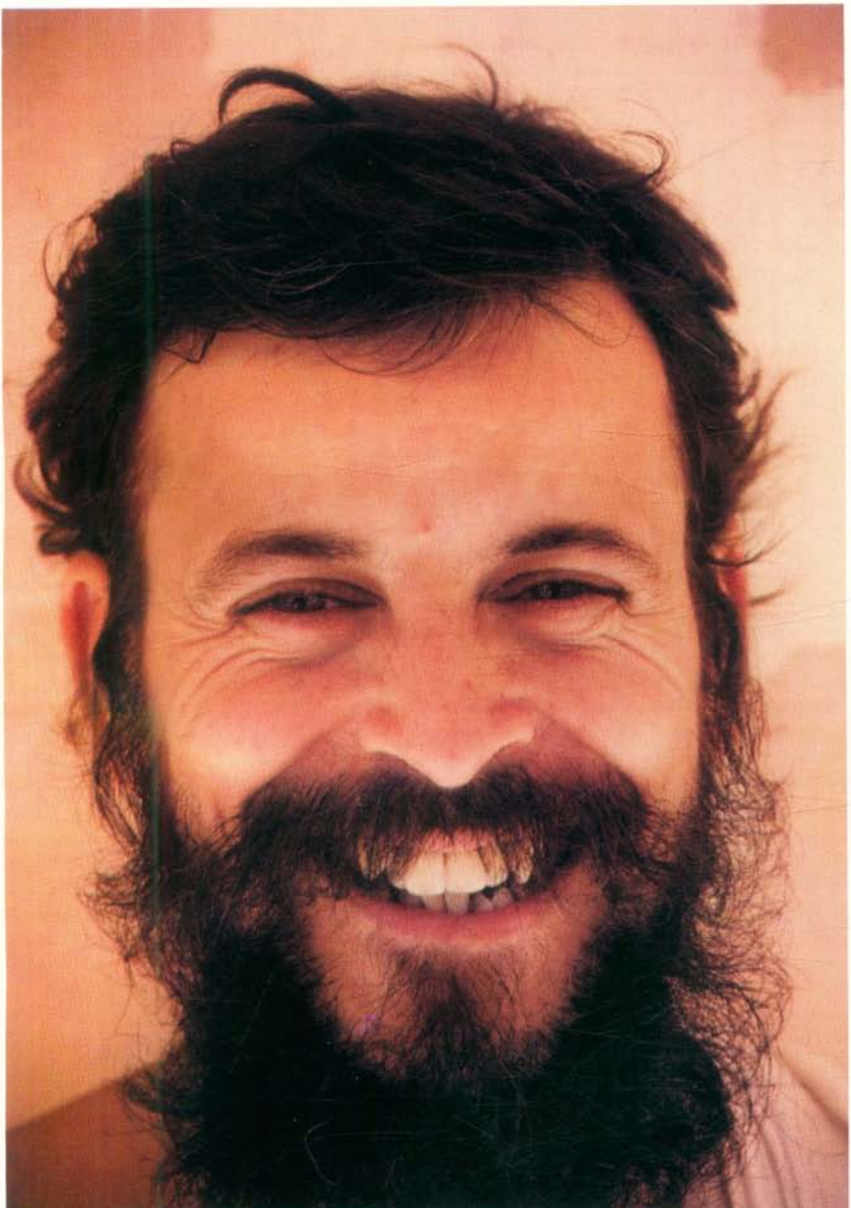

प्रातः वंदनीय

पू. साध्वीजी मनोहरश्रीजी म.सा. (बा महाराज)

विक्रम संवत १९५१ मागशर वद२, ता. १४-१२-१८९४, शुक्रवारे झंझुवाडामां पिता पोपटभाई तथा माता बेनीबेननी कुक्षिए जन्मेलुं तेजस्वीरत्न मणिबहेन, के जे छबील एवा हुलामणा नामथी मोटा थया अने बाळपणथी ज धर्मपरायण एवी आ तेजस्वी दिकरीने पिता मोहनलालभाई अने माता डाहीबहेनना पनोता पुत्र भोगीभाईनी साथे परणाव्या। वर्ष पर वर्ष वीतता चाल्या। जलकमलवत् संसारसुख भोगवतां एमनी दाम्पत्य-वेल पर पुत्रनुं पुष्प प्रगट्युं। नानी उंमरमां पडेलु धर्ममुबीज मणिबेनना जीवनमां हवे वृक्षरुपे फुल्युं-फाल्युं अने तेना फळ स्वरूपे पति अने पुत्रने वीरनी वाटे वळाव्या। जेओ प.मु.श्रीभुवनविजयजी म.सा. तथा पू.मु.श्रीजंबुविजयजी म.सा.ना नामे प्रसिध्धबन्या। पतिना पगले-पगले चालनारी महासतीनुं बिरूद सार्थक करता मणिबेने पण तेमना ज संसारी मोटा बहेन पू.सा. श्री लाभश्रीजी म.सा.ना चरणमां जीवन समर्पण कर्युं। तप, त्याग, समता, सहनशीलता जेवा गुणोने आत्मसात कर्या. ५७ वर्ष सुधी निरतिचारपणे संयम जीवननी आराधना करतां तथा वात्सल्यना धोधमां बधाने नवडावता ए गुरूमाता १०१ वर्षनी जैफ उंमरे संवत २०५१ पोषसुदि १० तां. ११-१-१९९५, बुधवारे पालिताणामां सिध्धाचलनी गोदमां समाई गया।

पूज्यपाद साध्वीजी श्री लाभश्रीजी महाराज (सरकारी उपाश्रयवाला)ना शिष्या

पूज्यपाद साध्वीजी श्री मनोहरश्रीजी महाराज

(मु. जंबूविजय म.ना संसारी मातुश्री)

जन्म : वि. सं. १९५१ मागशर वदि २, शुक्रवार, ता.१४-१२-१८९४ झींझुवाडा

दीक्षा : वि. सं. १९९५ महा सुदि १२, बुधवार, ता.१-२-१९३९ अमदावाद

स्वर्गवास : वि. सं. २०५१ पोष सुदि १०, बुधवार, ता.११-१-१९९५ रात्रे ८.५४
वीशानीमाभवन जैन उपाश्रय, सिद्धक्षेत्र पालिताणा.

संघमाता शतवर्षाधिकायु पूज्यपाद साध्वीजी
श्री मनोहरश्रीजी म. सा. ना शिष्या

साध्वीजी श्री सूर्यप्रभाश्रीजी महाराज

जन्म : वि.सं. १९७७, फागण वदि ६, सोमवार, आदरियाणा
दीक्षा : वि. सं. महासुदि १, रविवार, ता.३०–१–१९४९, दसाडा
स्वर्गवास : वि. सं. २०५१, आसोवदि १२, शनिवार, ता.२१–१०–१९९५, मांडल

धर्म कैसा?

आसोज वदि २

अहिंसायुक्त धर्म

परम कृपालु परमात्मा हमारे जीवन को मङ्गलमय बनाने के लिए धर्म का मङ्गलमार्ग बता रहे हैं। **धम्मो मङ्गल मुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो** धर्म यह उत्कृष्ट मङ्गल है, किन्तु कैसा धर्म? अहिंसा, संयम और तप रूपी धर्म ही मङ्गल का काम करता है। सर्वप्रथम हम अहिंसा कि व्याख्या समझें। अहिंसा अर्थात् कोई चलते फिरते जीव को मारना नहीं.... हम केवल इतनी ही व्याख्या करते हैं.... परन्तु परमात्मा ने अहिंसा का अत्यन्त सूक्ष्म रूप से वर्णन किया है। अहिंसा के बिना समस्त कार्य प्राण रहित शरीर को श्रृङ्गार करने जैसा है। किसी बड़े जीव के प्रति अथवा छोटे से छोटे जीव के प्रति हृदय में रहा हुआ थोड़ा सा द्वेष भी एक हिंसा का ही प्रकार है अतः सर्वप्रथम मन को शुद्ध करें। मन को शुद्ध करने के लिए चार भावनाएँ बताई गई है। भावना यह एक प्रकार का पौष्टिक रसायन है। जिस प्रकार शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाने के लिए मनुष्य रसायन का उपयोग करता है उसी प्रकार धर्म को स्थिर करने के लिए भावना यह उत्तम रसायन है। पहली भावना है **मैत्री भावना- अजातशत्रु अर्थात् कोई मेरा शत्रु नहीं है।**

अहमदाबाद में एक महान् कवि हुए थे। हम सब उन्हें जानते हैं। उस कवि का नाम था **दलपतभाई डाह्याभाई।** वे कदड़ा के नाम से पहचाने जाते थे। उनकी कविता भी कैसी? जब हिन्दुस्तान अंग्रेजो के अधीन हुआ और देश में चल रही अराजकता से मुक्त बना उस समय उन्होंने एक कविता बनाई थी।

वेर गयां ने झेर गयां वळी काला केर गया करनार
परनातीला जातीला शुं, संप करी चाले संसार
देख बिचारी बकरीनो पण, कोई न जातां पकड़े कान
ऐ उपकार गणी ईश्वरनो, हरख हवे तुं हिंदुस्तान

इस प्रकार की वे सुन्दर कविताएं बनाते थे.... इन कविताओं से बालकों को हित शिक्षा मिलती थी। परन्तु आज के शिक्षण की कविता का एक नमुना देखिए - **कालुडी कूतरीने आव्यां गलूडियां, चार काबरा ने चार भूरीया रे...** इस कविता में विद्यार्थियों को क्या सीखने का है? कुतिया ने चार बच्चों को जन्म दिया हो अथवा छः को इससे क्या मिलना है? आज का शिक्षण वास्तव में बालकों के भविष्य को सुधारने के बजाय बिगाड़ रहा है।

दूसरी तरफ अहमदाबाद में ही **डाह्याभाई धोलशा** नाम के कवि थे। वे भी कविता बनाने में प्रखर थे। दोनों एक-दूसरे की स्पर्धा करते थे। कदड़ा की कविताएं प्रकाशित हो तो धोलशा उसमें कमियाँ निकालते थे.... जब धोलशा की कविताएं जन समक्ष आती तो कदड़ा उसमें से कमियों को ढुंढने में लग जाते.... इस प्रकार दोनों कवि कविताओं के माध्यम से मजबूत दुराग्रह में बन्ध गये। खण्डन-मण्डन चलता ही रहा.... अनादिकाल से आत्मा में यह दोष चलता ही रहता है। यह किसी का अच्छा कर ही नहीं सकता। किसी का अच्छा देखता है, तो उसके पेट में खलबली मच जाती है। **आज के इंसान के दुःख की पुकार सुनोगे तो स्पष्टः ध्यान में आएगा की जो आवश्यक है, वह नहीं मिलता इसीलिए वे दुःखी नहीं है, किन्तु जो चाहिए वह नहीं मिलता उसके लिए दुःखी है। 'आवश्यकता' में प्रायः नम्बर निम्न चीजों का ही आता है जबकि 'चाहिए' में कौन सी वस्तु नहीं आती, यह प्रश्न है?** दुसरों के सुख को देखकर जलते रहते है यह भी एक प्रकार की हिंसा ही है। ये दोनों कवि एक दुसरे की उन्नति को नहीं देखते थे, किन्तु मनुष्य के

जीवन में कब परिवर्तन केन्द्र आएगा नहीं कह सकते? डाह्याभाई धोलशा जैन थे, हर वर्ष पर्युषण पर्व की आराधना करते थे। इस वर्ष भी पर्युषण पर्व आए और उन्होंने विचार किया कि इस पर्व का मुख्य अङ्ग क्षमापना है और यह भगवान् महावीर स्वामी द्वारा बताये गये धर्म के अतिरिक्त किसी अन्य धर्म में नहीं है। इतने वर्षों तक मैंने पर्युषण पर्व की आराधना की क्या वह वास्तविक है? अर्न्तमन ने कहा नहीं, तेरे मन में एक व्यक्ति के प्रति शत्रुभाव रहा हुआ है जब तक तू इस व्यक्ति से क्षमा मांगकर मन को शुद्ध नहीं करेगा तब तक तेरे द्वारा की गई समस्त आराधना निष्फल है। तप-जप या महोत्सव तभी सार्थक बन सकता है जब समस्त जीवों के प्रति मैत्री भाव बन्ध जाए। धोलशा ने मन की पुकार को स्वीकार किया। मन से निश्चय किया कि अब कदड़ा को मिलने के लिए जाना चाहिए। इस समय वास्तविक आराधना ही करनी है। जब तक एक भी प्राणी के प्रति मन में शत्रुभाव रहता है तब तक जीवन को सच्चा धर्म स्पर्श नहीं कर सकता। वे कदड़ा के यहाँ गये वहाँ कवि दलपत राम तो इस महाकवि को स्वयं के घर में बिना आमंत्रण के आते हुए देखकर चौंक पड़े। अरे! यह सत्य है या स्वप्न! मेरा कट्टर दुश्मन मेरे आंगन में! वे सन्मुख गये, पूछा- आज अचानक कैसे पधारे? तब धोलशा ने कहा- भाई! जब युद्ध विराम किया जाता है तब सफेद ध्वजा फहराई जाती है, बराबर है न! देखो, अब तुम्हारे मस्तक पर और मेरे मस्तक पर सफेद ध्वजा फहरा रही है, अर्थात् दोनों के सफेद बाल आ गये है। हम दोनों इस प्रकार कब तक लड़ते रहेंगे? यह समझकर मैं तुमसे क्षमा मांगने आया हूँ। यह सुनते ही कदड़ा प्रेम से मिले। ऐसे आलिंगनबद्ध हुए मानो बचपन के लङ्गोटिया मित्र हो! इस प्रकार धोलशा ने शत्रुता को खत्म कर मन को शुद्ध किया। जीवन में जो यह भावना प्रकट हो जाए तो जीवन की दिशा ही बदल जाती है और तभी वास्तविक अर्थ में अहिंसा का आचरण किया जा सकता है।

२. प्रमोद भावना

मैत्री भावना को पुष्ट करने वाली दूसरी भावना है **प्रमोद भावना- दुसरे का अच्छा देखकर प्रसन्न होना।** जगत् में अधिक वर्ग ऐसा है जो स्वयं के दु:ख से दु:खी नहीं है किन्तु दूसरे के सुख को देखकर दु:खी बनता है, यह भी हिंसा का ही एक प्रकार है। कहा जाता है - **दूसरे की आँख में पानी, तो दुर्जन के मुँह में पानी, और दूसरे के मुँह में पानी तो दुर्जन की आँख में पानी, सज्जन मनुष्य का स्वरूप इससे विपरीत होता है। दुसरे की आँख में पानी तो स्वयं की आँख में पानी, और दुसरे में मुख में पानी तो स्वयं के मुख में पानी।** सज्जन दूसरे के सुख को देखकर प्रसन्न होता है और दूसरे के दु:ख को देखकर द्रवित हो उठता है एवं उसको दूर करने के लिए तत्पर होता है।

अब्राहम लिंकन

अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन विक्टोरिया गाड़ी में बैठकर अदालत में जा रहे थे। मार्ग में उनकी दृष्टि एक गड्ढे में पड़े हुए सूअर पर गई। सूअर कीचड़ में डूब गया था और बाहर निकलने के लिए तड़फ रहा था किन्तु निकलने में असमर्थ था। अब्राहम लिंकन इस दृश्य को देखकर कांप उठे और उन्होंने तत्काल ही अपनी विक्टोरिया को रुकवाया। स्वयं नीचे उतरे, स्वयं ने ही कीचड़ में से सूअर को खेंचकर बाहर निकाला। लिंकन के साथ गाड़ीवान था, किन्तु उन्होंने उससे यह काम नहीं करवाया और स्वयं ने किया। ऐसा करते हुए प्रेस बंद पहने हुए कपड़ों पर कीचड़ के छींटे लग गए। उन्हीं कपड़ों से वे अपने कार्यालय में गए। उनके कीचड़ से सने हुए कपड़ों को देखकर दूसरे लोग यकायक बोल उठे - यह क्या? आपके कपड़े ऐसे कैसे हो गए? क्या आपके साथ मार्ग में कोई घटना हुई है? क्या आपके ऊपर किसी ने कीचड़ उछाला है? आप जल्दी से कहिए हम उसकी खबर ले लेंगे। सब लोग एक साथ गुस्से में बोले। उसी समय लिंकन के साथ रहे हुए व्यक्ति ने कहा - भाईयों, शान्त हो

जाइए। किसी ने कुछ नहीं किया है। कीचड़ में डूबे हुए एक सूअर को बाहर निकालते हुए कीचड़ के छींटे वस्त्रों पर लग गये हैं। यह सुनते ही सब लोगों ने तालियों के द्वारा प्रसन्नता व्यक्त की और स्वयं की खुशी जाहिर की। उसी समय लिंकन बोल उठे - भाईयों! मैंने सूअर को नहीं बचाया किन्तु मेरे हृदय में उसकी हालत को देखकर जो वेदना उत्पन्न हुई थी वह मैंने दूर की है। इस प्रकार की सज्जनता ही मनुष्य को उन्नत स्तर पर ले जाती है।

आज अधिकांश मनुष्य दूसरे के उत्कर्ष को देखकर भीतर ही भीतर जलते रहते हैं। मित्रों के उत्कर्ष को मित्र नहीं देख सकता, भाई, भाई के उत्कर्ष को नहीं देख सकता। बाहर से मीठी-मीठी बातें करता है, किन्तु हृदय से सुलगता ही रहता है। ऐसे मनुष्य को धर्म कैसे स्पर्श कर सकता है।

३. करुणा भावना

तीसरी भावना है करुणा भावना :- **'परदुःख विनाशिनी तथा करुणा'** अर्थात् करुणा को तीर्थंकर की माता कहा जाता है। आज हमारा चित्त इतना कठोर बन गया है कि उसको करुणा का पानी भी गीला नहीं कर सकता। इसी से कठोर कर्मों का बन्धन होता है और वह कर्मों का बन्धन उदय में आने पर वार, त्यौहार अथवा होली-दीवाली नहीं देखता है। स्वयं के घर में पुत्र का विवाह हो, पिताजी अस्पताल में हों, अचानक ही दुकान पर छापा पड़े, ऐसे अनेक कर्म अचानक ही उदय में आते हैं। इसीलिए ज्ञानी कहते हैं कि - सर्वप्रथम चित्त में करुणा होनी चाहिए। दूसरे के दुःख को देखकर हृदय काँप उठना चाहिए। हमारे पड़ोस में रह-रहे पड़ौसी बेचारे दुःख में आकण्ठ डूबे हुए हों और हम मौज मस्ती मना रहे हो तो विचार करना चाहिए कि हम क्या करें? वह अपने कर्मों से दुःखी हो रहा है, इस प्रकार की विचारधारा मनुष्य को पत्थर दिल का बनाती है। माना कि कदाचित् तुम तन से अथवा धन से कुछ नहीं कर

सकते, किन्तु मन में तो उस दुःख की प्रतिध्वनि पड़नी ही चाहिए। पड़ोस में किसी जवान लड़के की मौत हुई हो और हम दोपहर को भोजन के समय आम का स्वाद लें तो कैसा लगेगा? कितनी कठोरता होगी? हम उसे जीवित तो नहीं कर सकते, किन्तु रुदन करते हुए उसके कुटुम्ब को देखकर हमारा हृदय भी कम्पित होना चाहिए न? उन्हें आश्वासन देने के लिए हमारे पास दो मधुर शब्द तो चाहिए। उस समय हम यदि आम नहीं खाएंगे तो हमारा कुछ बिगड़ नहीं जाएगा। **आज मनुष्य मनुष्य का दुश्मन है।** उसके हृदय में बहता हुआ करुणा का झरना बन्द हो गया है। कुछ विरल आत्माएं अवश्य ही होती है किन्तु करुणा तो प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में अवश्य होनी चाहिए। इसी करुणा के खातिर ही भगवान् नेमिनाथ ने विवाह करना अस्वीकार किया। करुणा उत्पन्न होगी तो ही वास्तविक अहिंसा का आचरण कर सकेंगे।

४. मध्यस्थ भावना

चौथी भावना है मध्यस्थ भावना - उपेक्षा.... अच्छे काम करने वालों की भी लोग अवहेलना करते हैं, मजाक उड़ाते हैं, अनेक प्रकार की अफवाहें फैलाते हैं। वहाँ क्या करना? तो ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि उपेक्षा करनी चाहिए। ऐसे मनुष्य भी जगत् में होते हैं। तो उसके ऊपर दया भाव रखते हुए विचार करना चाहिए कि बेचारा मेरे कारण कर्मों को बांधकर दुर्गति में भटकेगा। कदम-कदम पर समाधान करोंगे तभी तुम्हारा संसार सुखपूर्वक चल सकता है। कोई व्यक्ति हमारे लिए कुछ भी बोले उस समय हम विचार करते हैं कि इसने ऐसा कैसे बोला? इसकी खबर ले लूं? इन विचारों के स्थान पर यह सोचना चाहिए कि उसने भले ही बोला हो किन्तु हमें तो किसी का भला ही करना है न? किसी बात को दूसरी तरफ मोड़ना अपने ही हाथ की बात है। ये चार भावनाएं हमारे हृदय में आएगी तभी हम अहिंसा को पूर्ण रूप से सिद्ध कर सकेंगे।

संयम से युक्त धर्म

आसोज वदि २

संयम के भेद

भगवान् अरिहंत परमात्मा, हमारा जीवन कैसे मङ्गलमय बने और परलोक भी कैसे सुधरे इसलिए धर्म का मङ्गलमय मार्ग बता रहे हैं। इस लोक में धर्म करोगे तो परलोक में उसका फल मिलेगा ऐसा नहीं परन्तु धर्म तो नकद है। जिस क्षण करोगे उसी क्षण तुम्हें उसका फल मिलेगा। उदाहरण के तौर पर देखिए, हमारे ऊपर किसी ने क्रोध किया उसी समय हम भगवान द्वारा प्ररूपित क्षमा रूपी धर्म का आश्रय लेंगे तो कितना अधिक फायदा होगा? सामने वाले व्यक्ति के साथ वैर भाव का बन्धन नहीं होगा। यदि हम उस समय मौन धारण कर लें तो वह बात उसी समय समाप्त हो जाएगी। आर्त्तध्यान भी नहीं होगा और हमारी दुर्गति भी रूक जाएगी। इस प्रकार धर्म के फल का तात्कालिक अनुभव होगा। धर्म इस लोक में सम्पूर्ण शान्ति और सब प्रकार की समाधि प्रदान करना है किन्तु धर्म अर्थात् क्या? हम पहले यह जान चुके हैं कि धर्म अहिंसा युक्त ही होना चाहिए। **साथ ही धर्म का दूसरा स्वरूप है संयम।** अहिंसा को सुदृढ़ बनाएंगे तभी संयम को देख सकेंगे। हम संयम की व्याख्या को दीक्षा के रूप में ग्रहण करते हैं। दीक्षा अर्थात् केवल केशलुंचन अथवा वेश बदलने से होता हो ऐसा नहीं है। वह तो केवल आधे घण्टे का कार्य है। **संयम का वास्तविक स्वरूप समझना चाहिए। शास्त्रकारों ने संयम के चार भेद बताए हैं:- १. मन का संयम २. वचन का संयम ३. काया का संयम ४. आवश्यकता का संयम।**

मन चंगा तो कठौती में गंगा

सर्वप्रथम मन के संयम का वर्णन करते है। जो मन को वश में नहीं रखते हैं तो अनेक प्रकार के क्लेश पैदा होते है। किसी भी प्रकार के कार्य

की विचारणा पहले मन में पैदा होती है और उसके बाद ही वह वाणी और काया में प्रवेश करती है। मन पवन के समान कहाँ से कहाँ भटकता रहता है। उसको यदि वश में नहीं किया जाए तो वास्तविक अर्थ में अहिंसा का पालन नहीं होगा। मन शुद्ध होगा तभी अहिंसा का पालन हो सकता है। शास्त्र में तन्दुलिया मत्स्य का प्रसंग आता है। समुद्र में विशालकाय मगरमच्छों के आँख की भौंहों के किनारे चावल जितना तन्दुलिया मत्स्य होता है। समुद्र में जब तेज लहरें आती है तो बड़े मगरमच्छ अपना मुहँ फाड़ देते हैं उस समय लहरों के वेग से खींची हुई अनेक छोटी मछलियों को निगल जाता है, किन्तु उसमें से कुछ मछलियाँ बाहर भी निकल आती है, उस समय आँख के भौंहों के किनारे रहा हुआ वह तन्दुलिया मत्स्य यह विचार करता है कि मैं इसके स्थान पर होता तो एक भी मछली को छिटकने नहीं देता। सभी मछलियों को खा जाता। स्वयं तो बहुत छोटा है, इसीलिए वह न तो खा सकता है और न उनको पकड़ सकता है फिर भी मन में अधम विचार होने से वह सातवीं नरक का आयुष्य बांधता है। व्यर्थ में ही नरक की भयंकर यातनाओं को भोगने वाला बनता है। क्यों? मन पर संयम नहीं रखने के कारण ही तो यह होता है।

प्रसन्नचन्द्र राजर्षि

शास्त्रों में एक और दृष्टान्त प्रसन्नचन्द्र राजर्षि का भी आता है। स्वयं के भाई- मुनि वल्कलचीरी की देशना सुनकर वैराग्य को प्राप्त किया और स्वयं के दूध पीते हुए पुत्र को अर्थात् ५ वर्ष के छोटे बालक को राज सिंहासन पर बैठा कर तथा राज्य संचालन का भार मन्त्रियों को सौंप कर दीक्षा लेते हैं। **मनुष्य के मन में जब उत्कृष्ट वैराग्य जाग्रत होता है, सच्चा सत्य समझ में आ जाता है, तब वह क्षण मात्र भी संसार में नहीं रह सकता।** प्रसन्न चन्द्र राजा दीक्षा लेते हैं। दीक्षा ग्रहण के बाद कठोर तपस्या करते हैं। एक पैर पर खड़े रहकर सूर्य की आतापना लेते हैं। एक समय वे इस प्रकार की आतापना ले रहे थे उसी समय महाराजा

श्रेणिक सैन्य सहित भगवान् को वन्दन करने के लिए निकलते हैं। उनके राज सैन्य के आगे चल रहे दो सैनिक आपस में बात कर रहे हैं, एक ने कहा - इस राजा को धन्यवाद है, कितनी उग्र तपस्या कर रहे हैं? पूर्ण यौवन में दीक्षा लेकर राज-पाट छोड़ना सहज नहीं है। कैसे सत्वशाली हैं? इस प्रकार प्रशंसा करता है। उसी समय दूसरा व्यक्ति बोलता है - अरे! इस राजा को धिक्कार है, स्वयं के छोटे से बालक को रक्षण दिए बिना ही दीक्षा ले ली। इनको क्या खबर है कि समस्त मन्त्रीगण एक विचार के होकर, इस बालक को मारकर राज्य ग्रहण कर लेंगे। उन दोंनो की उक्त बातचीत राजर्षि ने भी सुनी। शब्द बहुत असरकारक/प्रभावशाली होते हैं। जो मन में आया वह कह दिया। कबीर की एक सूक्ति है -

मधुर वचन है औषधि, कटु वचन है तीर।
श्रवण द्वार से संचरे, साले सकल शरीर।

कबीर कहते हैं कि शब्द एक औषध रूप है, कई लोगों को सांत्वना देता है, कईयों को मृत्यु के मुख से वापस बुला लेता है और कईयों को जीवन दान देने वाला बन जाता है। जबकि कितने ही शब्द मनुष्य के जीवन को नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं, मौत के मुँह में ढकेल देते हैं। आज हम प्रत्यक्ष में देखते ही हैं न! शब्दों की मारा-मारी में ही मनुष्य आत्महत्या कर लेता है। ऐसे तीर जैसे शब्द जो कान रूपी द्वार से शरीर में घुसते हैं और सम्पूर्ण शरीर को शल्य के समान व्यथित करते हैं। हम कहते हैं न कि अमुक के उक्त शब्द मेरे दिल को चीर गये। दूसरे सैनिक के उक्त शब्द राजर्षि के कान में तेल के समान फैल गये। उनका क्रोध आसमान को छूने लगा उन्होंने विचार किया कि - अरे! मन्त्रीगण ऐसे अधम निकले! जिनको मैंने अपना ही समझकर रात-दिन अपने ऐश्वर्य से पोषण किया, क्या वे ही मेरे बालक को मार कर राज्य हड़प करने की इच्छा रखते हैं! वे ऐसे विश्वास घाती निकले.... धिक्कार है। अब तो मैं उनकी अच्छी तरह से खबर लूंगा। मन ही मन में युद्ध करने लगे.... स्वयं

कौन है? कहाँ है? इसका उन्हें ज्ञान न रहा। मन ही मन में भाला और तीर चलाने लगे। इसको मारा, इसको अधमरा किया इस प्रकार एक-एक योद्धाओं को मन से ही मारने लगे। उनका मन ही मन में युद्ध चल रहा था। उसी समय श्रेणिक राजा वहाँ से निकलते हैं। युवान राजर्षि को एवं उनकी उग्र तपश्चर्या को देखकर नमन करते हैं। समवसरण में भगवान् को वन्दन कर उनके पास बैठते हैं, देशना सुनते हैं और देशना के अन्त में महाराजा श्रेणिक भगवान् से पूछते हैं - भगवन्! आज मार्ग में आते हुए युवक साधु को आतापना लेते हुए देखा था, वे यदि इसी समय कालधर्म को प्राप्त हो जाएं तो कहाँ जाएंगे? भगवान् उत्तर देते हैं - हे राजन्! वह महर्षि इसी समय कालधर्म को प्राप्त हो जाए तो सातवें नरक में जाएगा। श्रेणिक महाराजा तो भगवान् के ये शब्द सुनकर एकदम दिङ्मूढ़ से हो गए। क्या ऐसे उग्र तपस्वी और सातवाँ नरक? यह कैसे हो सकता है? भगवान् की वाणी असत्य नहीं होती है। मन की दुविधा को दूर करने के लिए कुछ समय के पश्चात् फिर वही प्रश्न दोहराया - भगवन्! इस समय महात्मा काल करे तो कहाँ जाएंगे? भगवान् कहते हैं - अनुत्तर विमान में जाएंगे। भगवान् के उक्त वचन सुनकर श्रेणिक राजा दुविधा में पड़ गया। सोचने लगे कि कुछ समय पहले तो भगवान् ने सातवाँ नरक बतलाया था और इस समय देवलोक का अंतिम स्थान बता रहे हैं। इस समय अन्तिम देवलोक में जहाँ एक तरफ सुख की पराकाष्ठा है वहीं दूसरी ओर नरक में दुःख की पराकाष्ठा है। इस प्रकार श्रेणिक राजा दुविधा में विचार ग्रस्त हैं, उसी समय देवदुंदुभि सुनाई देती है। श्रेणिक राजा पूछते हैं - भगवन्! यह क्या? देवदुंदुभि क्यों बजी? भगवान् कहते हैं - हे राजन्! उस महात्मा को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। श्रेणिक राजा भगवान् से पूछते हैं - भगवन्, आपका दुविधा भरा यह उत्तर मेरी समझ में नहीं आ रहा है। आप विस्तार से इस महात्मा का चरित्र मुझे कहिए। भगवान् कहते हैं - हे श्रेणिक, जब तुम वहाँ से निकले उस समय तुम्हारे सैनिकों के शब्दों

से वह महात्मा मन ही मन में भयंकर युद्ध क्रीड़ा कर रहे थे। युद्ध करते हुए उनके शस्त्र समाप्त हो गए इस कारण सिर पर धारण किया हुआ सिरस्त्राण लेकर सबका छेदन-भेदन कर दूं। इस प्रकार के भयंकर रौद्रध्यान से युक्त होकर उन्होंने सिरस्त्राण लेने के लिए ज्यों ही सिर पर हाथ लगाया त्यों ही अनुभव किया, अरे! मैंने तो लुंचन कर रखा है, मैं तो साधु हूँ। उनकी विचारधारा पलट गई, सोचने लगे। अरे, मैं कहाँ हूँ? मैं कौन हूँ? मैंने यह क्या किया? उनके हृदय में भयंकर पश्चाताप की अग्नि दहकने लगी और रौद्रध्यान से जो सातवीं नरक के आयुष्य के योग्य जो कर्मों का जत्था इकट्ठा किया था वो जत्था क्षय होने लगा। वे महात्मा क्षपक श्रेणी पर चढ़े.... एक के बाद एक कर्मों का क्षय करते हुए वे सीधे केवलज्ञान तक पहुँच गये। इस प्रकार पहले मन के असंयम ने राजर्षि को नरक के द्वार तक पहुँचा दिया और तत्काल ही मन के संयम ने राजर्षि को केवलज्ञान प्राप्त करा दिया। मन का संयम अत्यावश्यक है। मन पर अंकुश होगा तो मन का शुद्धिकरण हो सकेगा। मन की शुद्धि के लिए आत्म-निरीक्षण बहुत जरूरी है। इन दिनों **विपश्यना** की एक साधना निकली है। उसका अर्थ होता है - वि अर्थात् विशेषकर, पश्य अर्थात् देखो। तुम तुम्हारे मन का प्रतिदिन निरीक्षण करोगे तो ध्यान में आएगा कि क्या करने योग्य है?

ज्ञानी गुरु और वृद्ध शिष्य

किसी ज्ञानी गुरु महाराज के पास में उनके वृद्ध शिष्य आकर कहते हैं - भगवन्! कुछ तत्त्वज्ञान समझाईये, जीवन बीत रहा है, आपके शिक्षण से हम कुछ प्राप्त कर सकें। गुरु महान् विद्वान् हैं। वे कुछ कार्य में व्यस्त थे। उस कार्य को समेट कर वे ध्यानस्त मुद्रा में बैठ गये। शिष्यगण प्रतीक्षा कर रहे थे कि गुरु महाराज कुछ उत्तर देंगे किन्तु गुरु महाराज तो चुपचाप बैठे हैं। शिष्यों में आतुरता बढ़ती गई। वे बोले भगवन्, क्या हमारे प्रश्न से आपको बुरा लगा है? हमारे आने से क्या आपके कार्य में बाधा

पहुँची है? आप क्यों नहीं बोलते है? आपको यदि बुरा लगा है, तो हम वापस चले जाएँ। उसी क्षण गुरु महाराज ने आँखें खोली और बोले - अरे! मैं तो तुम्हारे प्रश्न का ही उत्तर दे रहा था, क्या तुम लोग कुछ नहीं समझे। मेरी यह ध्यानस्थ मुद्रा ही तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है। शिष्यों ने पूछा – किस प्रकार? गुरु ने कहा – भाईयों! आत्म निरीक्षण के लिए दृष्टि को हृदय में उतार कर बैठ जाओ, यही सच्चा तत्त्वज्ञान है। भगवान् की प्रतिमा हमको यही कह रही है कि अब चारों तरफ से अपने वृत्तियों को समेट कर भीतर दृष्टि डालकर बैठ जाओ। सच्ची शान्ति तुम्हारी आत्मा में ही है। इस प्रकार हम आत्म-निरीक्षण करेंगे, तो ही मन पर संयम हो सकेगा।

जन्म की एक भूल
मनुष्य को जीवन से बांधती है
और जीवन जीते हुए
जगत का जंजाल प्रतिदिन बांधता है
यहाँ के लोगों का भला क्या कहना
यहाँ के लोग मुर्दे को भी कस कर बांधते है।

वाणी का संयम

आसोज वदि ४

धर्म उत्कृष्ट मङ्गल है....

परमकृपालु परमात्मा ने मानव जीवन की सार्थकता के लिए तथा हमारे हित के लिए करुणा से अनेक बातें बताई है। सभी जीवों को जीने की इच्छा है और हम कैसे सुखी रहें और दुःख हमारे पास ही न आए। इच्छा होना यह अलग बात है और इच्छा का पूर्ण होना यह अलग बात है। इच्छा तो प्रतिदिन नई-नई पैदा होती है, किन्तु सफल तो कुछ ही बन पाती है। इच्छाओं को सफल करने के लिए प्रभु ने धर्म का मङ्गलमय मार्ग बताया है। धर्म स्वयं ही उत्कृष्ट मङ्गल है, इसमें कोई दो मत नहीं है किन्तु आज हजारों कार्यक्रम धर्म के नाम पर चल रहे हैं। आज अनेक पंथ इस धर्म के मार्ग में है। इससे मनुष्य भ्रम में पड़ जाता है कि धर्म किसे कहा जाए? कौनसे मार्ग पर चलना चाहिए? सर्वप्रथम अहिंसा को धर्म का लक्षण कहा गया है, अतः जो जीवन में अहिंसा आएगी तो हमें धर्म में भी सफलता मिलेगी। अहिंसा के स्वरूप को हम पूर्व में समझ चुके हैं। वह कैसे प्राप्त होगी यह हमें देखना है। सर्वप्रथम अहिंसा-पालन के लिए संयम जरूरी है। मन के संयम पर हम अवलोकन कर चुके हैं। मन का असंयम ही अनेक आत्माओं को भ्रष्ट कर चुका है। मन पवन के समान कहीं का कहीं भटक रहा है। उसको यदि वश में नहीं रखा तो सच्चे अर्थ में अहिंसा का पालन नहीं हो सकेगा। मन शुद्ध होगा तभी अहिंसा का पालन कर सकेंगे।

स्टीयरिंग पर काबू न रहे तो....

दूसरा संयम है वाणी का संयम। हमारा वाणी पर नियंत्रण (कन्ट्रोल) पूर्ण रूप से चला गया है। वाणी के असंयम के कारण अनेकों

के जीवन बरबाद हो चुके हैं। बात-बात में उद्वलित/झुंझलाहट कर किसी के मर्म स्थान पर वाणी के प्रहार द्वारा सन्मुख व्यक्ति को मृत प्रायः कर देते हैं। वाणी के असंयम के सामने सहनशीलता भी नहीं रहती है। इसी कारण से तनिक भी प्रतिकूल शब्द सुनते ही अथवा मनोवांछित कार्य न होने पर संयम के अभाव में आपे से बाहर होकर दुर्लभ मानव भव को पल भर में होंम देते हैं। वाणी का दूसरा नाम है सरस्वती। सरस्वती तो माता है, इसका अपव्यय नहीं होना चाहिए और इसकी साधना करनी चाहिए। महाभारत में आता है कि आवाज बिना ही जो मोक्ष मिलता हो तो आवाज करने की आवश्यकता ही नहीं है। अर्थात् वाणी का अपव्यय नहीं करना चाहिए। मौन में अत्यधिक शक्ति है। वह अनेक क्लेशों से बचाती है, किन्तु इसको सुधारने के लिए हमने क्या अभ्यास किया है? **यदि जिह्वा पर संयम रखा जाए तो दो लाभ है:- १. अनेक रोग खत्म हो जाते है और २. अनेक क्लेशों से बचा जा सकता है।**

२७ वर्ष तक एक ही पाठ....

किसी तत्त्वज्ञानी के पास में एक भाई तत्त्व जानने के लिए आया। तत्त्वज्ञानी ने उसे पहला पाठ दिया कि जीभ पर संयम रखो। बस इतना ही पाठ लेकर वह भाई चला गया। दूसरे दिन तत्त्वज्ञानी ने उसकी, आने के समय पर प्रतीक्षा की किन्तु वह भाई नहीं आया। इससे उस तत्त्वज्ञानी को ऐसा लगा की शायद वह व्यक्ति किसी कारण से आज नहीं आया हो, कल आएगा। तीसरे दिन भी पाठ के समय तत्त्वज्ञानी उसकी राह देखता रहा किन्तु वह नहीं आया। इस प्रकार बहुत दिवसों तक राह देखने पर भी वह भाई दूसरी बार पाठ लेने के लिए नहीं आया। तत्त्वज्ञानी ने मन में विचार किया कि कदाचित् उसको मैंने जो पाठ दिया था वह रूचिकर न लगा हो। इस बात को अनेक वर्ष बीत गये। एक दिन उस तत्त्वज्ञानी को एक मन्दिर की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए वह भाई मिल गया। पहचान लिया, पूछा - भाई, तुम तो दूसरी बार पाठ लेने के लिए आए

भी नहीं। मैं तो अनेक महीनों तक तुम्हारी प्रतीक्षा करता रहा, किन्तु तुम पाठ लेने के लिए नहीं आए और पाठ तो दूर, मिलने के लिए भी नहीं आए। क्या वह मेरा दिया हुआ पाठ तुम्हे अच्छा नहीं लगा? नहीं....नहीं.... ऐसा नहीं है। आपका दिया हुआ पाठ तो मुझे बहुत ही अच्छा लगा किन्तु अभी तक मैं उसे जीवन में नहीं उतार सका। जब तक जीभ पर संयम नहीं आवेगा तब तक मैं दूसरा पाठ कैसे ले सकता हूँ? २७-२७ वर्षों से मैं इस पाठ को रट रहा हूँ किन्तु अभी तक जैसा चाहिए वैसा अभ्यास नहीं कर सका। प्रत्येक वस्तु के लिए अभ्यास आवश्यक है। हम किसी भी विषय पर अभ्यास नहीं करते हैं। हमारी जहर उगलती हुई वाणी हमारे ज्ञानतन्तु को भी विषमय बना देती है। महाभारत की रचना किस कारण से हुई? तीर जैसे शब्दों से ही तो इसकी रचना हुई है! केवल द्रोपदी ने यही तो कहा था कि **अन्धे का लड़का अन्धा ही होता है न! बस यह छोटे से तीर जैसे वाक्य के कारण ही अनेक तीर आमने-सामने खींचे गये और हजारों आदमी मृत्यु के मुख में पहुँच गये। भयंकर संहार हुआ...!** अतः वाणी का संयम बहुत ही आवश्यक है। इस कारण अनेक हिंसाओं से बचा जा सकता है। अब देखते हैं, काया का संयम।

काया का संयम

निरन्तर भोग विलास में डूबा हुआ आज का मानव काया को संयम में नहीं रख सकता। अच्छे वस्त्र पहनना, अच्छा खाना-पीना, शरीर का श्रृङ्गार करना और घूमना-फिरना बस इसी में ही मस्त रहता है।

प्राण हरण करने वाली लक्ष्मी

कभी-कभी ऐसी लक्ष्मी मिलती है कि वह पाप का कारण बन जाती है। खटाऊ भारत का बहुत बड़ा सेठ गिना जाता था। चार अरब का मालिक था। किन्तु यही सम्पत्ति उसकी मृत्यु का कारण बन गई। भोग विलास के प्रचुर साधन मिल जाने मात्र से उसमें मस्त होने जैसा नहीं है।

यही साधन कभी-कभी प्राण घातक बन जाते हैं। धन कमाया और सुन्दर फिएट कार खरीदी। घूमने निकले, अचानक ही मृत्यु की गोद में समा गए। इसको पाप का उदय माने या पुण्य का? काया का संयम अर्थात् पाँच इन्द्रियों के ऊपर संयम। एक इन्द्रिय पर भी असंयम अच्छे मानवों को पतन के रास्तें में ढकेल देता है। नरक के मार्ग पर ले जाता है। आँख के असंयम से मनुष्य टी.वी. द्वारा प्रसारित कुत्सित दृश्यों को देखकर अपने जीवन में उतार लेता है और उसका सारा जीवन दुराचारमय बन जाता है। पहले तो आँखों की शर्म के कारण लोक दुष्कृत्य करते हुए रूक जाते थे किन्तु आज तो दुष्कृत्य करके लज्जा के स्थान पर लज्जाहीन/बेशर्म बन जाते हैं। आज तो दुष्कृत्य खुलकर होते हैं और दुष्कृत्य करके लज्जित होने के स्थान पर हर्षित होकर बहादुर पहलवान बनते हैं। पहले के लोग सत्कृत्य करने के बाद भी स्वयं की प्रशंसा सुनकर शर्म करते थे और कहते थे अरे, हमने ऐसा कौनसा बड़ा काम किया है जो आप इस प्रकार प्रशंसा के फूल चढ़ा रहे हैं? हमें लज्जित न करिए। सत्कार्य करने पर भी वे लोग लज्जालु बने रहते थे जबकि आज का यह वैभव पूर्ण युग इतना गढ्ढे में चला गया है कि दुष्कर्म करके भी हमें लज्जा नहीं आती। **परस्त्रीलम्पटता और शराब पीना आदि वस्तुएं जो व्यसन रूप मानी जाती थी वह आज अच्छे-अच्छे घरों में फैशन के रूप में बन गई हैं।** घर में यदि टी.वी. नहीं हो तो कोई आज लड़की देने को तैयार नहीं होता। धार्मिक वातावरण में पालित-पोषित मनुष्य को आज निर्माल्य और बेवकूफ माना जाता है। एक भाई मेरे पास आए उन्होंने कहा - साहेब, आज पार्टियों में शराब ही दी जाती है। वे स्वयं अमेरिका में जाकर आए थे। वहाँ से स्वयं के माता-पिता की सेवा करने के लिए ही मुम्बई में आकर बसे थे। वे किसी पार्टी में गये, उनके सन्मुख शराब का प्याला रखा गया। उसने कहा - मैं नहीं पीता। तो सामने वाले व्यक्तियों ने कहा - तुम अमेरिका होकर आए फिर भी सुधरे नहीं? शराब पीना यह

सुधरने का काम है, आज की फैशन है। यह कहने वाले दूसरी जाती के व्यक्ति नहीं थे किन्तु जैन परिवार के ही पुत्र थे! जो कुटुम्ब शराब के नाम से दूर भागते थे वे ही कुटुम्ब आज ऐसे नशीले पदार्थों में डूब रहे हैं। जैन संस्कृति नष्ट हो रही है। हमारे जैसे साधु संतो के हृदय इन बातों को सुनकर आघात का अनुभव करते हैं किन्तु **जहाँ आकाश फटे वहाँ पैबन्द कहाँ लगाएँ? संत कबीरदास** ने भी कहा है - **किन-किन को समझाईये कूवे भांग पड़ी।**

अर्थात् किसको समझाएं, एक मनुष्य ने भांग (नशीला पदार्थ) पी हो तो उसका नशा दूर करने का प्रयत्न किया जाए किन्तु कुंए के पानी में ही भांग डाल दी गई है। सब लोग व्यसन युक्त बन गये हैं किसको समझाएं?

> ***आश्चर्य की बात*** *- कोई भी मनुष्य, जब उसके ऊपर बाहरी आक्रमण होता है, तो बलवान का आश्रय लेता है, किन्तु जब उस पर काम का आक्रमण होता है, तब अबला का सहारा लेता है।*

काया का संयम

आसोज वदि ५

समाधि कैसे मिले?

विश्व-कल्याण के लिये परम कृपालु परमात्मा धर्म का मङ्गलमय मार्ग बता रहे हैं। प्रत्येक प्राणी को सुख समाधि पूर्वक कैसे जीवन जिएं इसकी इच्छा है। वही मार्ग भगवान् हमको बता रहे हैं। सुख और समाधि चाहिए तो मङ्गल स्वरूप धर्म को जानकर उसका आचरण करना पड़ेगा। दूसरे का अहित और उसका चिन्तन करने वाले को कदापि समाधि नहीं मिलती है। लूट-मार कर एकत्रित की हुई सम्पत्ति कभी भी समाधि नहीं दे सकती। घर में अशांति, चिन्ता और आपत्तियाँ लाती है। त्याग योग्य और ग्रहण योग्य क्या वस्तुएँ हैं इसको समझने के लिये धर्म समझना होगा। धर्म कैसा हो? धर्म अहिंसा से युक्त होना चाहिए। वास्तविक अहिंसा का आचरण कब कर सकेंगे? जब जीवन में मन, वचन और काया का संयम होगा तभी आचरण कर सकेंगे। मन और वचन के संयम पर विचार कर चुके हैं अब काया का संयम अर्थात् पांच इन्द्रियों के संयम पर विचार करते हैं।

आँख का असंयम - इलाचीकुमार

आँख के असंयमं से टी.वी. द्वारा प्रसारित होने वाले खराब दृश्य जीवन में स्थान बना लेते हैं। खराब से खराब दृश्यों को सासु और बहू, माँ-बाप और सन्तानें सब लोग साथ में बैठकर देखते हैं। एक बार ही नहीं अनेकों बार देखते हैं। देखने पर भी विकार उत्पन्न न हो यह आश्चर्य की बात ही गिनी जाएगी। आँख के असंयम के कारण इलाचीकुमार अपने पथ से भटक गए। धनदत्त सेठ ने इला माता की आराधना कर बड़ी कठिनता से इस पुत्र को प्राप्त किया था। वही पुत्र खेल क्रीड़ा करने के

लिए आई हुई नटमण्डली के खेलों को देखते-देखते रूप सुन्दरी के समान नटनी को देखकर अपना आपा खो बैठता है। माता-पिता के समक्ष नटनी के साथ विवाह करने का अपना विचार रखता है। उसके यह विचार सुनते ही माता-पिता को जोर का आघात लगता है। पुत्र को अनेक प्रकार से समझाते हैं - पुत्र! कहाँ हमारा कुल और कहाँ ग्रामोग्राम घूमने वाले इन नटवों का कुल? हम कितनी आशाओं के मीनारे तुम्हारे लिये चुनते रहे। इस नटनी की अपेक्षा अधिक रूपवती सेठ कन्याओं के साथ तुम्हारा विवाह कर देंगे। हे वत्स, इन विचारों का तू त्याग कर दे, किन्तु आँखों के असंयम के कारण पतन के रास्ते जाने वाले इलाचीकुमार को माता-पिता के मार्मिक दुःखों को देखने की कहाँ फुर्सत थी? आखिर एक नटनी नारी के कारण माता-पिता, धन-वैभव, इज्जत और यश आदि को छोड़कर और समस्त सुखों का त्याग कर स्वयं नट बन जाता है। ग्राम-ग्राम घूमकर लोगों का मनोरंजन करता है।

रस्से पर ही केवलज्ञान

एक दिन इलाचीकुमार किसी नगर में जाता है। वहाँ के राजा को अपना खेल बताता है। राजा और रानी उत्सुकता के साथ इलाची का खेल देख रहें हैं। जान को जोखिम में डालकर इलाची रस्से के ऊपर नाच रहा है। नीचे नटनी ढोल बजा रही है। राजा की दृष्टि इलाची के नृत्य के स्थान पर नटनी के रूप-सौन्दर्य पर पड़ती है। नटनी को देखकर राजा उस पर मोहित हो जाता है। राजा के मन में दूषित विचार जन्म लेते हैं। वह सोचता है कि इलाचीकुमार रस्से पर नाचता हुआ थक जाए, नीचे गिर पड़े और मर जाए, तभी यह नटनी मुझे मिल सकती है। इन कुत्सित विचारों के कारण ही वह इलाचीकुमार को बहाना बनाकर ईनाम नहीं देता है और पुनः-पुनः खेल दिखाने के लिये कहता है। इलाची ईनाम की आशा से बारम्बार बाँस के रस्से पर खेल करता है। बाँस के रस्से पर नाचते-नाचते

उसकी दृष्टि सामने के मकान पर पड़ती है। वह देखता है एक सुन्दर युवती एक तेजस्वी युवान मुनि को भाव पूर्वक दान दे रही है/ वहोरा रही है। मुनि स्वयं के लिये उपर्युक्त आहार ग्रहण करने के बाद अधिक लेने से इन्कार करते हैं और सुन्दरी आग्रह पूर्वक अधिक वहोरा रही है। मुनि नीची दृष्टि किए हुए खड़े हैं। स्वयं के विकार जन्य कार्यों को देखकर वह मन ही मन मन्थन करता है - ओह! कहाँ यह महामुनि और कहाँ मैं? एक नटनी के ऊपर आसक्त होकर मैंने कैसा घृणित मार्ग ग्रहण कर लिया? माँ-बाप, घर-बार सब कुछ छोड़ दिया। इसी नटनी पर राजा भी मोहित हो रहा है। मैं राजा के दान की राह देख रहा हूँ और राजा मेरे मरने का इन्तजार कर रहा है। यह संसार कैसा स्वार्थी है? इस विचारधारा में आगे बढ़ते हुए पश्चाताप की अग्नि में सम्पूर्ण कर्मों को जलाकर भस्मिभूत कर देता है। रस्से के ऊपर ही उसे केवलज्ञान प्राप्त होता है। देवगण आकर उसे मुनिवेश प्रदान करते हैं और उसकी धर्मदेशना को सुनकर राजा-रानी और नटनी तीनों ही प्रतिबोध प्रास करते हैं। पहले आँख के असंयम के कारण पतन को प्राप्त हुआ और बाद में आँख के संयम के कारण अन्तिम केवलज्ञान तक पहुँच गया।

कान का असंयम

आँखें किसलिए मिली हैं? जानते हो? भगवान् का मुख देखने के लिये, न कि अभिनेत्रियों का मुख देखने के लिए! कान भगवान् का भजन सुनने के लिए और संतो की सद्वाणी सुनने के लिये मिले हैं। संतो की वाणी सुनी हो तो कभी भी जीवन में उपयोगी बन सकती है, किन्तु आज के माहौल से तो ऐसा लगता है कि मानो आँख और कान टी.वी. देखने के लिये और अश्लील गीतों को सुनने के लिए ही मिले हों! इसी में मस्त होते हैं। परन्तु संतो की वाणी सुनकर कानों को पवित्र करना ही कान का आभूषण है।

रौहिणेय चोर

शास्त्रों में रौहिणेय चोर का कथानक आता है। उसके पिता भयंकर नामी चोर थे। उसने अपने पुत्र को भी चोर बनाया। मरण शय्या पर पड़ा हुआ कुछ कहने के लिए विचलित हो रहा था। रौहिणेय पूछता है - पिताजी! क्या आपकी कोई इच्छा अधूरी रह गई है। पिता कहते हैं- पुत्र जाते-जाते मैं तुझे एक शिक्षा देता हूँ। इस नगरी के चारों ओर महावीर नाम का एक धूर्त घूम रहा है। वह सबको कह रहा है - हिंसा मत करो, जुआ मत खेलो, चोरी न करो आदि आदि, किन्तु तुम उसकी बात कभी भी सुनना नहीं। वह धूर्त जहाँ भी इस प्रकार का उपदेश देता हो तुम्हें उस मार्ग को ही छोड़ देना है। बस यही मेरी अन्तिम इच्छा है, तुम वचन दो तो मेरे प्राण आसानी से निकल जाएंगे। पुत्र ने वचन दिया, पिता मृत्यु धाम को प्राप्त हुए। पिता की शिक्षा का वह पूर्ण रूप से पालन करता है। भगवान जहाँ देशना दे रहे हों उस मार्ग को छोड़कर दूसरे मार्ग पर चल देता है। एक दिन जोगानुजोग ऐसा बना कि उसे चोरी करने के लिए जिस मार्ग से जाना था, उसी मार्ग पर भगवान् की देशना चल रही थी। उस ओर जाने के लिये दूसरा और कोई मार्ग नहीं था। मन को मारकर वह उस मार्ग पर जाता है। मेघ के समान गम्भीर ध्वनि पूर्वक भगवान् की देशना चल रही है। देशना में देवों का वर्णन चल रहा है। रौहिणेय को उस मार्ग से जल्दी से जल्दी भागना है जिससे की भगवान् के शब्द उसके कानों में प्रवेश न कर सके और पिता को दिया हुआ वचन भी भंग न हो। इसी कारण दोनों कानों में अंगुली डालकर वह दौड़ने लगा। वेग के साथ वह दौड़ता है किन्तु दौड़ते-दौड़ते उसके पैर में कांटा चुभ जाता है। कांटा गहराई के साथ चुभा था इसलिए उस कांटे को निकालने के लिए वह अपनी अंगुलियों को कान मे से निकालता है। ज्यों ही कान से अंगुली को निकालता है, त्यों ही कानों में भगवान् के मधुर शब्द प्रवेश कर जाते हैं-

देवता अनिमेष नयन वाले होते हैं अर्थात् पलक नहीं झपकते हैं और भूमि का स्पर्श नहीं करते हैं। बस ये दो शब्द ही उसके कानों में पड़े, कांटे को निकालकर तत्काल ही उसने अंगुली कान में डाल दी। यह जो दो शब्द अनिच्छा से कान में प्रवेश कर गये थे, उनको भूलने के लिए बहुत प्रयत्न करता है, किन्तु वह भूल नहीं पाता बल्कि वे प्रगाढ़ रूप से उसके हृदय में उतर जाते हैं। यादगार बन जाते हैं।

अभयकुमार की निष्फलता

इस तरफ सारे नगर में चोरों के द्वारा चोरियों के माध्यम लूट चल रही थी। नगर में चारों तरफ चोरों का आतंक था। कोई भी चोर को पकड़ नहीं पाता था। मन्त्री अभयकुमार इस चुनौती को स्वीकार करता है। रौहिणेय चोर को पकड़ता है, किन्तु जब तक वास्तविक प्रमाण न मिले तब तक उसको सजा कैसे दी जा सकती है? अभय कुमार बुद्धि चातुर्य से काम लेता है। देवलोक जैसा वातावरण पैदा करता है। रौहिणेय को नशे में धुत करके वहाँ सुलाता है। वह जागता है, उस समय देवता उससे पूछते है, कि तुमने मनुष्य लोक में कौनसे सत्कार्य किये हैं और कौनसे दुष्कृत कार्य किए है, वह कहो। रौहिणेय विचार में पड़ जाता है। यह सब क्या नाटक है? क्या मैंने सचमुच में देवलोक में जन्म लिया है? चारों तरफ देखता है। अनिच्छा से कानों में पड़े हुए भगवान् के वे शब्द याद आते हैं कि देवों की आँखों के पलक झपकते नहीं हैं और देव भूमि का स्पर्श नहीं करते हैं। उसने देखा कि ये समस्त देव-देवियों के नेत्र पलक झपक रहे हैं और उनके पैर जमीन को स्पर्श कर रहे हैं। वह स्वयं बहुत ही चालाक और धूर्त था। समझ गया कि यह तो मुझे पकड़ने के लिए अभय कुमार का षड्यंत्र है। पुछने पर चालाकी से कहने लगा कि मैंने तो खूब दान दिया है। परोपकार के कार्य किए है। कोई गर्हणीय/नीच कार्य किया ही नहीं है। सामने वाले मानव उससे घूमा-फिरा कर पूछते हैं किन्तु वह तो एक ही बात कहता है कि मैंने अच्छे कार्य किए हैं, इसीलिए देवलोक में

आया हूँ। अन्त में अभयकुमार थककर/परेशान होकर उसको छोड़ देता है। रौहिणेय घर आकर विचार करता है कि अनिच्छा से सुनी हुई भगवान की वाणी ने ही मुझे मरण से बचाया है। बस केवल यही मार्ग सच्चा है। प्रात:काल होते ही भगवान् के पास जाकर दीक्षा ग्रहण करूँगा। भगवान् के पास जाने के पहले वह श्रेणिक महाराजा के पास जाता है और सत्य स्थिति का वर्णन करता है। सबूत के तौर पर जमीन में गाड़ा हुआ धन भी दिखाता है और अन्त में राजा से दीक्षा की आज्ञा मांगता है। स्वयं श्रेणिक महाराजा उसका दीक्षा महोत्सव करते हैं। दीक्षा के पश्चात् वह कैवल्यज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में जाता है। ये दोनों कान भगवान् की और संत पुरूषों की वाणी सुनने के लिये ही है। अत: इनका सदुपयोग करो। यह हितकर वाणी ही तुमको बचा सकेगी।

चिंतन रहित ज्ञान पानी समान।
मनन, चिंतन सहित ज्ञान दूध समान।
तन्मयता से प्राप्त किया हुआ ज्ञान अमृत समान।

धन नहीं, धर्म का संग्रह करो

आसोज वदि ६

भयंकर भूतकाल

परम कृपालु परमात्मा हमें कह रहे हैं कि हे मानव! तू अपने भूतकाल पर दृष्टि डाल! पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय ओर वनस्पति काय में तूने अनेक प्रकार की भयंकर वेदनाओं को भोगा है। पृथ्वीकाय का समारम्भ हम अपनी नज़रों से देख रहे हैं। इमारतों को बनवाने के लिये पृथ्वीकाय के जीवों की भयंकर हिंसा चल रही है। इस योनि में हमने अनेक बार कुदाली के घाव खाएं होंगे। तीक्ष्ण हल से हमको खेड़ा गया होगा। इस पर दृष्टि डालें तो कांप उठेंगे। प्रत्येक काय में इस जीवात्मा ने भयंकर वेदनाओं को भोगा है। किसी पुण्य के बल से ही यह जीवात्मा इतनी ऊँची गति में आई है। यहाँ भी यदि चूक गया तो फिर यातनाओं की परम्परा चालू हो जाएगी।

अनित्यानि शरीराणि, विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्मसञ्चयः॥

ज्ञानीजन कहते हैं कि हे मानव! यह शरीर अनित्य/नाशवान है और यह वैभव भी शाश्वत/स्थाई नहीं है। एक ही रात में मनुष्य करोड़पति बन जाता है और एक ही रात में रोड़पति बन जाता है। प्रतिक्षण मृत्यु निकट आ रही है अतः तू धर्म का संग्रह कर ले। किन्तु आज मानव पूर्णरूपेण इससे विपरीत दिशा में चल रहा है। इसको स्वयं का शरीर नित्य लगता है इसीलिए रात-दिन इसका श्रृङ्गार/रक्षा करने में व्यस्त रहता है। चौबीसों घण्टे इस देह की पूजा में बिताता है। भगवान् की पूजा तो सिर्फ अष्टप्रकार की, सत्तरहभेदी, चौसठ प्रकारी और नव्वाणु प्रकार की ही है। किन्तु इस देह की पूजा तो एक सौ नव्वाणु प्रकारी हो तो भी

कम पड़ती है। इस देह को नित्य मान बैठा है इसीलिए ही न! और विनाशशील यह ऐश्वर्य भी हमको अविनाशी लगता है। रात-दिन, पुण्य-पाप, नीति-अनीति का विचार किए बिना ही कमाई करता जाता है। बड़े-बड़े कारखाने और बड़े-बड़े महल बनवाकर तथा उसमें एकरूप होकर पापों को इकट्ठा करता रहता है। उसको यह खबर नहीं है कि जब यह आत्मा देह से निकल जाएगी उस समय उसी हवेली में से तुझे जल्दी से जल्दी निकालने की तैयारी करेंगे। जिसे तु अपना समझता है भले ही वे तेरी पत्नी हो, पुत्र हो कोई घर में रखना नहीं चाहेगा। मृत्यु की तलवार सिर पर लटक रही है। मानव बड़ी-बड़ी आशाओं के साथ महल बनवाता है, किन्तु जब मृत्यु आती है तो वह सभी महलों को डुबा देती है।

पानी के पैसे

दूध सागर डेयरी महेसाणा के मालिक मानसिंह चौधरी - समय इतना इतना निम्न स्तर का आ गया है कि पहले दूध बेचना यह हल्के से हल्का काम गिना जाता था। रबारी भी दूध बेचता नहीं था। आज तो छाछ भी बेची जाती है। अरे, छाछ ही नहीं इस देश में अब तो पानी भी बेचा जाता है। एक लीटर बिस्लरी (पानी) की बोतल के १५/- रूपये। ऐसा कहा जाता है जहाँ घी और दूध की नदियाँ बहती थी, वहाँ आज पानी भी पैसे से मिलता है। उस जमाने में दूध या छाछ को लेने या देने में हलकाई नहीं लगती थी। सूर्य प्रकाश देता है यह उसका स्वभाव है उसी प्रकार मनुष्य आपस में दूध या छाछ लेते देते थे तो इसमें कोई उपकार या हल्कापन नहीं था। डेयरी के मालिक चारों ओर के ग्रामों से दूध खरीदते हैं.... तालाब भरते हैं.... आज तो इंजेक्शन अथवा मशीन से निर्दयतापूर्वक दूध खेंचकर निकाला जाता है। गायों का खूब शोषण हो रहा है। यह चौधरीजी दूध का अधिक उत्पादन हो, इसके लिए आस्ट्रेलिया जाने के लिये निकले। आस्ट्रेलिया में विशाल-विशाल स्थान खाली पड़े हुए हैं।

वहाँ गायों के पालन की शिक्षा भी दी जाती है कि गाय किस प्रकार अधिक से अधिक दूध दे सके। स्वयं के दूध के भण्डार को सागर बनाने के स्वप्न देखते हुए यह भाई आस्ट्रेलिया जा रहे हैं। वहाँ जाने के लिए एयरपोर्ट पर तो जाना ही पड़ता है। घर से कार में निकले। मन में अनेक प्रकार के विचार घूम रहे थे। वहाँ जाना है और यह मुझे जानना है। एयरपोर्ट पहुँचने के पहले ही दुर्घटना हो गई। रास्ते में ही मरण हो गया। उनके सारे मनोरथ चूर-चूर हो गये और वे पाप की पोटली लेकर दूसरे लोक की ओर चले गये। इसीलिए **शास्त्रकार कहते हैं कि यह मृत्यु सबसे बड़ी दुर्घटना है** और यह दुर्घटना जब होती है तो इस जिन्दगी का खेल ही खत्म हो जाता है। अत: जब तक, होने वाली यह दुर्घटना न हो उससे पूर्व ही चेत जाना चाहिए। आँख बन्द होने के बाद किसको मालुम कि अगले जन्म में यह जीवात्मा कहाँ जाएगी। संत कबीर कहते हैं -

''इस तन-धन की कोन वडाई, देखत नयनों में मिट्टी मिलाई
अपने खातर महल बनाया, आप ही जाकर जङ्गल सोया,
हाड जले जैसे काष्ठ की मोली, बाल जले जैसे घास की पोली''

स्वयं के लिये लाखों रूपये खर्च करके भले ही बंगला बनाया हो किन्तु चिरनिद्रा कहाँ लेंगे? जङ्गल में ही न! खूब मेवा-मिष्ठान्न खिला-खिलाकर इस शरीर को चाहे जितना भी हृष्ट-पुष्ट बनाया हो किन्तु इस शरीर का क्या करेंगे? जिस शरीर को पहले किसे छूने भी नहीं देता था उस शरीर को जब आग का लांपा लगाएंगे तो भी वह बोलेगा क्या? लाखों का प्रिय हो किन्तु जब उसका देह पतन होगा उस समय उस शरीर को चाहे जैसे काटो या मारो.... क्या वह बोलता है? दूसरे धन भी देखते-देखते मिट्टी रूप हो जाने वाले हैं।

धन की जल समाधि - दो भाईयों का दृष्टान्त

मारवाड़ के किसी गाँव में दो भाई रहते थे। माता-पिता का छोटी उम्र में ही स्वर्गवास हो गया था। दोनों भाई एक-दूसरे के सहयोग से बड़े

हुए परिस्थिती गरीब थी। बड़े भाई का जैसे-तैसे विवाह हो गया। एक दिन छोटा भाई बाहर के गाँव से आया था। उसने भाभी के पास से पानी माँगा। भाभी किसी काम में व्यस्त थी इसलिए उसे आने में देर लगी। इस कारण छोटा भाई एकदम आपे से बाहर हो गया। क्रोध का आवेग भयंकर होता है और जब वह आवेग में आता है, तो मनुष्यता, विनय, विवेक आदि की मर्यादा के बांध को लांघ जाता है। चरक नाम के आरोग्य शास्त्र के विद्वान् ने चरकसंहिता में लिखा है कि आवेग को कदापि न रोकें। जैसे कि मल, मूत्र, छींक और उबासी.... आदि, किन्तु अमुक आवेगों को तो अवश्य ही रोकना चाहिए। जैसे - काम, क्रोध और लोभ। आवेग और आवेश ये हमारे भयंकर शत्रु है। जब ये उत्पन्न हों उस समय एक या दो क्षण बीता दें तो हम उसकी प्रबलता से बच सकते हैं। कहावत है कि - "**अणी चूक्यो सो वर्ष जीवे**" किन्तु उस क्षण को बीता देना यह अच्छे-अच्छे साधु-सन्तों के लिये भी कठिन है। क्रोध में बेकाबू होकर छोटे भाई ने भाभी को कहा - तुम्हे इतना समय कैसे लगा? भाभी भी गुस्से में आ गई और उसने कहा - इतना रोब किस पर दिखाते हो? बहुत ज्यादा जल्दी है तो पानी देने वाली को ले आओ न? देवर को क्रोध चढ़ा, घर से निकल कर सीधा दिल्ली पहुँचा। दिल्ली पर मुगल बादशाह का राज था। क्रोध ही क्रोध में घर से निकल तो गया, किन्तु इतने बड़े शहर में कहाँ जाना? जीवन निर्वाह कैसे करना? कहावत है - "**जेणे दांत आप्या छे ते चावणुं आपशे ज।**" जैसे-तैसे करके उसने 'चणा जोर गरम' का धन्धा प्रारम्भ किया। बोलने में वह मधुर भाषी था। वह ऐसे लहजे से बोलता था कि लोग उससे आकर्षित होकर उसके पास आने लगे। उसका धन्धा जम गया। राजसभा के ठीक सामने ही खूमचा लगाकर वह खड़ा रहता था। राजसभा में बहुत दरबारी आते थे। उसकी मधुर भाषिता से आकर्षित होकर अनेक दरबारी चना खरीदते थे और चने की पुड़िया को हाथ में लेकर राजसभा में प्रवेश करते। बादशाह

विचार करता है कि यह सब लोग हाथ में किस चीज की पुड़िया लेकर आते हैं। किसी दरबारी को पूछते है। वह कहता है - राजन्, कोई मनुष्य राजसभा के बाहर चना बेचता है। वह बहुत स्वादिष्ट है, खाने योग्य है। राजा का मन हुआ, उसने भी मंगवाए। चना देने के लिए यह भाई रोज राजदरबार में आता है। धीरे-धीरे परिचय बढ़ता है। बादशाह के हृदय में उसके प्रति बहुत आदरभाव पैदा होता है। उसकी वाचालता पर राजा मुग्द हो जाता है। उसे सुखी करने की राजा की इच्छा होती है अत: राजा बंगाल के किसी अधिकारी पद पर उसकी नियुक्ति कर देता है। उसके लिए एक फरमान पत्र तैयार करता है। उसमें उसका नाम लिखा जाता है किन्तु संयोग से उसका जो नाम था उसके स्थान पर 'जगतसेठ' ऐसा नाम लिखा जाता है। दो-तीन बार कागज पर नाम लिखकर फाड़ देता है, किन्तु बार-बार यही नाम लिखा जाता है। उससे बादशाह ने सोचा - शायद अल्ला को मंजूर होगा। इसलिए उसने उसको जगतसेठ की पदवी दे दी। गंगा के किनारे पर जंगी हवेली बनाकर उसको दी गई। वह भाई वहाँ रहने लगा। रोड़पति से करोड़पति बन गया। कर्मसत्ता के आगे किसी का जोर नहीं चलता है। कर्म विपरीत हो गये। कोई पाप का उदय हुआ। एक समय रात्रि में जब सब सो रहे थे। भरपूर निद्रा में थे। उस समय, अचानक ही गंगा में प्रबल तूफान आया। गंगा के किनारे ही उसका बंगला था। उस पूर को देखकर सब लोग बंगले के ऊपरी मंजिल पर चढ़ गये। नीचे भोंयरे तलघर में अपार सम्पत्ति भरी हुई थी। अपनी आँखों से ही अपने धन को पानी के वेग के साथ बहता हुआ देख रहा था किन्तु क्या करे? धन का बचाव करें या तन का बचाव करे। सब कुछ पानी की भेंट चढ़ गया। स्वयं बच गया। उसके ही वंशजों को अन्त में नौकरी करने का समय आया। महापुरुष कहते हैं, इन आँखों के सामने ही सारा धन मिट्टी में मिल जाना है। यह अनहोनी बने उससे पहले ही तूं सावधान हो जा। तेरे आत्मधन को बचा ले। इस अनहोनी को कोई रोक नहीं सकता। यह

जन्म तुम्हारे लिये जागने का है अतः तुम जाग जाओ.... और देखो.... मृत्यु क्षण-क्षण में हमारे निकट आ रही है। धर्म का संचय करना चाहिए, लेकिन आज धर्म के बदले धन का संचय करने में ही सारा जगत डूब रहा है। मानो अजर-अमर बनकर यहीं स्थाई रहने का हो! इसीलिए बड़े-बड़े फैलाव/पसारा करता जा रहा है। उदर पूर्ति हेतु दो रोटी के लिए चाहे जैसा पाप करने में नहीं हिचकता है। बस रात-दिन धन का संचय करने में ही आकण्ठ डूबा हुआ है। क्या पशु किसी वस्तु का संग्रह करता है? जबकि मनुष्य तो सात पीढ़ी तक नहीं खूटे उतना धन संग्रह करता है।

रे जीव.... !

बाल्यावस्था में तू मातृमुखी रहा....
युवावस्था में तरुणीमुखी बना....
वृद्धावस्था में पुत्रमुखी बना....
तो तू अन्तर्मुखी कब बनेगा....?

आवश्यकता का संयम

आसोज वदि ७

मानव की पूंजी

इस जगत में मानव जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। इस जन्म को प्राप्त करके क्या करना चाहिए यह सबसे बड़ा प्रश्न है। मानव के पास ही विचारधारा है। पशुओं में किसी प्रकार की विचारणा शक्ति नहीं होती है। वे तो केवल आहार संज्ञा, भय संज्ञा और मैथुन संज्ञा में ही रचे-पचे रहते हैं। देवगण स्वयं के सुख में मग्न रहते हैं अतः किसी भी दिवस विचार करने कि उन्हें आवश्यकता नहीं होती और अवकाश भी नहीं होता। नारकी के जीव वेदना मे पीड़ित रहने के कारण उनके पास भी कोई विचारशक्ति नहीं होती। केवल मनुष्य के पास में ही यह विशाल पूंजी है। मनुष्य विचार करके अपने जीवन और व्यवहार में परिवर्तन ला सकता है। सौ वर्ष पहले के मनुष्यों का जीवन, रहन-सहन, पहनावा, और कार्यक्षमता कैसी थी और आज कैसी है? मनुष्य स्वयं परिवर्तनशील है। शास्त्रकार कहते हैं - हे मानव, तू सावधान हो जा। बिगड़े हुए लड़के की चिन्ता माता-पिता को कितनी होती है? लड़के को तो आनन्द आता है, किन्तु वह माता-पिता कि अर्न्तवेदना को नहीं समझ पाता। जबकि वह माँ-बाप के खून का पानी करता रहता है। उसी प्रकार महापुरुष हमारे जैसे मार्ग भ्रष्ट और भोग-विलास में डूबे हुओं को खोजता है। हमारे पीछे वे अपना कितना कीमती समय नष्ट करते हैं किन्तु आवारा घूमते हुए लड़के की तरह हमारे ऊपर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। हमारे पूर्वजों ने मन्दिर बनवाएं, किसलिए? पुजारियों के लिए? तुम्हें तो मन्दिर के दर्शन करने का भी अवकाश नहीं है। निःस्वार्थ भाव से साधु-संत धर्म का मर्म समझाने के लिए गाँव-गाँव घूमते हैं, पर तुम्हे धर्म सुनने का अवकाश ही कहाँ है, जबकि टी.वी. पर रामायण अथवा

महाभारत आती हो अथवा हमारे नगर में कोई अभिनेता आता हो तो हम सौ कामों को छोड़कर उसके पीछे दौड़ते हैं.... अपने हित के लिए तुमने क्या किया? तुम तो व्यर्थता में जीवन निष्फल कर रहे हो।

आवश्यकताओं को कम करो

महापुरुष कहते हैं कि धर्म की सच्चे अर्थ में आराधना करना चाहते हो तो पहले धर्म को समझना होगा। धर्म कैसा? अहिंसा, संयम और तप से युक्त तथा मन, वचन और काया का संयम हम देख चुके हैं। अब शेष रहा आवश्यकता का संयम अर्थात् आवश्यकताएं कम करो। मेरे गुरु महाराज कहते थे कि सरकार ने जनता को 'उत्पादन बढ़ाओ' का सूत्र दिया और जनता ने उसे अंगीकार किया। पचास वर्ष पहले इस देश में जिस प्रकार की शान्ति थी, वह शांति उत्पादन बढ़ने से बड़ी या घटी? आज यह देश पच्चीस हजार करोड़ से अधिक का कपड़ा विदेश भेजता है। ऐसी एक वस्तु नहीं, अनेक वस्तुएं यह देश उत्पादन बढ़ाकर बाहर भेज रहा है। चीजों और वस्तुओं का ढगला है, किन्तु जीवन में शान्ति कहाँ? मनुष्य तो अशान्त का अशान्त ही नजर आता है। चीज - वस्तुओं की अपेक्षा मनुष्य निर्माल्य अथवा बेकार बन गया है, रोगों का घर बन गया है। प्रत्येक काम में मशीन-कचरा निकालने के लिए और कपड़ा धोने के लिए मशीन, अनाज पीसने के लिए तथा बर्तन साफ करने के लिए मशीन आ जाने के कारण मनुष्यों के हाथ-पैर बेकार हो गये हैं। काम करने के लिए शरीर को जो परिश्रम मिलना चाहिए वह नहीं मिलता अत: कमर के रोग पैरों के रोग घर कर गये हैं। शरीर कुरूप बन गया है। चर्बी बढ़ गई है। पहले हमारी बहनें सारा काम स्वयं ही करती थी और ८० वर्ष की अवस्था में भी ५-७ किलोमीटर चल सकती थी। शरीर भी कसा हुआ और सुढौल रहता था। आज तो खाना बनाने के लिए भी खड़े होकर बनाना पड़ता है। खड़े-खड़े रसोई बनाने से पैर के सांधे जकड़ जाते हैं। अरे, खाने के लिए भी डायनिंग टेबल होती है। हमारे पूर्वजों ने

तो नीचे बैठकर ही खाना खाया है। अरबों साल ऐसे ही बितायें है। नीचे बैठकर खाने से शरीर के अमुक भागों को दबाव मिलता है, जिससे शरीर को अनेक प्रकार के फायदे होते हैं, किन्तु आज तो डायनिंग टेबल न हो तो हमारी जीवन शैली नीची गिनी जाती है। खाने में भी छुरी, काँटा और चम्मच। तुम्हे हाथ मिले हैं, क्या करने के लिए? हाथ में से तो अमृत झरता है। हाथ में तो सम्पूर्ण शरीर की विद्युत शक्ति रहती है। माँ अपने हाथ से ही पुत्र को ग्रास बनाकर खिलाती है क्योंकि उस हाथ में अमृत भरा हुआ होता है। महापुरुष भी आशीर्वाद देने के लिए सिर पर हाथ रखते हैं। सिर पर सुषुम्णा नाम की नाड़ी का द्वार है। उस पर हाथ रखते ही आशीर्वाद सीधा भीतर उतरता है जैसे - बरसात का पानी जमीन में उतर जाता है। इस युग के उक्त साधन वास्तव में देखा जाए तो मनुष्य को विनाश के मार्ग पर ले जाने वाले हैं। **उत्पादन बढ़ाओ** ने जो जीवन में शान्ति थी उसका भी हरण कर लिया है। वास्तव में तो **उत्पादन बढ़ाओं के स्थान पर 'आवश्यकताएं घटाओ यह शिक्षा देने की आवश्यकता है।'** हमारे साधु जीवन में किसी प्रकार की आवश्यकता नहीं है इसीलिए हम निश्चिन्त हैं। निजानन्द में गोते लगा रहे हैं। जबकि तुम्हारे जीवन में तो प्रातःकाल होते ही किसी न किसी वस्तु की आवश्यकता होती है और उसके पीछे दिमागी घुड़दौड़ प्रारम्भ होता है। इसीलिए तो शास्त्रकार कहते हैं कि तुम अपनी आवश्यकताएं कम करो, जीवन में शान्ति स्वतः ही चली आएगी। हमारे पास में शक्ति का अखूट खजाना है। आत्मा में ही आनन्द/सुख भरा हुआ है। पर हम भीतर की ओर झांकते भी नहीं। बाहर के पदार्थों के पास से सुख और आनन्द की भीख मांगा करते हैं। सारी जिन्दगी भीख मांगने पर भी, सुख अथवा आनन्द हमें नहीं मिलता।

भीतर तो देखो?

एक भिखारी था। किसी स्थान पर टाट बिछाकर भीख मांगा करता था। भीख मांगते-मांगते उसकी सारी जिन्दगी बीत गयी किन्तु उसे

न तो अच्छा खाने को मिलता था और न ही पहनने को अच्छे वस्त्र। बचपन से लेकर बुड्ढा हुआ मरने तक उसने वह जगह नहीं छोड़ी। उसके मरने के बाद दूसरे भिखारियों को ऐसा लगा कि यह स्थान अपशकून वाला है। इस भिखारी ने वहाँ बैठकर भीख मांगी किन्तु वह कभी सुखी नहीं हुआ अतः हम इस स्थान को खोद डालते हैं। सब भिखारी इकट्ठे हुए और उस जमीन को खोदने लगे। कुछ खुदाई होने पर आँखों को चकाचौंध करने वाला स्वर्ण मोहरों से भरा हुआ एक घड़ा निकला। इस घड़े पर ही बैठकर उसने सारी जिन्दगी बिताई किन्तु उसके पल्ले कुछ नहीं पड़ा क्योंकि उसने कभी भी झुककर देखा ही नहीं। उसी प्रकार हम भी कभी भी भीतर अन्तर में दृष्टिपात नहीं करते हैं और अन्त में भिखारी के समान सारी जिन्दगी को हारकर इस लोक से चले जाते हैं।

विवाह अर्थात् प्रभुता में प्रयाण या पशुता में

मनुष्य विवाह करता है। तब कहा जाता है कि प्रभुता में पैर रख रहा है। वह प्रभुता होती है या पशुता। जिस प्रकार बैल के नाक में नाथ (नकेल) डालकर चलाया जाता है, उसी प्रकार स्त्री पुरुष को घुमाती रहती है। पुरुष परतन्त्र बन जाता है। बड़े-बड़े राजा भी स्त्री की परवशता को स्वीकार कर जीवन हार गये हैं।

सयाजीराव गायकवाड

बड़ौदरा के महाराज निःसन्तान ही परलोक सिधार गये। राजगद्दी पर कौन आएगा यह विकट प्रश्न था। नियम ऐसा था कि सगोत्रीय मनुष्य ही उस सम्पत्ति का मालिक होगा और वह गायकवाड थे अतः गायकवाड ही होना चाहिए। उनकी रानी हकदार को ढुढंने के लिए निकलती है। उस समय में महाराष्ट्र में गायकवाडों की बस्ती अच्छी संख्या में थी। वह कलवाणा नाम के गाँव में गई। वहाँ खोज की। सब गायकवाड इकट्ठे हुए, किसको पसंद किया जाए? क्योंकि बड़ी उम्र का मनुष्य भी काम का नहीं और बहुत छोटी उम्र का व्यक्ति भी काम में नहीं आ सकता। मध्यम

अवस्था का व्यक्ति चाहिए। सयाजीराव नाम के लड़के पर उनकी स्वीकृति के कलश का पानी डाला गया। वे चार भाई थे। सयाजीराव का नम्बर तीसरा था। उनको ले जाने के लिए उनके माता–पिता से याचना की। माता को खबर लगी कि मेरे पुत्र को ले ज़ाने के लिए कोई महिला आई है। अधीर होकर [माथा कुटने लगी] रुदन करने लगी और क्रोध में आ गई। कहने लगी– क्या तेरे लिए मैंने पुत्र को पैदा किया है, मैं नहीं देती। किन्तु राज के सामने किसकी चलती है। बड़ा घाव सा हो गया, बड़ी मुश्किल से समझाकर उस पुत्र को लेकर आए। आज भी सयाजीराव की माता का कपाल में घाव पड़ा हुआ फोटो मालेगाँव से आगे जाते हुए कलवाणा गाँव में एक बंगला आता है, वहाँ मौजूद है। सयाजीराव को बड़ौदरा लेकर आए। अच्छे–अच्छे शिक्षकों को रखकर उनको पढ़ाया–लिखाया। वे खूब तेजस्वी निकले, साथ ही वे धर्म के प्रेमी भी थे। उन्होंने सन्तों को बुलाकर धर्म का अभ्यास किया। सयाजीराव का दुनिया में नाम और डंका बजता था, किन्तु वे भी अपनी स्त्री के सामने लाचार थे। उन्होंने दो बार विवाह किया था। पहली स्त्री से फतेहसिंह नाम का पुत्र हुआ था। उसके स्वर्गवास के पश्चात् दूसरी बार चिमनाबाई नाम की स्त्री के साथ विवाह किया। उसको भी एक लड़का था। राज्य के नियमानुसार राजगद्दी तो फतेहसिंह को ही मिलनी चाहिए किन्तु यह चिमनाबाई को तनिक भी पसंद नहीं था। सयाजीराव बाहर से महल में आते कि उसी समय चिमनाबाई रोना–धोना शुरू कर देती। फतेहसिंह को तो राज मिलेगा और मेरे लड़के को क्या मिलेगा। प्रतिदिन नई–नई मांग करने लगी। सयाजीराव उसके रात–दिन के झगड़े से अत्यन्त त्रस्त हो गये। और त्रस्त होकर अपना अधिकांश समय स्वीट्जरलैण्ड में बीताने लगे। जीवन के अनेकों वर्ष वहाँ पर व्यतीत कर दिये। इसे प्रभुता का पगला कहें या पशुता का कदम।

आज का मनुष्य पदार्थों के पीछे पागल बना हुआ है। इसी कारण वह भटक रहा है। यदि परमात्मा के पीछे पागल बनोगे तो ही संभल सकोगें।

धर्म मित्र कैसा हो?

आसोज वदि ८

धर्म राजमार्ग है

शास्त्रकार महाराज, जगत का कल्याण हो इसलिए धर्म का मङ्गलमय मार्ग बता रहे हैं। सुख और शान्ति के लिए यह एक ही मङ्गलमय मार्ग है। धर्म, यह कोई वृद्धों का मार्ग नहीं है अपितु यह छोटे-बड़े सबके लिए है। किसी भी एक गाँव में जाना हो तो सबके लिए एक ही मार्ग होता है। क्या वृद्धों के जाने का मार्ग अलग होता है? क्या युवकों के जाने के लिए मार्ग अलग होता है? और क्या बालकों के लिए जाने का अलग मार्ग होता है? ऐसा कुछ नहीं होता है। युवकों और बालकों के लिए एक समान ही मार्ग होता है। इस मार्ग पर सब लोग जा सकते हैं किन्तु हम लोगों ने धर्म के मार्ग को इस समय सिर्फ वृद्धों के मार्ग के लिए ही सीमित कर रखा है। युवकों का तो इस धर्म से किसी प्रकार का सम्बन्ध ही नहीं रहा है। वे तो निश्चिन्त होकर स्वयं के व्यापार में खेल रहे हैं। महापुरुष उनको सावधान करते हैं कि हे भाई! जरा आँख खोलकर तुम देखो तो सही! तुम्हारे सामने किस प्रकार की गतियाँ मुँह खोलकर खड़ी है!

चार गति का वर्णन

नरक की भयंकर यातनाएं सामने खड़ी है। 'योगशास्त्र' नाम के ग्रन्थ में आचार्य भगवन् श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज नरक का वर्णन करते हैं। सात नरक हैं। उसमें प्रारम्भ के तीन नरकों में भयंकर गर्मी है। वह गर्मी भी कैसी, वहाँ रहे हुए नरक के जीवों को कोई पृथ्वी पर लाकर चौबीस घण्टे सुलगती हुई भट्टी में डाल दे तो उसे छ: महीने तक झपकी/नींद आ जाए। ऐसी भीषण गर्मी वहाँ रहती है। अन्तिम तीन नरको में अतिशय ठण्डी रहती है। ठण्ड भी कैसी? वहाँ रहे हुए नरक के जीव को

यहाँ लाकर बर्फ की शिलाओं पर सुला दिया जाए तो वह छः महीने तक निश्चिन्त होकर सो जाए। वहाँ ऐसी कातिल ठण्ड है। चौथी नरक में ठण्ड और गर्मी दोनों है। नरक के दुःखों का वर्णन सुनते-सुनते हृदय कांप उठता है। परमाधामी देव तीक्ष्ण आरों से उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं। भयंकर प्यास से पीड़ित नारकियों को वैतरणी नाम की नदी की ओर दौड़ाते हैं। उस नदी में पानी के स्थान पर गर्म किया हुआ शीशा रहता है। ताप से पीड़ित नारकी छाया की आशा से असिपत्र वन में दौड़ते हैं, तो उस वृक्ष के पत्ते तलवार के समान तेज धार वाले होते हैं और वे शरीर का भेदन कर देते हैं। परस्त्रीगमन के सुख को याद दिलाते हुए उनको लोहखण्ड की धधकती पुतलियों के साथ आलिंगन करवाते हैं। माँस और शराब के स्वाद की याद दिलाते हुए उनको गरमागरम शीशा पीलाते हैं। भूंजते/पकाते हुए, तीक्ष्ण शस्त्रों से छिन्न-भिन्न होते हुए भयंकर वेदनाओं से चीख फाड़ते हुए नरक के जीव वहाँ क्षण मात्र भी सुख को प्राप्त नहीं करते हैं। वैसे नरक में सुख के मार्ग की कल्पना भी नहीं की जा सकती। देवलोक में सुख ही सुख है] किन्तु वह भी सच्चे सुख का मार्ग नहीं है। देवगण सुख में अत्यन्त आसक्त होने के कारण जब उनके वहाँ से च्युत होने का समय आता है तब वे दीन बनकर प्रबल आघात से पीड़ित होते हैं। **जहाँ आसक्ति होती है वहाँ उत्पत्ति होती ही है।** इस नियम के आधार पर वे पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में जाकर गिरते हैं। तिर्यञ्च गति तो हमारी आँखों के सामने ही है। उसकी वेदनाओं को हम अपनी आँखों से देख रहे हैं। चींटी से लेकर हाथी तक के जीवों को होने वाली भयंकर पीड़ाएं हमारी आँखों के सामने है। केवल यह मानव जन्म ही एक ऐसा है, जहाँ मानव चाहे तो सुख का मार्ग प्राप्त कर सकता है। बस जीवन को बदलना मात्र है, आकार देना मात्र है। पत्थर तो पत्थर ही है, किन्तु उसको शिल्पीगण टांचते हुए एक महामूर्ति का निर्माण करते हैं। लाखों लोग उस मूर्ति के चरणों पर गिरते हैं। वह

स्वयं जड़ होते हुए भी चेतन से भी बढ़कर है। जबकि मनुष्य तो चेतन स्वरूप है। प्रभु के वचन रूपी चोट खा-खाकर वह देव बन जाता है। पर वह चोट खाता ही नहीं। इसीलिए चेतन होने पर भी वह जड़ जैसा है। **टांच खाकर पत्थर जड़ में से चेतन बनता है और मानव टांच नहीं खाकर चेतन में से जड़ बनता है।** सुख का सच्चा मार्ग प्राप्त करने के लिए टांच खानी ही पड़ेगी। जैसा कि भगवान कहते हैं - 'क्रोध न कर'। भगवान के वचन रूपी यह चोट यदि हम सहन करेंगे तो देव जैसे बन जाएंगे, किन्तु हम तो उनके समक्ष प्रश्न पर प्रश्न करेंगे कि, नहीं, साहेब! क्रोध तो आ ही जाता है। इसके बिना काम नहीं चलता है। तो फिर ऐसी अवस्था में हम देव के स्थान पर दानव बनते जाते हैं। इन्सान के बदले शैतान बनते जाते हैं। आयुष्य बहुत कम है। थोड़े से ही वर्षों में हमें अपना मार्ग पकड़ना ही है। पानी का प्रवाह जिस प्रकार सड़-सड़ बह रहा है, यह आयुष्य भी उसी तरह बह रही है। जीवन के अधिकांश भाग के वर्ष हमारे युं ही बीत चुके हैं। अब जो तुम शेष जिन्दगी जी रहे हो, वह तो ब्याज के वर्ष हैं। ब्याज के वर्षों में भी हम सावधान नहीं हुए, तो बाद में नीचे की गतियों में चक्कर काटते रहेंगे।

हमारा सदा का साथी

किसी भी शास्त्र का पृष्ठ खोलिए वहाँ तुम्हें एक ही निष्कर्ष मिलेगा कि मानव भव दुर्लभ है। दुर्लभ होने पर भी अनन्त पुण्यरासी के बदले हमको वह मिल गया है, तो अब क्या करना? क्या भोग सुखों में उसको नष्ट कर देना है? जगत का अधिकांश वर्ग खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना आदि बाह्य पदार्थों में पड़ा हुआ है, तो कुछ लोग अन्दर के पदार्थों में क्रोध, मान, माया, ईर्ष्या, असूया, दम्भ, प्रसिद्धि, कीर्त्ति आदि के पीछे पड़ा हुआ है। कोई विचार करता है कि बंगला बनवाना है, मोटरकार लानी है, आभूषण घड़वाने है, यह लेना है, वह लेना है। कई जीवों के भीतर के पदार्थों में भटके हुए हैं। इसको नीचे गिराना है, इसके पास से

झटकना है। यह मेरे से आगे कैसे है? इसको बराबर बताना है आदि। रात-दिन ऐसी ही विचारणाओं में फंसा रहता है किन्तु अन्त समय का साथी कौन है? सदा का साथी, सर्वदा हमारा रक्षण करने वाला, सर्वदा हमको सन्मार्ग पर ले जाने वाला कौन है? धर्म ही है। तुम्हारे पास चाहे जितनी अथाह सम्पत्ति हो। चाहे जितना वैभव हो वह इस लोक और परलोक में तनिक भी साथ देने वाला नहीं है। धर्म ही एक मात्र हमारा सच्चा मित्र है। शास्त्रों में एक रूपक आता है।

तीन मित्रों का रूपक

एक सेठ था। उनके तीन मित्र थे। सेठ का राजा के साथ भी अच्छा सम्बन्ध था। पहले मित्र को सेठ प्राणों से भी ज्यादा अपना मानते थे। उसके पीछे वह अपना सबकुछ होंम देते थे। उस से अत्यंत प्रेम था। संक्षेप में जीव एक और शरीर अलग-अलग थे। दूसरे मित्र के साथ प्रगाड़ मित्रता नहीं थी परन्तु कोई प्रसंग होने पर वे मिलते थे। तीसरे मित्र के साथ औपचारिक संबंध था। कदाचित् वह रास्ते में मिल जाए तो मुस्कुरा देते थे।

एक समय इस सेठ के विरुद्ध किसी ने राजा के पास शिकायत की। हे - राजन्! यह सेठ आपको मारने का षड्यन्त्र रच रहा है। आप सावधान रहियेगा। राजा कान के कच्चे होते हैं। यदि वे प्रसन्न होते हैं, तो निहाल कर देते हैं और नाराज होते हैं तो खत्म कर देते हैं। किसी भी प्रकार की जांच किए बिना ही दुष्ट मनुष्य की बात पर विश्वास करके राजा ने सेठ को पकड़ कर लाने का हुक्म दे दिया। इस बात की खबर सेठ को लग गई की मुझे पकड़ने के लिए शीघ्र ही राजपुरुष आने वाले हैं। क्या करूँ? यदि मैं भाग जाऊँ अथवा कही छुप जाऊँ तो बच जाऊँगा किन्तु कोई मददगार हो तो यह सम्भव है। मैं किसके पास जाऊँ? वह सेठ इस प्रकार का विचार करता ही है कि उसी समय उसे प्राण प्रियमित्र की याद आई। सेठ को पूर्ण विश्वास था कि यह मित्र मुझे बचा लेगा। पूर्ण विश्वास

के साथ मित्र के घर गया और सारी स्थिति कह सुनाई। सुनते ही प्राण प्रिय मित्र चौंका। उसने विचार किया कि यदि मैं इस राज्य के अपराधी को आश्रय दूंगा तो यह आफत मेरे ऊपर ही आ जाएगी। मैं कुटुम्ब के साथ बरबाद हो जाऊँगा। इसका तो एक घड़ी भी यहाँ खड़ा रहना उचित नहीं है। किसी को खबर लग गई तो मेरे बारह बज जाएगें। उसने सेठ से कहा - हे सेठ! मदद की आशा रखे बिना ही तुम अपना रास्ता नापो। जो राजा को इसकी गन्ध भी मिल गई तो मेरा खेल खत्म हो जाएगा। जल्दी खड़े होकर चले जाओ। सेठ तो यह उत्तर सुनकर हक्के-बक्के से रह गये। यह क्या? यह मेरे प्राण प्रिय मित्र के वचन हैं? सेठ का तो कलेजा विन्ध गया। जिसके पीछे पागल होकर मैंने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया, जिसको मैं अपना प्राण समझता था, उसी के ये शब्द! सेठ एकदम निराश हो गया। तुम्हारे आज के मित्र भी ऐसे ही होते हैं न! जिसकी पंगत में लड्डू उसी पंगत में हम। स्वामी रामतीर्थ कहते थे कि पूर्व काल में लोग प्रार्थना करते थे कि भगवान् मुझे मेरे शत्रुओं से बचाना किन्तु आज भगवान के सन्मुख यह प्रार्थना करनी पड़ेगी की भगवन्! मेरे मित्रों से मुझे बचाना। तुम्हारी मित्र मण्डली कैसी है? हमेशा भोग विलास में ही मदमस्त रहती है। साथ ही तुमको भी खेंचकर कुमार्ग पर ले जाने वाली है, शराब जैसे भयंकर व्यसनो में डुबाने वाली है। व्यसन मित्रों की संगत ही तुम्हारे जीवन में छाई हुई है न? खरेखर यदि मित्र बनाओ तो संयमी को ही मित्र बनाना। जिसका सादा जीवन हो वही तुम्हें सही जीवन जीने की कला दे सकता है, परन्तु वह स्वार्थी नहीं होना चाहिए। सेठ उस स्वार्थी मित्र के शब्दों को सुनकर हताश हो अपने घर आ जाता है। उसी समय वार-त्यौहार के दिन मिलने वाला मित्र याद आता है, सेठ उसके घर जाता है। जाकर सारी घटना बताता है। प्राण प्रिय मित्र के समान ही इस मित्र ने भी उसको सड़क का रास्ता दिखा दिया। सेठ को ऐसा लगने लगा कि पैर के नीचे से धरती खिसक रही है। आँखों में मृत्यु तैर रही

है। वह वहाँ से वापिस लौटता है, उसी समय उसे तीसरे मित्र की याद आती है। कहावत है कि - डूबते मनुष्य को तिनके का भी सहारा काफी है। लकड़ी पकड़े तो समझ सकते हैं कुछ सहारा मिलेगा। किन्तु तृण पकड़ने वाले को हम क्या कहेंगे? मूर्ख ही कहेंगे न! मन में तो समझता है कि प्राण प्रिय दोस्त ने मुझे सड़क का रास्ता दिखाया। वार-त्यौहार को मिलने वाले मित्र ने भी मुझे घर से निकाल दिया। तो ऐसी अवस्था में कदाचित् मिलने वाले और आँखों की पहचान वाले मित्र से मुझे मदद की आशा नहीं करनी चाहिए। फिर भी लाख निराशाओं के बादल में भी एक अमर आशा छुपी हुई रहती है। इस आशा के सहारे वह उसके घर जाता है। सेठ को अपने घर के आंगन में आते हुए देखकर वह मित्र सामने आता है, प्रेम और मधुर वचनों के साथ उसका सत्कार करता है और आगमन का कारण पूछता है। सेठ उसके समक्ष अपनी सारी घटना सुना देता है। सेठ के मुँह से सारी घटना सुनकर वह मित्र तत्काल बोल उठता है - अरे सेठ, इस छोटी सी बात पर आप चिन्तित क्यों हो रहे हो? मित्र होने के नाते यह मेरा कर्त्तव्य है। संकट के समय जो सहायता करता है वही सच्चा मित्र कहलाता है। मैं तुम्हारी यदि मदद नहीं करूँगा तो मेरे जैसा मित्र किस काम का। चलो तैयार हो। आंगने में बांधे हुए घोड़े को तैयार किया तलवार बांधी, रास्ते के लिए कुछ भोजन लिया और स्वयं उस घोड़े पर सेठ को बिठाकर देश की सरहद के पार पहुँचा दिया। सीमा पार पहुँच कर कहा- यह घोड़ा लीजिए और इस पर बैठकर इस सीमा के पार दूसरे राज्य में चले जाइए। दूसरे राज्य में प्रवेश करने के बाद इस राजा की कोई भी चाल काम नहीं देगी। मेरी चिन्ता मत करिये। मैं राजा के साथ सम्बन्ध बनाकर उसके मन की बात उगलवा लूंगा। कुछ द्रव्य भी साथ लेते जाइए। दूसरे देश में जाओगे तो उस अंजानी दुनिया में आपका कौन होगा? सेठ तो आनन्द मग्न हो गया। मन में विचार करने लगा कि वाह रे वाह! यदाकदा मिलने वाले पहचान मित्र ने मुझे वास्तविक रूप

से उबार लिया जबकि पहले प्राणप्रिय मित्र और वार-त्यौहार के मित्र ने मेरे साथ धोखा किया। जिसके पीछे मैंने अपनी जिन्दगी के मूल्यवान वर्ष बरबाद कर दिये और इस मित्र ने मुझे किस प्रकार बचा लिया? मैं पहले से ही इसकी संगत करता....। यह एक छोटा सा रूपक है, कहानी या वार्ता नहीं किन्तु हमारे जीवन को चेताने वाला रूपक है। जीवन का सार है। वह किस प्रकार? यह आगे देखेंगे।

1. अक्षुद्र, 2. रूपवान, 3. प्रकृति सौम्य, 4. लोकप्रिय, 5. अक्रूर, 6. पापभीरु, 7. अशठ, 8. दाक्षिण्य, 9. लज्जालु, 10. दयालु, 11. मध्यस्थ, 12. गुणानुरागी, 13. सत्कथा, 14. सुपक्षयुक्त, 15. विशेषज्ञ, 16. सुदीर्घदर्शी, 17. वृद्धानुगत, 18. विनीत, 19. कृतज्ञ, 20. परहितचिन्तक, 21. लब्धलक्ष्य आदि 21 गुणों से युक्त (सम्पन्न) व्यक्ति ही सच्चा धर्मी है।

अनमोल रत्न

आसोज वदि ९

बंगले का सच्चा मालिक कौन?

शास्त्रकार महाराज हमको समझा रहे हैं कि यह धर्म कितना अमूल्य रत्न है? इस दुर्लभ रत्न में अनन्त शक्तियाँ समाई हुई हैं। यह इस लोक परलोक दोनों को सुखी करता है। तुम्हारे द्वारा संग्रहीत इस सम्पत्ति का तुम इस लोक में भी अच्छी तरह भोग नहीं कर पाते हो, तब यह परलोक में कैसे साथ आएगी। लाखों रूपये खर्च करके बहुत बड़ा शानदार बंगला बनवाया, किन्तु व्यापार करते हुए तुम इस भव्य महल में कितने घण्टे रहने वाले हो और तुम्हारे घर में काम करने वाले नौकर इसमें कितने घण्टे रहने वाले हैं। इस भव्य महल का अधिक उपयोग कौन करता है? तुम या तुम्हारे नौकर-चाकर? मालिक कौन है? जरा गहराई से विचार करो तो सत्य समझ में आएगा। धर्म तुम्हें सच्ची समझ देगा। व्यवहारिक धर्म तो सभी लोग करते हैं। हिन्दु करते हैं, मुस्लिम करते हैं और ईसाई भी करते हैं किन्तु मुझे तुम्हे सत्य धर्म समझाना है। मनुष्य अनेक प्रकार के संकल्प करता रहता है। धन-प्राप्ति, महल बनाने के अथवा मोटरकारें रखने के संकल्प करता है। किन्तु सच्चे धर्म को समझने का संकल्प करने वाले कितने हैं? मुझे सच्चे धर्म को प्राप्त करने का संकल्प करने वाला तुम्हें बनाना है। सच्चा संकल्प होगा तो अपने आप तुम्हारी प्रगति होगी। मनुष्य किसी भी वस्तु का संकल्प करता है तो उसको प्राप्त करने के लिए आकाश-पाताल एक करता है अर्थात् रातदिन परिश्रम/मेहनत करता है। उसी प्रकार जो धर्म प्राप्ति का संकल्प करोगे तो तुम्हें सच्चा धर्म मिलकर ही रहेगा। धर्म किस प्रकार का रक्षण करता है, यह तीन मित्रों के रूपक द्वारा हम देख चुके हैं।

प्राणप्रिय मित्र - शरीर

हमारा प्रतिदिन का प्राणप्रिय मित्र कौन है? जानते हो? हमारा शरीर। हम इसको, जो चाहिए, जब चाहिए वह सब कुछ देते हैं। यह गुटका मांगे तो गुटका देते हैं, पानमसाला चाहे तो पानमसाला देते हैं। अरे, इनसे भी बड़कर वह यदि शराब चाहता है तो शराब देते हैं और अण्डा मांगता है, तो वह भी देने के लिये तैयार रहते है। ठीक है न! तुम रातदिन कमाते हो किसके लिये? धन मिले तो भाग्यशाली होता है या धर्म मिले तो भाग्यशाली होता है? शास्त्रों में नौ नन्द की कथा आती है। उन्होंने सोने की ९ टेकरियाँ/टीले बनवाये थे किन्तु वह साथ क्या ले गया? सोना क्या? पीली मिट्टी या और कुछ? दस-बीस हजार की साड़ी भी क्या है? आखिर में कपड़ा ही तो है! या और कुछ है? ऐसा जब समझ में आएगा तब ऐसा लगेगा कि मुझे धन नहीं धर्म चाहिए। जिसके लिये रात-दिन लगे हुए हैं, जिसको नहलाया-धुलाया, खिलाया-पिलाया, सजाया किन्तु इस जीव के जाने का जब समय आता है, तो क्या यह शरीर हमारे साथ चलता है? नहीं, वह तो यहीं लकड़ियों में जल जाता है। रात-दिन का सम्बन्ध एक ही क्षण में समाप्त हो जाता है। यह हमारे प्राणप्रिय मित्र की कहानी है।

वार-त्यौहार का मित्र - स्वजनवर्ग

अब दूसरा मित्र वार-त्यौहार का मित्र है। वह है हमारे सगे-सम्बन्धि और स्वजन। जब जीव जाने का होता है, उस समय हमारे स्वजन-सम्बन्धि कुछ कर सकते हैं क्या? जो इस लोक में निःस्वार्थ सम्बन्ध रखते नहीं हैं, वे हमारे परलोक के सम्बन्ध में क्या विचार करने वाले होंगे? जीवन समाप्त हुआ, गए.... जला आए, खत्म हुआ। वे कोई इस प्रकार विचार करते हैं कि इसके पीछे हम कुछ दान पुण्य करें, जिससे की उसको परलोक में शान्ति मिले। नहीं, ये लोग तो ऐसा विचार करते हैं कि उससे हमें क्या लेना-देना। करना होगा तो उनके लड़के ही करेंगे

न? लड़का विचार करता है कि गए तो आफत मिटी, निश्चिन्त हुए। अब उनके पीछे धनव्यय करने का अर्थ क्या है? तो कितने ही लड़के समाज के भय से माँ-बाप के पीछे एकाध पूजन करवा देते हैं, बस पूर्ण हुआ। जितनी चिन्ता लड़को के पीछे माँ-बाप करते हैं, उसका शतांश भी चिन्ता लड़के माँ-बाप के लिए नहीं करते हैं। परलोक की चिन्ता करने का तो प्रश्न ही कहाँ है। इसमें भी यदि माँ-बाप बीमार हों, बीमारी लम्बी चली हो और वे मर जाएं तो वे ही स्वजन और लड़के कहेंगे, चलो, आफत मिटी, पिण्ड छूटा। यह वार-त्यौहार के मित्र स्वजन-सम्बन्धी हैं।

माँ-बाप की ओर कैसी निर्लज्जता....!

एक मात्र पुत्र है। पिता अस्पताल में मरण शय्या पर पड़ा है। पास में रहे हुए स्वजन ने लड़के के ऑफिस में फोन करा और कहा - हे भाई! तुम जल्दी आओ। तुम्हारे पिता अन्तिम अवस्था में हैं। पुत्र ने जवाब दिया- मैं अभी आवश्यक कार्य में व्यस्त हूँ, निकल नहीं सकता, इसीलिए आप अच्छी तरह संभालते रहना। पुत्र, पुत्र! कहता हुआ पिता परलोक की यात्रा पर पहुँच गया। सेवा में रहे हुए स्वजन ने उस निष्ठुर पुत्र को फोन किया - भाई! अब तो जल्दी आ जाओ, तुम्हारा पिता तुम्हें देखने के लिये तरसता हुआ मर गया है। कंधा देने के लिये तो आ जाओ। इस कलयुग की हवा से रङ्गे हुए पुत्र ने क्या जवाब दिया, सुनना है? उस निर्लज्ज पुत्र ने क्या कहा? अब मैं आकर क्या करूँगा। आप ही क्रियाकर्म कर डालिए। कितनी निष्ठुरता है! उनके जीवित रहते हुए भी हम उन्हें नहीं संभाल सके तो मरने के बाद हम कहाँ चिन्ता करने वाले हैं।

पहचान वाला मित्र - धर्म

तीसरा मित्र जो कभी-कभी मिलने वाला है/पहचान वाला है, वह है हमारा धर्म। जो सच्चा मित्र है उसके साथ हमारे सम्बन्ध कैसे हैं? दर्शन करने गये, रास्ते में मिल गए तो नमस्ते कह दिया। क्षण मात्र का ही तो सम्बन्ध है न! शास्त्रकार कहते हैं - जो इस लोक में तुम्हारा रक्षण

करेंगे, वही परलोक में तुम्हारे साथ चलेंगे। इस धर्म को पहले समझो और फिर स्वीकार करो।

'धर्मरत्नप्रकरण' के प्रणेता श्री शान्तिसूरिजी महाराज गुणरूपी रत्नों के खजाने के समान प्रभु महावीर स्वामी को प्रणाम करके, धर्मार्थी जीवों के लिए धर्म कैसा हो, उसके आराधक कैसे हों? समझा रहे हैं।

दुर्लभ मनुष्य जन्म कदाचित् महापुण्य के उदय से प्राप्त हो गया तब भी धर्म रूपी रत्न मिलना तो अत्यन्त दुर्लभ है। स्वयं धर्मार्थी हो और संत समागम करता हो तभी यह रत्न हाथ लगता है।

चिन्तामणिरत्न की शोध करने वाले युवक की कथा

हस्तिनापुर नामक नगर में नाग नाम का एक सेठ रहता था। उसके वसुन्धरा नाम की पत्नी थी और जयदेव नाम का पुत्र था। वह पुत्र विनीत, आज्ञापालक और नीतिवान था। वह समस्त कलाओं का जानकार था। जौहरी बना, रत्नों की परीक्षा करने में अत्यन्त कुशल बना। शास्त्रों को पढ़ते हुए उसे जानकारी मिली कि यदि चिन्तामणि रत्न यदि हाथ लग जाए तो बेड़ा पार हो जाए। वह चिन्तामणि रत्न देवाधिष्ठित होता है। बहुत खोज की, पर क्या वैसे ही मिल जाता? रात-दिन इस रत्न की खोज में भटकता रहता है। उसे एक ही धुन थी। मनुष्य के दिमाग पर जब मन की तरङ्ग हावी हो जाती है तो वह उसके पीछे दिन या रात नहीं देखता है। डुंगरों और पर्वतों में रखड़ता रहता है। अन्त में उसे कुछ भी हाथ नहीं लगा। माता-पिता कहते हैं - हे वत्स! यह रत्न इस जगत में विद्यमान ही नहीं है। यदि विद्यमान होता तो तेरे हाथ अवश्य लगता। ऐसा प्रतीत होता है कि केवल शास्त्रों में ही इसका वर्णन आया है। तू तो इन रत्नो से व्यापार कर किन्तु पुत्र के मन में तो एक ही लगन थी कि शास्त्रों की बातें कभी असत्य नहीं होती। जैसे-तैसे करके इस रत्न को मुझे प्राप्त करना है। इसलिए वह प्रतिदिन प्रभात होते ही घर से उसकी खोज के लिए निकल पड़ता है। एक समय वह डूंगरों पर फिर रहा था। उस समय कोई रबारी

खुद के भेड़-बकरियों को चरा रहा था। उसने एक बकरी के गले में रत्न लटकता हुआ देखा। वह रत्न के लक्षणों का जानकार था। सच्चा परीक्षक था। उसी समय परीक्षण किया तो उसे ज्ञात हुआ कि यही चिन्तामणि रत्न है। किसी मालिक को पूछे बिना बकरी के गले में से निकाल कर कैसे ग्रहण किया जाए। इसलिए उसने रबारी से पूछा - भाई! यह काँच का टुकड़ा तू मुझे दे दे और मैं इसके बदले बढ़िया से बढ़िया काँच के टुकड़े तुझे दे दूंगा। रबारी ने सोचा - यह भाई इस काँच के टुकड़े को मांग रहा है और इसके स्थान पर अच्छे से अच्छा देने को कह रहा है अत: निश्चित है कि यह टुकड़ा कुछ कीमती होगा। अन्यथा ऐसा कौनसा मूर्ख मनुष्य होगा जो खराब के स्थान पर अच्छा देगा?

रत्न की परीक्षा

आज तो अच्छी वस्तु के बदले खराब वस्तु देने वाले ही होते हैं। पूरे पैसे लेते हैं किन्तु नकली माल देते हैं इसलिए भगवान भी इनके साथ मिलावट करेंगे ही न! अनीति का धन उल्टे मार्ग पर ही ले जाता है। या तो वह व्यसन की ओर ले जाता है या दवाखाने में। रबारी ने उस टुकड़े को कीमती जानकर, देने के लिए मना कर दिया। दोनों के बीच में खैंचाखैंची चल रही थी रबारी ने पूछा - भाई! इस टुकड़े का तुम क्या करोगे? जयदेव ने उत्तर दिया - मेरे लड़के को खेलने के लिए यह टुकड़ा चाहिए। रबारी ने कहा - ऐसे तो बहुत से टुकड़े पड़े हुए हैं, उनको तू खोज ले, यह टुकड़ा तो मैं नहीं दूंगा। जयदेव ने सोचा - मुझे यह देने वाला नहीं लगता है, अत: इसको रत्न का महत्त्व समझा दूं। उसने कहा - भाई! यह काँच का टुकड़ा नहीं है अपितु चिन्तामणि रत्न है। इसके पास से जो भी याचना की जाती है, वह मिल जाती है। तू इसकी सावधानी पूर्वक रक्षा करना। उस रबारी को ऐसा लगा कि यह आदमी बकवास करता है क्या? यह काँच का टुकड़ा इच्छित वस्तु को प्रदान करता है, कैसे मान लिया जाए! इसकी परीक्षा तो करूँ कि यह देता है या नहीं।

उसने तत्काल ही रत्न को आदेश दिया - अरे, ओ रत्न! मुझे बोर लाकर दे, इस बकरे के लिए चारा लेकर आ और यहाँ छाया नहीं है तो छाया कर, किन्तु यह रत्न ऐसे ही कुछ थोड़े ही दे देता है। जयदेव पास में खड़ा था उसने कहा - अरे भाई! यह रत्न ऐसे तुझे कुछ भी देने वाला नहीं है। प्राप्ति के लिए तुझे तीन उपवास करने होंगे, इसकी पूजा करनी होगी। नम्रतापूर्वक नमस्कार करके ही इससे मांगना चाहिए। ऐसे ही इस रत्न को आदेश नहीं दिया जाता है। विधिवत् इस रत्न की साधना करनी पड़ती है।

भगवान के साथ भी माया....

आज हम क्या कर रहे हैं? संकट आने पर धर्म करने लग जाते हैं और संकट में से मुक्त होने के लिये भगवान से प्रार्थना करते हैं। सिर्फ उसी क्षण हम धर्म करते हैं और उसी क्षण ही उसका हम फल भी चाहते है। ऐसे फल कहाँ से मिलेगा? धर्म की तो आराधना, उपासना करनी पड़ती है। हम तो कहते हैं - हे शंखेश्वर दादा! जो मेरा यह कार्य हो जाएगा तो मैं आपके दर्शन के लिये आऊँगा अथवा अमुक रकम आपको भेंट चढ़ाऊँगा.... आदि.... किन्तु हे मूर्ख मित्र! भगवान ऐसे कोई धन से खरीदने की चीज नहीं है। सच्चे दिल से इनकी उपासना करनी चाहिए। बहुत से लोग ऐसा मानते हैं कि मन्दिर में जाकर धन की एक गड्डी से भण्डार भर देंगे, तो भगवान् हमारे ऊपर प्रसन्न हो जाएंगे। भगवान को तुम्हारे धन की आवश्यकता नहीं है। भगवान तो हृदय में दया, मानवता और परोपकारिता हो यही अपेक्षा रखते हैं, किन्तु आज तो इस प्रकार का धर्म पूर्णतः लुप्त होता जा रहा है।

मानव जीवन की सार्थकता किसमें है?

आसोज वदि १०

चिन्तामणिरत्न रूप धर्म

धर्म रूपी रत्न के अभिलाषियों को महापुरुष कह रहे हैं कि मानव जन्म की सार्थकता घूमने-फिरने, पहनने, ओढ़ने में नहीं है, किन्तु धर्म रूपी रत्न को प्राप्त करने में है। आयुष्य पूर्ण होने पर कहाँ जाएंगे? यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। गंभीरता से इस प्रश्न पर हमें विचार करना है। पदार्थों की प्राप्ति के लिए यह जन्म नहीं है किन्तु परमात्मा को प्राप्त करने के लिए यह जन्म मिला है। हम किस प्रकार के अर्थ के अभिलाषी हैं - पदार्थ या परमात्मा के? जगत् के अधिकांश समुदाय पदार्थ के प्रेमी हैं। धर्म के इच्छुक बहुत कम व्यक्ति हैं। मानव को ऐसा लगता है कि इस वैभवमय जीवन से ही मेरा कल्याण है, इसीलिए वह इसके पीछे पड़ा हुआ है/लगा हुआ है। बुद्धि एवं शक्ति और आरोग्य युक्त होने पर भी वैभव के पीछे वह पागल बनकर दौड़ रहा है और इस जन्म को व्यर्थ ही निरर्थक ही खो रहा है। जब इसकी समझ में यह आएगा कि धर्म ही श्रेयस्कारी है, तभी वह उसे प्राप्त कर सकेगा। महापुरुष धर्म का महात्मय हमें समझा रहे हैं।

धन से धर्म खरीद सकते हैं क्या?

तुम्हारे पास चाहे जितनी सत्ता और चाहे जितनी समृद्धि हो, किन्तु यदि धर्म नहीं है, तो वह सब पाप युक्त ऋद्धि है और वह पाप-ऋद्धि मनुष्य को दुर्गति में खेंचकर ले ही जाती है। इस दुर्गति से छुटकारा पाने के लिए धर्म ही समर्थ है। यह धर्म उत्तम रत्न है। मानव को यदि रत्न चाहिए तो वह रूपये-दो रूपये में नहीं मिलता। लाखों रूपयों मे भी वह

नहीं मिलता। चना, मुरमुरा आदि लेने हो तो रूपये-दो रूपये काम में आ सकते हैं। हीरा-मोती खरीदने के लिए तो अमूल्य सम्पत्ति चाहिए। रूपये पैसों की सम्पत्ति से धर्म हाथ में नहीं आता है। रूपये-पैसे तो अनेकों के पास होते हैं, किन्तु धर्म भी उसके अधीन है, ऐसा मानना मूर्खता है।

रत्न को प्राप्त करने वाला युवक

धर्म रूपी रत्न को खरीदने के लिए गुणरूपी सम्पत्ति चाहिए। मनुष्य ऐसा मानता है कि धन से सबकुछ खरीदा जा सकता है। महोत्सव किया, मन्दिर बनवाया, संघ निकाला, धन को पानी की तरह खर्च करने से उसके हाथ में धर्म आ गया हो, यह मानना हितकारक नहीं है। यह धर्म तो चिन्तामणि रत्न के समान है। गुणरूपी जवाहरात जिसके पास होगा वही इसे प्राप्त कर सकता है। पहले रबारी के पास चिन्तामणि रत्न था, किन्तु वह उस रत्न की कीमत आंक नहीं सकता था। जयदेव ने रत्न की आराधना विधि उस रबारी को समझाई किन्तु वह रत्न उसके पास सुरक्षित रहेगा ऐसा प्रतीत नहीं हुआ। कुछ समय तक जयदेव भेड़ बकरियों के झुंड के पीछे-पीछे चला। उसने सोचा की देखूं तो सही यह रबारी उस रत्न की आराधना किस प्रकार करता है? रबारी तो रत्न को कहता है - अरे हो चिन्तामणि रत्न, मेरी एक बात ध्यान से सुन ले। रास्ते भर वह बोलता रहा किन्तु रत्न ने कोई उत्तर नहीं दिया। अन्त में थककर उस रबारी ने कहा - तू मेरी बात नहीं सुनता है तो कोई बात नहीं। अब मेरी बात भी ध्यान पूर्वक सुन ले और मुझे तत्काल ही जवाब दे। रबारी ने कहा - बोल एक हाथ का मन्दिर और चार हाथ का देव, इसका उत्तर क्या है? रत्न कुछ बोलता नहीं। यह तो मेरी बात सुनता भी नहीं है, हुंकारा भी नहीं भरता है। यह सत्य है कि उस आदमी ने मुझे ठगने के लिए यह मार्ग बताया है। मैं तो एक वक्त भी भूखा नहीं रह सकता, वह तो तीन दिन भूखा रखकर मुझे मारना ही चाहता है। खाये बिना तो मेरी

गाड़ी चल नहीं सकती। इस काँच के पत्थर को कौन पूजेगा। ऐसा सोचकर उसने वह रत्न बकरी के गले में से निकाल कर फेंक दिया। जयदेव उसके पीछे धीमे-धीमे आ रहा था। उसने यह सब देखा.... उसने वह रत्न ले लिया और घर आया, अट्ठम कर उसने इस रत्न की विधिपूर्वक आराधना की। उस रत्न का अधिष्ठायक देव प्रसन्न हुआ। जयदेव ने मनोवांछित वस्तु की याचना की.... बहुत धन प्राप्त किया। लोगों को खूब दान दिया। अन्त में पूर्णतः सुखी हो गया।

महापुरुष कहते हैं कि 84 लाख जीवयोनि रूपी भयंकर अटवी को पार करते-करते महापुण्य के उदय से मानव जन्म को प्राप्त किया है। किन्तु जन्म-मरण के चक्र से छुटने के लिए अभी एक विशाल अटवी को पार करना शेष है, वह है-वृत्तियों की, विकारों की, और विचारों की। इस अटवी को पार करने के लिए (किसी समर्थ पुरुष) ईश्वर का साथ चाहिये ही।

84 लाख योनि के संस्कारों को जलाने के लिए तप रूपी अग्नि ही काम आती है। तप यानि अभ्यन्तर तप। हाँ, अभ्यन्तर तप को दृढ़ करने के लिए बाह्य तप सहारे का काम करता है।

निर्मल होने के लिए चेतना के भीतर भरे हुये वैभव-विलास के पदार्थों को दूर कर वहाँ नवपद की स्थापना करो।

मध्यस्थता

आसोज वदि ११

शास्त्रकार महाराज चिन्तामणिरत्न का दृष्टान्त देते हुए कहते हैं– चिन्तामणि रत्न हमारे पास कब तक रह सकता है और कब हमारी इच्छाओं की पूर्ति कर सकता है? जो सद्गुण रूपी वैभव हो तो यह रत्न स्थाई रह सकता है। नहीं तो पहले रबारी की तरह मांगने पर भी कुछ नहीं मिलता है और वह उसे फेंक देता है। आज हमारी स्थिति इसी प्रकार की है। धर्म की आराधना किए बिना ही प्रतिदिन भीख मांगने वाले भिखारी के समान हम धर्म के पास से बारम्बार याचना किया करते हैं.... किन्तु इच्छित वस्तु नहीं मिलने पर हम अपनी बुद्धि के अनुसार तराजु पर धर्म की तुलना करते है और कहते हैं कि कलयुग आया है.... धर्म करते हैं, फिर भी कुछ फल नहीं मिलता। धर्म में भी किसी प्रकार का सत्व/शक्ति नहीं रही है। हम जरा गहराई में उतरकर सोचें और आज के धर्मी कहलाने वालों के घर में झांककर देखें, तो घर में एक मात्र अधर्म ही देखने को मिलता है। मानों समस्त अधर्मी लोग ही इकट्ठे हुए हों.... घर में माता-पिता का तिरस्कार करते हैं, व्यसन में आकण्ठ डूबे हुए होते हैं। किसी की भी मान्यता/नियम का पालन नहीं करते हैं। ऐसे परिवारों में धर्म कैसे टिक सकता है। चिन्तामणि रत्न के समान पुण्यशाली को ही धर्म रूपी रत्न की प्राप्ति होती है। धर्म रत्न को प्राप्त करने के लिए पहले योग्यता प्राप्त करनी होती है। **धर्म को पाने के लिए श्रावक के २१ गुण पूज्य शान्तिसूरिजी महाराज धर्मरत्न प्रकरण में बता रहे हैं।** हम १० गुणों का विवेचन पूर्व में कर चुके हैं। अब **धर्म को प्राप्त करने योग्य श्रावक का ११ वाँ गुण मध्यस्थता है, उसका विवेचन कर रहे हैं।**

यह गुण अत्यधिक महत्त्व का है। मनुष्य की छाप ऐसी पड़नी चाहिए कि विरोधी भी कह उठे कि ये जो कहेंगे वह हमें मंजूर है। मनुष्य ऐसा ही तटस्थ होना चाहिए। बहुत से लोग इस गुण के अभाव में सच्चे तत्त्व को प्राप्त नहीं कर सके हैं। मैंने ग्रहण किया वही सच्चा है। ऐसे व्यक्ति को सौ बार भी समझाएं तो वह तटस्थ न होने के कारण अपनी बात का आग्रह नहीं छोड़ता.... आज समाज के अनेक कार्यों में तटस्थता के अभाव में दरारें पड़ जाती है। मध्यस्थ भाव से विचार करें तो बहुत से क्लेश शान्त हो जाते हैं.... मध्यस्थता के अभाव में, कुल परम्परा से चला आता हुआ असत्य धर्म समझते हुए भी नहीं छोड़ सकता.... उसको सन्मार्ग दिखाए तो भी वह स्वयं के धर्म का पूंछड़ा छोड़ता नहीं है।

भीष्मपितामह

पाण्डव-कौरवों के युद्ध के समय भीष्मपितामह कौरवों के पक्ष में थे। युद्ध के समय युधिष्ठिर भीम को कहते हैं - हे भीम! तुम जाओ, प्रतिपक्षियों के अग्र मोर्चे पर रहे हुए भीष्मपितामह का आशीर्वाद लेकर आओ। भीम कहता है - भाई! आप यह क्या कह रहे हैं? विरुद्ध पक्ष में रहे हुए व्यक्ति के पास से आशीर्वाद लेने के लिए जाऊं। क्या वह मुझे जीतने का आशीर्वाद दे देंगे? युधिष्ठिर कहते हैं - तुम जाओ! मै तुम्हें कहता हूं न! मध्यस्थ भावधारी ही ऐसा कह सकता है। बड़े भाई की मान्यता थी। अत: दलीलों के चक्कर में न पड़कर भीम सीधे ही शत्रु की छावनी में गये। दादा के पैरों में पड़े और कहा - दादा! आशीर्वाद दीजिए। भीष्मपितामह कहते हैं - भीम! "**अर्थस्य पुरुषो दासः नार्थो दासस्तु कस्यचित्**" - अर्थात् पुरुष धन का दास है, किन्तु धन किसी का दास नहीं बनता है। हम आज दुर्योधन के दास बन गये हैं। हमारे उदर में उसका नमक है, इसलिए उसके पक्ष में खड़े रहने के सिवाय कोई मार्ग नहीं है, किन्तु "**यतो धर्मस्ततो जयः।**" अर्थात् जहाँ धर्म है, वहीं जय है।

तुम्हारी जय हो, न्याय तुम्हारे पक्ष में है। जीवन में ऐसा ही मध्यस्थ भाव होना चाहिए। किसी का भी पक्षपात नहीं करना चाहिए।

बड़ा मुल्ला का ताबीज

कोई भी धर्म जब उत्पन्न होता है, तब देशकाल को लेकर नियमों की रचना भी होती है। काल बदलने पर उन नियमों में भी परिवर्तन करना चाहिए। सत्य समझ में आने पर मनुष्य को आग्रह छोड़ देना चाहिए। बड़ा मुल्ला नाम के एक धर्म गुरु थे। मुस्लिम लोग उनके पास जाते थे। भक्तगण उनको साक्षात् भगवान मानते थे। ये मुल्लाजी लोगों को ताबीज बनाकर देते थे, उसके बदले में पैसे लेते थे.... अन्ध श्रद्धालु भक्त मुल्ला से यह ताबीज मिलने पर स्वर्ग मिल गया हो, ऐसा मानते थे। ताबीज में मुल्लाजी लिखकर देते थे - हे अल्ला! इस अमुक भाई को आप अच्छे से अच्छा बंगला दें, एक अच्छी फिएट कार दें। इसकी इच्छानुसार इसे अन्य सभी सुविधाएं भी प्रदान करें आदि। ताबीज मिल गया अर्थात् स्वर्ग मिल गया.... ऐसे लोग सत्य धर्म को कैसे प्राप्त कर सकते हैं। हिंसा को ही धर्म मानने वालों का एक वर्ग है। उनको हम हर दृष्टि से समझाएं, तो भी वे हिंसा को ही धर्म स्वरूप मानते हैं क्योंकि तटस्थता के अभाव में हिंसा को भी छोड़ नहीं सकते.... तटस्थ मनुष्य धर्म को प्राप्त कर कहाँ तक उन्नति करता है, उस पर एक ब्राह्मण का दृष्टान्त आता है।

मध्यस्थ गुण - सोमवसु ब्राह्मण की कथा

कौशाम्भी नगर में सोमवसु नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह अत्यन्त ही दीन-हीन गरीब था। किसी भी कार्य में उसको सफलता प्राप्त नहीं होती थी। वह किसी भी प्रकार का धंधा करता था तो वह उल्टा ही पड़ता था। इस कारण से वह अत्यन्त उद्विग्न हो गया। संसार में कर्म की प्रबलता इतनी अधिक है कि मनुष्य जैसा करता है, वैसा ही फल प्राप्त करता है। पुण्य होता है तो बिना मेहनत ही अखूट सम्पत्ति प्राप्त कर लेता

है और पुण्य के अभाव में लाख प्रयत्न करने पर भी हाथ में कौड़ी भी नहीं आती है। महापुरुष कहतें हैं कि पुण्य का संचय करो। पुण्य के अभाव में यदि सम्पत्ति मिल भी जाएगी तो वह सम्पत्ति सुख और शांति देने वाली नहीं होगी। स्वर्ण कोई खाया नहीं जाता। खाने के लिए तो अनाज ही चाहिए। धन के कारण अनेकों का खून होता है। सगा पुत्र भी अपनी माता को मार देता है। ऐसी तो अनेक घटनाएं पत्र-पत्रिकाओं में छपती है और पढ़ने में आती है। इसीलिए महापुरुष कहते हैं कि पुण्य संचय करो।

"पुण्य पूरा जब होयगा, उदय होयगा पाप,
दाझे वनकी लाकड़ी, प्रगटे आपो आप।"

धर्म कहाँ से प्राप्त किया जाए

जब पुण्य क्षय होता है, तब चारों ओर से उपाधियों के दावानल सुलगते रहते हैं, जीवित मनुष्य भी उसमें समाप्त हो जाता है। करोड़ों रूपये हो तो कोई भोगने वाला नहीं होता। वह सम्पत्ति ही उसके लिए बोझ बन जाती है। आज के मनुष्य "**धर्मस्य फलमिच्छन्ति धर्मं नेच्छन्ति मानवा:**" अर्थात् धर्म फल की इच्छा करता है, किन्तु धर्म की अभिलाषा नहीं करता है। वह ब्राह्मण हताश हो गया था कि उसे कहीं भी सफलता नहीं मिली। उसका मन धर्म की ओर झुकाव लेता है। धर्म शास्त्र के जानकारों के पास वह पहुँचता है। व्याख्याता कोई कथा सुना रहें हैं, तब तक वह वहाँ बैठा रहता है। जीवन में धर्म हो तो हाथी, घोड़ा, सैनिक, सम्पत्ति आदि प्राप्त होते हैं। अच्छे स्वजन, अच्छे मित्र भी धर्म से ही प्राप्त होते हैं। मनुष्य धर्म करता है, तो जगत् में सारभूत वस्तुएं भी उसको मिलती है। ऐसा उस ब्राह्मण ने व्याख्यान में सुना। कथा पूर्ण होने पर कथाकार से पूछा - हे स्वामिन्! धर्म से सबकुछ प्राप्त होता है यह बात

सत्य है, किन्तु वह धर्म कहाँ से प्राप्त करें? कथाकार ने कहा - मीठा खाना, सुख पूर्वक सो जाना और लोगों में प्रिय होना, इन तीन बातों का रहस्य जिसके पास से जानने को प्राप्त हो वही तुझे सच्चा धर्म समझाएगा। इस वाक्यों का रहस्य प्राप्त करने के लिए वह ब्राह्मण गाँव-गाँव घूम रहा है। आगे क्या होगा यह अवसर पर देखेंगे।

गुणानुरागी यानि दूसरों के गुणों का अनुरागी। दोषों में भी गुणों को देखने वाला। यह तभी सम्भव है जब वह स्वयं का अन्तर्निरीक्षण करता हो और वह भी सूक्ष्म दृष्टि से। लेकिन जो सिर्फ दूसरों का ही निरीक्षण करता हो और "मैं ही सर्वगुण सम्पन्न हूँ" ऐसी भ्रांति वाला मनुष्य सुखी/संतोषी हो ही नहीं सकता। गुणानुरागी यानि सुखी मनुष्य।

गुणानुरागी का प्रथम चरण–सामने वाले व्यक्ति के गुणों को देखना और दोषों की उपेक्षा करना। दूसरा चरण– गुणों की स्तवना करना पश्चात् स्वयं के जीवन में उन गुणों को उतारने की प्रवृत्ति करना। साथ ही स्वयं में जो कुछ भी गुण है उन्हें मलिन न होने दें, उनका विस्तार करें। तीसरा चरण– यदि कोई दूसरा व्यक्ति हमारे दोषों को बतलाए तो हमें आनंदपूर्वक उसे स्वीकार करना चाहिये।

मध्यस्थता

आसोज वदि १३

सुख का आभास

शास्त्रकार महाराज संसार के सुखों को मृग जल के समान समझा रहे हैं। मनुष्य मृग जल को पीने के लिए इधर से उधर दौड़ रहा है। सुख की कल्पना केवल हमारी भ्रान्ति है और इसी भ्रम में सारा जीवन समाप्त हो जाता है, इसकी हमें खबर भी नहीं पड़ती। इस भ्रान्ति को दूर करने के लिए धर्म ही सक्षम है। पर इस धर्म के योग्य बनने के लिए गुणों की अपेक्षा है।

धर्म की शोध में निकला हुआ ब्राह्मण

धर्मयोग्य बनना हो तो जीवन में मध्यस्थ भाव अत्यावश्यक है। तटस्थ भाव हो, तभी अन्य तुलना कर सकते हैं और सत्य को प्राप्त कर सकते हैं.... इस पर ब्राह्मण का दृष्टान्त चल रहा है। गरीब ब्राह्मण तीन वाक्यों के अर्थ की खोज में निकलता है। एक बाबाजी के मठ में पहुँचता है। बाबाजी को पूछता है - मीठा खाना, सुख से सो जाना और लोगों में प्रिय होना इन तीन वाक्यों का अर्थ क्या है? बाबाजी कहते हैं कि मेरे गुरुजी ने निम्न तीन पदों को बतलाया है, किन्तु उसका रहस्य बतलाने के पहले ही गुरुमहाराज स्वर्ग सिधार गये इसीलिए हम तो इन तीन वाक्यों का अर्थ इस प्रकार करते हैं - मीठा खाना अर्थात् गाँव में से अच्छी से अच्छी चीजें लाते हैं, गरिष्ठ पदार्थ खाते हैं, तो निद्रा भी मीठी आती है और शान्ति से रहते हैं। किसी प्रकार के झंझट में नहीं पड़ते हैं। यन्त्र-मन्त्र और झाड़ा-झपाटा कर लोगों के दु:खों को कुछ कम करते हैं, इस प्रकार लोगों के प्रिय बन जाते हैं। इन तीन वाक्यों का सीधा सा अर्थ यही है। ब्राह्मण विचार करता है कि यह अर्थ समुचित प्रतीत नहीं होता। खाना और सोना, क्या इसी के लिए यह जन्म है! प्रथम वाक्य का यह रहस्य सच्चा नहीं है। विकृति से भरपूर भोजन चित्त को विकारी बनाता है।

शास्त्रकार कहते हैं- **विगई विगई बला नेई**, अर्थात् विकृति कारक पदार्थ विकृति लाते हैं और वे मनुष्य को बलात्कारपूर्वक खेंचकर दुर्गति में ले जाते हैं। संत का जीवन तो सामान्य भोजन वाला होना चाहिए। बाबाजी कहते हैं – अमुक स्थान पर मेरे गुरु भाई रहते हैं तुम उनसे जाकर मिल आओ।

सत्य की शोध करने वाला ब्राह्मण

ब्राह्मण सत्य की खोज करता हुआ आगे जाता है। ब्राह्मण उनके गुरुभाई के पास पहुँचता है। वे आंगन में आए हुए अतिथि का सम्मान करते हैं और दोनों आरामपूर्वक बैठते हैं। वह ब्राह्मण कहता है- तुम्हारे गुरु ने तुम्हें तीन वाक्य, मन्त्र रूप में दिए हैं, उनका वास्तविक रहस्य क्या है? अथवा आप इन वाक्यों का क्या अर्थ करते हैं? बाबाजी बोले - गुरुजी ने मुझे पहला मन्त्र दिया था - मीठा खाना, इसका अर्थ मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार इस प्रकार किया है – तेज भूख लगी हो तभी भोजन करने पर वह रुखी-सूखी रोटी भी मिठाई की अपेक्षा अधिक मीठी लगती है, अत: मैं एकान्तर उपवास करता हूँ और उपवास के दूसरे दिन एक ही समय भोजन करता हूँ उससे मुझे कड़कड़ाती हुई तेज भूख लगती है। लोगों में प्रिय होना – अर्थात् मुझे जो भोजन मिलता है वह मैं ग्रहण कर लेता हूँ, इस कारण मैं जनप्रिय भी बन गया हूँ। जनता के साथ मैं किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं रखता, इसी कारण लोगों पर मैं भारभूत नहीं हूँ। लोगों के पास बारम्बार मांगते रहे तभी तो लोगों की अप्रीति होगी न! मुझे तो एक समय में जो मिलता है, वह लेता हूँ और सारा दिन स्वाध्याय में ही बिताता हूँ। स्वाध्याय के कारण मेरा दिमाग भी थक जाता है, इसीलिए रात को सोने के साथ ही मुझे नींद आ जाती है। अन्ट-शन्ट या अधिक खाने से ही शरीर बिगड़ता है। खुराक के अनुसार खाने पर वह शरीर को पुष्ट बनाती है और नहीं खाने पर निरोगी बनाती है। आज अधिक लोग बीमार किसलिए हैं? आज खाने का समय निश्चित नहीं है और कितनी बार खाना यह भी नियमित नहीं है। दिन में खाना भी चार या छ: बार खाते हैं। ब्राह्मण ने विचार किया – वाह! बाबाजी ने वाक्य मन्त्र का अर्थ बहुत सुन्दर किया

है तो भी कहीं गहराई से इसका अर्थ मिल जाए तो मुझे जानना चाहिए। इसीलिए और किसी के पास जाकर इसकी खोज करनी चाहिए।

गुरु की खोज में घूमता हुआ ब्राह्मण

घूमते हुए वह पाटलीपुत्र नगर पहुँचा। वहाँ खोज करते हुए उसे ज्ञात हुआ कि यहाँ त्रिलोचन नाम के विद्वान् धर्मगुरु हैं। वह उनके पास पहुँचा। उसे वहाँ का विवेकपूर्ण वातावरण देखकर बहुत प्रसन्नता हुई। पण्डितजी से मिला और पूछा - पण्डितजी! मुझे अपने जीवन को पवित्र बनाना है, व्रतों को स्वीकार करना है। कृपा कर आप मुझे ऐसे गुरु बतलाएँ जिससे की मेरा जन्म सफल हो जाए। पण्डितजी ने भी वही कहा- इन तीन पदों को जिसने जीवन व्यवहार में अंगीकार किया हो उन्हीं के पास तुम्हें जाना चाहिए। साथ ही पण्डितजी ने गुरु को बताते हुए कहा कि ये साधु-संत मीठा खाने वाले यानि जो मिला भले रूखा-सुखा उसे सहर्ष स्वीकार कर मीठास से खाने वाले होते हैं, इसीलिए इन्हें मिष्ठान्न भोजी कहते हैं और भिक्षा वृत्ति पर ही जीवित रहते हैं। तुम उनके पास जाओ तो वह तुम्हें धर्मलाभ कहकर आशीर्वाद देते हैं। तुम उन्हें अन्नदान, वस्त्रदान आदि दो, तब भी तुम्हें धर्मलाभ आशीष देते हैं और कुछ भी प्रदान नहीं करो तब भी धर्मलाभ का आशीर्वाद देते हैं। ये साधुगण निर्दोष जीवन जीते हैं। ये मिष्ठान्न खाते हैं और सतत् स्वाध्याय, ध्यान की आराधना में लीन रहते हैं। किसी को भी अप्रिय वचन नहीं कहते हैं, और ना ही दुषित विचार रखते हैं। इसी प्रकार निष्पाप, निष्परिग्रही, निश्चिन्त, निःस्पृही, निर्दम्भ, निरुपाधिक, निर्मल, निरुपद्रवी और निरोगी - नौ 'न' कार से युक्त जीवन जीने वाले होते हैं। शरीर रूपी साधन से आराधना- साधना में विक्षेप ना पड़े इसलिए स्वस्थ रहने पूर्ति सुखपूर्व अल्पनिद्रा लेते हैं। ऐसे व्यवस्थित और सुन्दर जीवन जीने वाले होने से वे लोकप्रिय भी होते हैं। ऐसे साधु पुरुष को तुम गुरु रूप में स्वीकार करना। वह ब्राह्मण वहाँ से उठा। किसी उपाश्रय में पहुँच गया। वहाँ साधु की दिनचर्या देखकर वह चकित हो गया। अप्रमत्त, त्यागी,

तपस्वी और दूसरों का कल्याण चाहने वाले साधु के पास वह रात को रहा। रात्रि में साधु महाराज स्वाध्याय करते हैं। उनकी वाणी को सुनने के लिए कोई सम्यग् दृष्टि देव वहाँ आते हैं। स्वाध्याय पूर्ण होने पर देव आज्ञा मांगते हैं। आज्ञा मांगते समय देव कहते हैं - हे महापुरुष! आप कुछ मांगिए, मेरी अभिलाषा है कि आपको कुछ दूं। महापुरुष तो निःस्पृही होते हैं अतः वे कहते हैं, मुझे कुछ नहीं चाहिए। बस तुम्हारा कल्याण हो यही मुझे चाहिए। यह देखकर ब्राह्मण प्रसन्न होता है। जहाँ देवता भी देने के लिए तैयार हैं, किन्तु ये मुनि कैसे निःस्पृही है! उनके तपस्तेज से प्रभावित होकर वह ब्राह्मण स्वयं के आत्म कल्याण के लिए दीक्षा लेता है और सद्गति को प्राप्त करता है।

कहने का सारांश यह है कि ब्राह्मण मध्यस्थता के गुण को धारण करने वाला था, इसीलिए सत्य तत्त्व को पकड़ने के लिए वह इतना घूमा-फिरा, अन्यथा पहले बाबाजी के अनुसार 'लड्डू-मिष्ठान्न खाना, निश्चिन्त होकर सोना और तन्त्र-मन्त्र के द्वारा लोगों को खुश रखना' इसी में फंस जाता तो सत्य धर्म को प्राप्त नहीं कर पाता।

किसी ने कहा है - अशिक्षित की अपेक्षा शिक्षित लोगों ने इस देश को अधिक नुकसान पहुँचाया है। ज्ञान के साथ मध्यस्थता हो तो आज का युग स्वर्णयुग बन जाए। इस गुण के अभाव में ही यह देश दुर्गुणों के शिखर पर पहुँचा हुआ है। अशान्ति प्रधान बन गया है। आज के इन नेताओं में यदि तटस्थता भाव आ जाए तो देश का कल्याण हो जाए....!

रे मानव....!
बचपन में तू विष्टा में रमन करने वाला सूअर हुआ....
तरुणावस्था में तू कामवासना का गधा हुआ....
वृद्धावस्था में असमर्थ बैल जैसा हुआ....
मनुष्य कब बनेगा?

गुणानुरागी

आसोज वदि १४

चार दुर्लभ वस्तुएं

परम कृपालु परमात्मा ने हमें संसार की असारता को समझाने के लिए और संसार जाल से मुक्त होने के लिए धर्म का मङ्गलमय मार्ग बताया है। यह जीवात्मा ८४ लाख जीवयोनियों में भटक रही है। **जहाँ निरन्तर भ्रमण/भटकते रहते हो, उसी का नाम संसार है।** एक योनि से दूसरी योनि में इस जीवात्मा ने अनंत बार भ्रमण किया। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक घूम आया है। कीड़ा, मकोड़ा, मक्खी, मच्छर, डांस आदि समस्त योनियों में असंख्य बार घूम आया है। ऐसे सूक्ष्म जन्तुओं में से मानव जन्म मिलना कितना दुर्लभ है। मच्छर होने पर जहरी दवा का छिड़काव कर, माकड़ होने पर गर्म पानी डालकर हमको मार दिया होगा। प्रत्येक जन्म में कठोर वेदनाओं को भोग-भोग कर कर्मों का क्षय करके हमने इस मानव जन्म को प्राप्त किया है। इससे भी महत्वपूर्ण है कि हमें आर्य देश मिला। अमेरिका आदि देशों में जन्म न मिलकर इस धार्मिक देश में हमें जन्म मिला। जहाँ कदम-कदम पर माताजी का मन्दिर, महादेव का मन्दिर, जैन देरासर और कहीं स्थानक आदि कई धार्मिक स्थान देखने को मिलते हैं और गाँव-गाँव नंगे पैर चलकर धर्म का सन्देश सुनाने वाले सन्तों के दर्शन होते हैं। आर्य देश मिलने पर भी कसाई आदि नीच कुलों में हमारा जन्म न होकर, जैन कुल में अर्थात् उत्तम कुल में हमने जन्म लिया। इससे भी अधिक हमें सद्‌गुरु का सहयोग मिला, धर्म सुनने को मिला। धर्म श्रवण करने पर भी अनेक लोगों के जीवन में उसके प्रति रूचि नहीं होती। कदाचित् यदि उस धर्म के प्रति रूचि भी हो जाए, तो कितने ही व्यक्ति तो उसे अंगीकार भी नहीं करते.... आचरण में नहीं लाते। ऐसी दुर्लभ चीजें हमको सहज भाव से प्राप्त हुई है, तो हमें अब धर्म की साधना कर लेनी चाहिए।

धर्म को प्राप्त करने के लिए योग्य बनना पड़ता है। योग्य पात्र के पास में रही हुई सम्पत्ति भी स्थिर बनती है। किसी दिवालिया के हाथ में अथवा उड़ाऊ के हाथ में सम्पत्ति टिक नहीं सकती उसी प्रकार धर्म भी योग्य व्यक्तियों के जीवन में ही फलदायक होता है। शास्त्रकार महाराज हमको धर्म योग्य बनने के लिये कैसा गुणी होना चाहिए यह समझा रहे हैं। **धर्म के योग्य मनुष्य का बारहवाँ गुण - गुणानुरागिता होती है।**

बारहवाँ गुण - गुणानुरागी

गुणानुरागी अर्थात् दूसरों के अच्छे-अच्छे गुणों को ग्रहण करना.... गुण के अनुरागी बनना। मनुष्य को जब यह विचार आता है कि मेरे में रहे हुए अवगुणों को दूर कर सद्गुणों का आविर्भाव करना है, तो वह अवश्य ही कर सकता है, किन्तु यह विचार आता ही नहीं है। यह विचार कब बनता है? जब वह स्वयं का अन्तर्निरीक्षण करता है, तभी सम्भव होता है। हम दूसरे का निरीक्षण सूक्ष्म प्रकार से करते हैं। जबकि स्वयं. का अन्तर्निरीक्षण कभी नहीं करते। मैं स्वयं सर्वगुण सम्पन्न हूँ ऐसा ही वह मानता है और दूसरे में दोष ही दोष भरे हुए है। सन्त कबीर कहते हैं कि मैं स्वयं जब अपना निरीक्षण करता हूँ, तो मुझे ऐसा लगता है - अहो! मैं केवल दोषों से परिपूर्ण हूँ। सन्त जैसे सन्त भी जब स्वयं को दोषपूर्ण मानते हों तो अपनी औकात ही क्या है!

गुणानुराग का प्रथम चरण

जीवन में गुणों को आते हुए समय लग सकता है, किन्तु गुणानुरागी तो बन सकते है न! गुणानुरागी बनने के लिए गुणवानों की ओर बहुमान होना चाहिए। उनके गुणों की प्रशंसा करें, दूसरों के सामने उनके गुणों का वर्णन करें। गुणानुराग से सामने वाले व्यक्ति के हृदय के साथ का अन्तर मिट जाता है। उसके हृदय तक प्रवेश कर सकते हैं.... जब गुण और द्वेष के बीच का अन्तर बढ़ता जाता है, तब वह एकरूपता नहीं आ पाती।

सामने वाले व्यक्ति के हृदय में स्थान बनाने के लिए गुणों के प्रति राग यह पहला द्वार है। सहजता से सच्चे मनुष्य का दिल जीता जा सकता है।

विश्व में दोनों प्रकार के मनुष्य होते हैं - गुणी और निर्गुणी। गुणी की प्रशंसा करनी चाहिए और निर्गुणी की उपेक्षा करनी चाहिए। निर्गुणी पर द्वेष करने से हमें क्या मिलने वाला है? इसलिए उपेक्षा करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। गुजराती में कहावत है - '**गाँव होगा तो वहाँ कचरा भी होगा ही?**' सामने वाले व्यक्ति में गुण और दोष दोनों ही विद्यमान रहते हैं, किन्तु हमें तो उनके गुणों को ही देखना चाहिए और दोषों की उपेक्षा करनी चाहिए। यह गुणानुरागी का प्रथम चरण है।

गुणानुराग का दूसरा चरण

दूसरा चरण है, गुणों की स्तवना करने के पश्चात् स्वयं के जीवन में उन गुणों को उतारने की प्रवृत्ति करें। केवल दूसरों का गुण गाने से कुछ नहीं मिलता है। जो स्वयं में गुण हैं, तो उनको मलिन न होने दें, उनका विस्तार करें। हमने अच्छे वस्त्र पहने हो तो उसका किस प्रकार से ध्यान रखते हैं। उस पर एक भी दाग नहीं लगने देते हैं। उसी प्रकार स्वयं में रहे हुए गुणों को किसी भी प्रकार से मलिन न होने दें। चाहे दान, दया, परोपकार अथवा किसी भी प्रकार का गुण हो तो उसे खिलने का अवसर दें। दान देने वाले/लेने वाला चाहे लुच्चा-लफंगा, कमीना-कपटी हो तो भी देना बन्द नहीं करते है न! जो गुणानुरागी होगा वह सबका प्रिय होगा। उसको देखते ही सबका हृदय आनन्दित होगा। उसका नाम लेते ही सब हर्षित होंगे। इससे अधिक कमाई क्या चाहिए? गुणों के द्वेषी आदमी का नाम लेते हैं, तो दूसरे लोग भी कहेंगे कि रहने दो, इस आदमी का नाम मत लो। अन्यथा हमारा दिन भी बिगड़ जाएगा। गुणानुराग से पाप धुल जाते हैं और गुणानुरागी नहीं हो तो पुण्य धुल जाते हैं। हृदय में गुण ग्रहण की तीव्र अभिलाषा होगी तो गुण आएंगे ही और दोषों को ग्रहण करने की प्रबल इच्छा होगी तो वे ही दोष तुम्हारे में स्थान बना लेंगे। **पूज्य पद्मविजयजी महाराज** ऋषभदेव भगवान के स्तवन में कहते हैं - '**जिन**

उत्तम गुण गावतां, गुण आवे निज अङ्ग' अर्थात् परमात्मा के उत्तम गुणों का गान करने से वे गुण हमारे में भी आते है। जिसका उत्तम गुणों पर अनुराग होगा, वह तीर्थंकर पदवी भी प्राप्त करता हैं। उसका सौभाग्य नामकर्म अधिक ज्वलंत बनता है। इसी कारण लोगों में उसका वचन मान्य होता है।

गुरु दत्तात्रेय

गुरु दत्तात्रेय के २४ गुरु थे। किसी के भी पास से उनको कुछ भी सीखने को मिलता था, उसको वे स्वयं के गुरु बना लेते थे। चाहे कुत्ता हो या बन्दर। गुणानुरागी मनुष्य सर्वदा गुणों की ही खोज करता रहता है। दोषों से भरे हुए व्यक्ति में भी उसे केवल गुण ही नजर आते हैं। गुणों पर अनुराग से उसका ऐसा पुण्य बन्ध जाता है कि विश्व के बड़े-बड़े व्यक्ति और उच्च वस्तुएं उसकी तरफ आकर्षित होकर स्वतः ही चली आती है। दान, शील और तप के आचरण में किसी न किसी प्रकार का भोग देना ही पड़ता है। जबकि गुण का अनुरागी बनने में किसी प्रकार का भोग/त्याग नहीं करना पड़ता है।

सबसे अधिक चतुर - सोक्रेटिस

ग्रीस देश में एक देवी अमुक दिन प्रगट होती थी। किसी ओझा के दिल में प्रवेश करके वह सबको सत्य उत्तर प्रदान करती थी। सबको कुतूहल होता कि हमारे देश में सबसे समझदार मनुष्य कौन है? देवी को पूछा - देवी ने उत्तर दिया - सोक्रेटिस है। सोक्रेटिस देखने में बड़ा कुरूप था। किसी व्यक्ति ने सोक्रेटिस से कहा - देवी ने तुमको सबसे अधिक समझदार कहा है। सोक्रेटिस ने उत्तर दिया - तुमने बराबर नहीं सुना होगा.... क्योंकि मैं तो कुछ जानता ही नहीं, अतः देवी से दोबारा पूछो। देवी से फिर पूछा गया। देवी ने कहा - जो कोई ऐसा कहता हो कि मैं कुछ नहीं जानता, वह सब कुछ जानता है। सब कुछ जानने के लिए जाओगे तो वहीं फंस जाओगे। सद्गुणधारक व्यक्ति को स्वयं की प्रसिद्धि के लिए परिश्रम नहीं करना पड़ता। सद्गुण ही उसकी कीर्ति को फैला

देते हैं। सूर्य का उदय होता है तो किसी को यह कहने की आवश्यकता नहीं होती कि सूर्य देव पधारे हैं। सूर्य का प्रकाश ही उसके आगमन की सूचना दे देता है।

धूप की पूजा किसलिए?

इस लोक में सुखी होने के लिए, समाधि मरण के लिए और सद्‌गति के लिए गुणों का अनुराग होना अत्यावश्यक है। हम मन्दिर में धूप की पूजा करते समय बोलते हैं - **'अमे धूपनी पूजा करिए रे, हो मन मान्या मोहनजी,'' 'दुर्गंध अनादिनी हरीये रे हो मन मान्या मोहनजी।'** यह धूप पूजा हमारे मन में फैली हुई अनादिकालीन दुर्गंध जैसे असूया, ईर्ष्या, दम्भ आदि को दूर करने के लिए है, न कि सुगन्धित अगरबत्ती द्वारा धूप पूजा से मन्दिर की दुर्गन्ध दूर करने की है।

परोपकारी स्वामी रामतीर्थ

स्वामी रामतीर्थ बहुत ही परोपकारी मानव थे। यह उस जमाने की बात है जब मनुष्य एक रूपये में अपना गुजारा करता था। एक महीने का वेतन तीस रूपये होना तो बहुत अधिक था। स्वामी रामतीर्थ को एक हजार रूपया वेतन मिलता था। उस समय के एक हजार आज तो तीन-चार लाख रूपये के बराबर होते हैं। स्वामी स्वयं बड़े उदार दिल के थे। इतने अधिक रूपये आते तो वे सबसे पहले उसमें से घर खर्च के लिए कटौती करके शेष रकम दीन-अनाथों पर खर्च कर डालते थे। भोग-विलास के पीछे एक पाई भी खर्च नहीं करते थे। आज देखते हैं कि प्रतिदिन लाखों रूपये भोग-विलास में नष्ट कर डालते हैं। आज पैसा बढ़ गया किन्तु उस पैसे की कीमत घट गई है। आज का मनुष्य पैसे के साथ पानी की तरह व्यवहार करता है।

लक्ष्मी के तीन रूप

शास्त्रकार कहते हैं - लक्ष्मी के तीन रूप हैं। माता के समान, स्त्री के समान और दासी के समान। माता के समान जब लक्ष्मी घर में आती है,

तो जिस प्रकार माता की पूजा की जाती है, उसी प्रकार धन की पूजा की जाती है। उस धन का वह रक्षण ही करता है, उसको उपयोग में नहीं लेता है। दूसरी लक्ष्मी स्त्री जैसी होती है, वह लक्ष्मी जब घर में आती है, तब जिस प्रकार स्वयं के भोग के लिए स्त्री होती है, वह दूसरों को भोग के लिए नहीं दी जाती। उसी प्रकार इस स्त्री रूपी लक्ष्मी का उपभोग स्वयं के लिए ही करता है, उसमें से दूसरे को एक पाई भी नहीं देता है। तीसरी लक्ष्मी का स्वरूप दासी जैसा होता है। जिस प्रकार राजा और सेठों के यहाँ घर में दासी होती है, तो उसे रखना हो तो रखते हैं और नहीं तो दूसरों को दे भी देते हैं! इसी प्रकार दासी रूपी लक्ष्मी घर में आती है, तो स्वयं उसका उपभोग करता है और दूसरे को देना हो तो दे भी देता है। स्वयं की पत्नी को नहीं दिया जाता और दासी को दिया जाता है। यह तीसरे प्रकार की लक्ष्मी ही योग्य है।

''लक्ष्मी का भोग नहीं, त्याग करो, उपभोग नहीं किन्तु उपयोग करो''

स्वामी रामतीर्थ की पत्नी को खबर लगी कि स्वामी वेतन का अधिकांश भाग दूसरों को दे देते हैं इसीलिए उसने स्वामी जी से प्रार्थना की कि इतना कमाते हैं, तो मुझे क्यों नहीं देते। मेरे इन कपड़ों को देखकर लोग मेरी निन्दा करते हैं। अतः वेतन का हिस्सा मुझे दें तो मैं अच्छे वस्त्र-आभूषण खरीद लाऊं और उनको पहनकर अच्छे घर की कहलाऊं। स्वामीजी ने उत्तर दिया - दुनिया में प्रशंसा पाने के लिए अथवा उनकी दृष्टि को आकर्षित करने के लिए हमने जन्म नहीं लिया है, किन्तु अच्छे काम करके भगवान की दृष्टि में हम अच्छे दिखाई दें तभी हमारे इस जन्म का महत्त्व है। तुम भविष्य में भूलकर भी इस प्रकार की बात मत करना। सम्मान गुणों का होता है, व्यक्ति अथवा कपड़ों का नहीं। गुणों को प्रकटाने के लिए अनेक चाबियाँ हैं, उन चाबियों का विश्लेषण आगे करेंगे।

संसारियों का जीवन जीवों की यातना पर है
जबकि संयमियों का जीवन जीवों की यतना पर है।

गुणानुराग

आसोज वदि अमावस

सुख की चाबी

धर्मरूपी रत्न को प्राप्त करने के लिए कैसे गुण होने चाहिए इस बात को शास्त्रकार हमें समझा रहे हैं। दर्पण में जैसा प्रतिबिम्ब पड़ता है वैसा ही गुणानुरागी के जीवन में सद्गुणों का प्रतिबिम्ब पड़ता है। भगवान भी वैसे ही मनुष्यों के प्रति प्रसन्न रहते हैं। जिस प्रकार बालक को खाता-पीता देखकर और आनन्द कल्लोल करता हुआ देखकर माता-पिता को जैसी प्रसन्नता होती है, उसी प्रकार प्रत्येक जीव को प्रेम से, अहोभाव से और स्नेह से देखने वाला ही, धर्म की अच्छी तरह से आराधना कर सकता है। जगत् में छोटे से छोटा बनना जितना सहज है उतना ही महान् में महान् बनना भी सहज और सरल है। It is as easy to be great as to be small. चाबी अपने ही हाथ में है किन्तु उसे लगाने की प्रक्रिया का ज्ञान होना चाहिए। गुणानुराग वह चुम्बकीय चाबी है, जिससे गुणों का खजाना खुलता है।

गुणानुरागी - अब्राहम लिंकन

अमेरिका के प्रेसिडेन्ट अब्राहम लिंकन की बात है। जब वे बालक थे, तब अत्यन्त गरीब थे। अभ्यास करने के लिए उनके पास में पाटी और कलम भी नहीं थी। किताबों के लिए पैसे भी नहीं थे। गणित ज्ञान के लिए लोहे की पट्टी पर धूल डालकर उसमें अंगुली से अंक लिखकर गिनती करते थे। ऐसी दयनीय स्थिति में भी उन्होंने शिक्षा प्राप्त की और स्वयं की दक्षता से आगे बढ़े। चुनाव का समय आया, वे स्वयं चुनाव में खड़े हुए, मन में शुभ विचार हैं, देश का भला करने की भावना है। विचार ही मनुष्य को ऊँचा बनाते हैं। अनेक मनुष्यों की मदद से वे

चुन लिए गए। अमेरिका के प्रेसिडेन्ट बने। सत्तासीन होने पर, उन्होंने अपने विरोधी पक्ष में से नामांकित व्यक्तियों को चुन-चुनकर महत्त्वपूर्ण स्थानों पर नियुक्ति देने लगे। इससे स्वपक्ष के मनुष्यों में खलबली मच गई। उन्होंने लिंकन को कहा - आप यह क्या कर रहे हैं? विरोधियों का तो पत्ता साफ कर देना चाहिए, जिससे कि वे सिर उठा न सके। उसके स्थान पर आप उनको बड़े-बड़े अधिकार दे रहे है। लिंकन कहता है - मैं विरोधियों को समाप्त ही कर रहा हूँ। उनको योग्य मानकर बड़ी-बड़ी पदवी दे रहा हूँ। **विरोधियों को नहीं, किन्तु विरोध को दूर करने के लिए यह कर रहा हूँ। शत्रु को नहीं, शत्रुता को दूर करना चाहिए, इससे शत्रुता अपने आप खत्म हो जायेगी।** लिंकन में इतना प्रबल गुणानुराग था। इसीलिए विरोधियों में भी उनके गुण दृष्टिगोचर हुए। जिस स्थान के लिए जो योग्य हो, उसको वही स्थान देना चाहिए, उसमें पक्षपात नहीं करना चाहिए। आज तो इसके विपरीत दिखाई देता है। विरोधी समझकर अच्छे-अच्छे मनुष्यों को हटा दिया जाता है और खुदके पक्ष के भले ही मूर्ख हों, ऐसे मनुष्यों को भी अधिकार दे दिया जाता है। इसीलिए "लूटो भाई लूटो" इस वाक्य को जीवन में उतार कर लोकशाही के स्थान पर जनता पर काली स्याही डालने का ही काम कर रहे हैं और देश बरबादी को न्यौता दे रहे हैं।

गुणानुराग से सामान्य मनुष्य भी महान बनता है और दुर्गुणी मनुष्य भी साधु-सन्त जैसा बन सकता है।

डाकू में से सन्त

कुछ साधु जंगल में चले जा रहे थे। जंगल बहुत लम्बा-चौड़ा था। अधिक लम्बा विहार नहीं कर सकते थे। आस-पास में तलाश करने पर उन्हें एक भील की पल्ली नजर आई। वहाँ गये, पल्लीपति के पास रहने के लिए स्थान की याचना की। पल्लीपति ने स्वयं के घर के पड़ोस में ही रहने के लिए स्थान दे दिया। साधुगण वहाँ उतरे। उनकी प्रत्येक प्रवृत्ति यतना और विवेक से युक्त होती थी। पल्लीपति खूंखार डाकू और लूटेरा था।

कईयों का उसने खून कर दिया था। लूटना उसका व्यवसाय था। साधु प्रत्येक वस्तु को ग्रहण करें या रखें उस समय रजोहरण से उस स्थान को साफ करते थे। पल्लीपति साधु की प्रतिदिन की दिनचर्या को देखा करता था। उसने साधु से पूछा – महाराज! यह क्या करते हो? यह क्या है? इससे हर समय इधर-उधर की सफाई क्यों करते हो? महाराज कहते हैं – भाई! हमारे कारण कोई जीव मर न जाए उसकी रक्षा के लिए हम यह रजोहरण रखते हैं। निर्दोष जीवों को क्यों मारा जाए? हम तो दोषी व्यक्ति का भी सर्वदा कल्याण ही चाहते हैं। साधु के इन वाक्यों को सुनते ही पल्लीपति की आंखों पर पड़ा हुआ अज्ञान का पर्दा हट गया। स्वयं के भीतर झांकने लगा। अ र र....! मैं कैसा पापी हूँ। मैंने निर्दोष होने पर भी छोटे नहीं बड़े-बड़े (पंचेन्द्रिय) जीवों की हत्या की है। स्वयं पापों का प्रायश्चित् करने लगा। थोड़े दिनों के सम्पर्क से ही खूंखार डाकू भी तुरन्त ही नरम हो गया। स्वयं के धनुष-तीर आदि को लेकर फेंक दिये और साधु के सामने प्रतिज्ञा की – हे भगवन्! आज से मैं समस्त पाप प्रवृत्तियों का त्याग करता हूँ। मैं अपनी मेहनत की कमाई से अपना गुजारा चलाऊँगा। निरपराधी जीवों की हिंसा नहीं करूँगा। गुणानुराग से वह सुधर गया। साधुओं ने कोई उपदेश नहीं दिया, किन्तु उनके जीवन का आचार-व्यवहार देखकर उनकी गुणों के प्रति वह आकर्षित हुआ। किसी की भी पकड़ में नहीं आने वाला और पुलिस से भी नहीं डरने वाला एक ही गुण के कारण पाप से डरकर बिना उपदेश ही तिर गया। यह सत्य घटना है।

जगत् में गुणानुरागी जीव अत्यल्प हैं। उससे भी कम गुणी हैं और उससे भी कम गुणियों के प्रति गुणानुराग करने वाले होते हैं। कदाचित् गुणवान हो तो भी ईर्ष्या से दूसरों के कार्यों की प्रशंसा नहीं कर सकता। गुणी और गुणानुरागी हों ऐसे व्यक्ति तो हजारों में से कुछ ही नजर आते हैं। शास्त्रों में शाल और महाशाल की कथा आती है, जो गुणी और गुणानुरागी हैं।

शाल-महाशाल

शाल और महाशाल नाम के दो भाई थे। दोनों भाईयों में प्रगाढ़ प्रेम था। एक राजा था और दूसरा युवराज। न्यायनीति से राज्य का संचालन करते थे, प्रजाप्रिय थे। प्रजा उनको देवता के समान समझती थी। वे दोनों भी प्रजा के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होते। दोनों भाईयों की सुन्दर जोड़ी थी। एक समय भगवान महावीर विचरण करते हुए वहाँ पधारते हैं। शाल-महाशाल की नगरी पृष्ठचम्पा निकट में होने के कारण भगवान महावीर गौतम स्वामी को आदेश देते हैं कि तुम पृष्ठचम्पा नगरी जाओ। गुरु गौतम पृष्ठचम्पा पधारते हैं। उनके आगमन से शाल-महाशाल और नगर निवासी हर्ष से पागल हो जाते हैं। साक्षात् कल्पवृक्ष के समान गौतमस्वामी हमारे नगर में पधारे हैं। गुरु की देशना सुनने के लिए हजारों लोग जाते हैं। गौतमस्वामीजी देशना देते हैं। संसार की असारता को समझाते हैं। **शास्त्रों में संसार का दूसरा नाम 'मार' आता है, अर्थात् जहाँ जीव को सतत मार ही पड़ती रहती है।** फुटबाल खेलते हुए फुटबाल की स्थिति आपने देखी है न! एक मनुष्य उसे लात मारता है। सामने वाला मनुष्य भी उसे लात मारता है। लातें खा-खाकर वह चोट खाता ही रहता है। उसी प्रकार मनुष्य भी घर में औरत-पुत्र और नौकरों की तथा कार्यालय में सेठ अथवा साहेब लोगों की वाणी रूपी लातें खा-खाकर ही जीता है। ऐसे संसार में परमात्मा के द्वारा बताया हुआ मार्ग ही सच्चा है। उसी से इस आत्मा का कल्याण है। गौतम स्वामी की देशना सुनकर दोनों भाईयों ने संसार के असार स्वरूप को समझा, अनुभव किया। इन दोनों की आत्माएं कैसी लघुकर्मी थी। एक देशना मात्र से राज्य वैभव के सुख उन्हें असार प्रतीत हुए! और तुम्हें हजारों बार देशना सुनने पर भी अशान्ति से परिपूर्ण तुम्हारे ये सुख, मीठे मधु के समान लगते हैं।

श्रोताओं के तीन प्रकार

शास्त्र में तीन प्रकार के श्रोता बताए गये हैं - १. सोता २. सरोता ३. श्रोता।

१. सोता :- कितना ही सुन्दर प्रवचन चल रहा हो तब भी मीठी नींद लेते हैं। ऐसा लगता है मानो घर से कण्टाल कर, दु:खी होकर आए हों, उपाश्रय में ठण्डा पवन आता हो। और भाई साहब निश्चिन्त होकर झपकी लेते हों ऐसे श्रोताओं पर वाणी का क्या प्रभाव होगा?

एक सेठ प्रतिदिन व्याख्यान में आकर आगे बैठता था और झपकीयाँ लेता था। एक बार महाराज ने पूछा - सेठ क्या आप सो रहे हो? सेठ एकदम चौंककर बोले - नहीं, नहीं, साहेब मैं तो जाग रहा हूँ न! उंघते हुए भी कहते हैं कि मैं जाग रहा हूँ। मनुष्य सदा खुद का बचाव करता है। भूल को स्वीकार करने में उसे लघुता मालुम होती है। इसीलिए तो वह भटक रहा है। उत्तर देकर सेठ पुन: झौंके खाने लगे। महाराज भी उसके गुरु थे, अत: महाराज ने कुछ देर बार पुन: पूछा - सेठ, जी रहे हो? नहीं नहीं साहेब, सारी सभा खड़खड़ाहट की हंसी से गूंज उठी। उस समय सेठ को लगा की मैंने क्या जवाब दे दिया? ऐसे मनुष्यों पर व्याख्यान का क्या प्रभाव पड़ सकता है?

२. सरोता :- सरोता अर्थात् सुपारी काटने का औजार। कितने ही मनुष्य सरोते के समान काटने का ही काम करते हैं। वक्ता के दोषों को ही ढूंढते रहते हैं। वाणी में क्या दोष है इस दोषदृष्टि वालों पर वक्ता के वाणी का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता।

३. श्रोता :- श्रोतस् अर्थात् कान। सच्चा श्रोता वही होता है जो कान लगाकर ध्यानपूर्वक सुनता है। कान और प्राणों से सुनने वाला ही ये शाल-महाशाल और शालीभद्र आदि जैसे संसार सागर को तर गये। बहुत से लोगों को सुनना तो अच्छा लगता है किन्तु वे उसे आचरण में नहीं ले पाते। आचरण के बिना सब कुछ व्यर्थ है।

संयम हेतु आपाधापी

शाल-महाशाल ने देशना सुनी और तत्काल ही आचरण में लेना प्रारम्भ किया। दोनों भाई संसार छोड़ने की बात करते हैं। शाल, महाशाल

को कहता है - भाई! तुम राज्य को संभालो और मुझे दीक्षा की आज्ञा दो। उत्तर में महाशाल कहता है - भाई! तुम राज्य संभालो और मुझे आज्ञा दो। इस प्रकार दोनों के बीच में संयम हेतु खेंचातानी होती है। प्राय:कर राज्य ग्रहण हेतु झगड़े होते हैं जबकि यहाँ राज्य छोड़ने का झगड़ा चल रहा है। अन्त में मध्यम मार्ग निकालते हैं। स्वयं की एक बहन थी। उसका एक पुत्र था। दोनों बहन, बहनोई और भांजे को बुलाते हैं। स्वयं की भावना व्यक्त करते हैं। भांजा और बहनोई राज्य को संभालने की स्वीकृति देते हैं और दोनों भाई शाल और महाशाल महामहोत्सवपूर्वक दीक्षा ग्रहण करते हैं। बहुत ही सुन्दर आराधना करते हुए विचरण करते हैं।

गुणानुराग से केवलज्ञान प्राप्त हुआ

बहुत समय के पश्चात् विचरण करते हुए वे अपनी नगरी के समीप पहुंचे। शाल और महाशाल भगवान से विनंती करते हैं कि भगवन् आप आज्ञा दें तो हम निकट में रही हुई हमारी नगरी में जाएं। भगवान गौतमस्वामी को आदेश देते हैं। गौतमस्वामी दोनों को लेकर उस नगरी में जाते हैं। प्रजा अपने भूतपूर्व राजा को देखकर हर्ष से पागल हो जाती है। गौतमस्वामी देशना देते हैं। संसार की असारता का स्वरूप समझाते हैं। बहन, बहनोई और भांजे पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। तीनों ही संयम ग्रहण करने की भावना व्यक्त करते हैं। गौतम स्वामी के पास वे तीनों संयम ग्रहण करते हैं। सपरिवार गौतमस्वामी के साथ वापस लौटते हैं। मार्ग में शाल, महाशाल, बहन, बहनोई और भांजे के बारे में विचार करते हैं कि ये लोग कितने अच्छे हैं कि जिन्होंने हमारे दीक्षा ग्रहण करने के मार्ग को सुगम बना दिया। प्रपंचो से रचे-पचे राज्य को स्वीकार करके हमें मुक्त कर दिया! इन अहोभावों से उनको नमस्कार करते हैं। मन में उन्हीं के सद्गुणों का विचार करते हैं। इस ओर बहन विचार करती है - मेरे दोनों भाई कितने अच्छे हैं? बहन का विवाह करने के बाद उसका पीहर में क्या अधिकार होता है? तब भी उन्होंने अपना सम्पूर्ण राज्य हमें सौंप दिया! इनकी कैसी उदारता है! बहनोई विचार करता है कि मुझे

सद्भाग्य से कैसे अच्छे साले मिले हैं! राज्य प्राप्ति के लिए तो कितनी ही खून की नदियाँ बहानी पड़ती है जबकि बिना परिश्रम के उन्होंने सहर्ष हमें राज्य सौंपा। जबकि हमारा तो कोई हक नहीं बनता है। इतना ही नहीं किन्तु हम राज्य पालन में मस्त न हो जाएं इसलिए हमको तारने के लिए हमारे सामने आए। भांजा विचार करता है कि हमारे मामा लोग कितने अच्छे हैं। इस प्रकार तीनों व्यक्ति अपनी-अपनी दृष्टि से विचार करते हैं। बहनोई दोनों सालों के प्रति प्रशस्त विचार करता है। दोनों सालें बहनोई का विचार करते हैं। पाँचों व्यक्ति एक दूसरे के गुणों का ही अवलोकन करते हैं। मार्ग में चलते-चलते ही उच्च गुणों की विचारधारा चढ़ती जाती है और गुणों की विचारधारा उनको कहाँ ले गई? क्षणमात्र में ही समस्त कर्मों को भस्मीभूत करके, उन्होंने निर्मल केवलज्ञान प्राप्त किया। गौतमस्वामी इन पाँचों को साथ में लेकर भगवान के पास आते हैं और पाँचों केवलज्ञानी केवलज्ञानियों की पर्षदा की ओर मुड़ते हैं। उसी समय गौतमस्वामी बोलते हैं - अरे, इस तरफ कहाँ जा रहे हो? यह तो केवलियों की पर्षदा है। तुम्हें तो उस तरफ बैठना चाहिए। उस समय भगवान् कहते हैं - हे गौतम! केवलज्ञानियों की आशातना मत करो। इन्हें केवलज्ञान हो गया है। गौतमस्वामी आश्चर्यमुग्ध एवं चौंककर बोल उठते हैं - हे भगवन्! इन्होंने अभी तो दीक्षा ग्रहण की है, इस थोड़े से समय में ही इन्हें केवलज्ञान हो गया....! हाँ .... गुणानुराग से ये आत्माएं तर गईं।

पहलवान बनने के लिए अखाड़े हैं।
धनवान बनने के लिए दुकानें हैं।
भाग्यवान बनने के लिए लॉटरियाँ हैं।
भगवान् बनने के लिए मन्दिर हैं।

गुणानुराग

आसोज सुदि १

धर्मरूपी मूल्यवान लॉकर की चाबी

परम कृपालु परमात्मा हमारा कल्याण कैसे हो? उसके लिए चाबियाँ बता रहे हैं। लॉकर में चाहे जितना धन भरा हुआ हो, किन्तु यदि उसकी चाबी न हो तो हम उसके भीतर रखे हुए हीरे-मोती-माणिक को देख सकते हैं क्या? चाबी होना सफलता की निशानी है। महापुरुष भी धर्मरूपी मूल्यवान लोकर की चाबियाँ बता रहे हैं। एक वर्ग ऐसा है कि जो खाने-पीने और मौज-मस्ती में डूबा हुआ है, उनके लिए तो ईश्वर नाम का कोई तत्त्व है ही नहीं? अथवा पुण्य और पाप इसको भी जानने की इच्छा नहीं रखते हैं। वे तो **रोटी, कपड़ा और मकान** बस इन्हीं को प्राप्त करने में डूबे हुए हैं। रोटी कपड़ा और मकान मिल जाने पर भी सन्तोष को तो धारण करते ही नहीं हैं। उसको ही बढ़ाने में तमन्ना रखते हैं और पीछे की ओर मुड़कर देखते भी नहीं हैं। व्यापार में सोचे समझे बिना ही पूंजी लगा देते हैं और वह डूब जाती है, तो चिल्ला-चिल्ला कर रोने बैठते हैं। धन कमाना जोखिम है। धन आता है, तो मनुष्य की जान का जोखिम भी बढ़ता जाता है। फिर मनुष्य जैसे-तैसे उससे पिण्ड छुड़ाना चाहता है वैसे-वैसे वह गहरी खाई में उतरता जाता है। सुख की लालसा से संसार की रचना में फंसा तो दुःख की परम्परा भी खड़ी हो गई।

तृषातुर बन्दर

एक बन्दर जंगल में रहता था। उसको बहुत जोर की प्यास लगी। पानी की खोज में वह इधर-उधर भटकता रहा। वहाँ उसे किसी पत्थर में से पानी का झरना बहता हुआ दिखाई दिया। वह झरना वेग से बहता

हुआ नीचे गिर रहा था। बन्दर पानी के झरने के पास पहुँचा। बहुत प्यासा था इसलिए तत्काल ही पानी में मुख डाला। वास्तव में वह पानी का नहीं शीलाजीत के रस का झरना था। वह रस अत्यन्त ही चिकना था, इस कारण उस बन्दर का मुख चिपक गया। मुख को रस से अलग करने के लिए प्रयत्न करने लगा। दीर्घदर्शी नहीं था अतः दोनों हाथों की मदद ली, तो दोनों हाथ भी चिपक गये। उसने अनेक प्रयत्न किए किन्तु वे सब व्यर्थ गये और तड़फड़ाते हुए वह मृत्यु को प्राप्त हुआ।

लोभ मेरे पाप से....!

संसार की आज यही दशा है न! मनुष्य को लगता है, यहाँ से इकट्ठा करूँ या वहाँ से इकट्ठा करूँ....। चारों तरफ मुँह मारता है। मुँह चिपक जाए तो हाथ का उपयोग करने लगता है और बाद में उस बन्दर के समान उसमें धंसता/डूबता चला जाता है। आज मनुष्य शेयर बाजार के पीछे पागल बना हुआ दिखाई देता है न! वह चाहे पान-गल्ला वाला हो अथवा नाई हो अथवा मोची हो सब पर शेयर का पागलपन छाया हुआ है। रातो-रात करोड़पति बनना चाहते हैं। अतः उसमें अपनी सारी पूंजी झोंक देते हैं। पहले बन्दर की तरह विचार किए बिना ही सीधा मुँह डाला और फिर वह बन्दर तड़फड़ा कर मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसी प्रकार आज शेर से बकरी बन जाता है और कोई-कोई तो जीवन का अन्त भी कर लेता है। महापुरुष कहते हैं कि इन सबको छोड़ो। मायाजाल में फंसने पर बाहर निकलना सम्भव नहीं होगा।

हमारा क्रिया की तरफ इतना अधिक झुकाव है उतना ही झुकाव गुण की तरफ लाने का है। तपश्चर्या की हो तो वासक्षेप डलवाने के लिए बहुत लोग आते हैं किन्तु कोई भी ऐसा कहने वाला नहीं आता है कि साहेब! मुझमें अनेक दुर्गुण हैं वे दूर हों और मेरे में सद्गुणों का वास हो ऐसा वासक्षेप प्रदान करो।

भगवान के साथ भी माया

स्वामी रामतीर्थ कहते थे कि जनता भगवान के पास जाती है और हाथ ऊँचा कर-कर के बेसुरी राग को खेंचते हुए कहती हैं - भगवान मैं अवगुणों का भण्डार हूँ, किन्तु वास्तव में वे भगवान को ठगते हैं। वह यदि बाहर निकलता है और कोई व्यक्ति उसके अवगुणों की तरफ संकेत करता है, तो मानो विस्फोट हो गया। जगत में सच कहने वाले बहुत कम हैं और उस सत्य को सुनने वाले तो उससे भी कम हैं। सच्ची बात सहन नहीं होती। एक सुभाषित आता है - "**अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।**" अर्थात् अप्रिय होने पर भी हितकारी हो ऐसा कहने वाला और उसको सुनने वाला भी दुर्लभ है। मन्दिर में जाना हो तो थोड़ी तो सीढ़िया चढ़नी ही पड़ती है, उसी प्रकार जीवन में भी ये सब सीढ़ियाँ हैं। भगवान क्या कुछ उत्तर देने वाले हैं? जो उनके पास में तुम ऊँचे स्वरों में रागों को खेंच-खेंचकर अपने अवगुणों का वर्णन करते हो। परन्तु, अवगुणों से भरा हुआ हूँ, इसीलिए संसार में भटक रहा हूँ, ऐसा समझने वाले बहुत कम होते हैं। ९,९९९ व्यक्ति तो रोटी, कपड़ा और मकान के झंझट में ही पड़े हुए हैं। गुण और अवगुण को जानने में उनका कोई रस नहीं है।

पहले शस्त्र विराम

जगत के अवगुणों को देखना बहुत सरल है, किन्तु स्वयं के अवगुणों को देखना बहुत ही कठिन है। ब्रह्मा ने पांचों इन्द्रियों का प्रवाह बाहर रखा है। तुम देखोगे तो आँखें बाहर के पदार्थों को ही देखती है, कान बाहर के शब्दों को ही सुनते हैं। भगवान् के समक्ष हम पाँचों इन्द्रिय रूपी शस्त्रों द्वारा लड़ाई करने लगे हैं। आँख, कान, नाक और जीभ का अधिक से अधिक हम दुरुपयोग कर रहे हैं। लड़ाई बन्द करनी हो तो पहले शस्त्र विराम करना पड़ेगा अर्थात् पहले इन्द्रियों को वश में करना पड़ेगा। यह जो मिले हुए पाँच-पचास वर्ष सुधर गये तो भविष्य के अनन्त

भव भी सुधर जाएंगे और बिगड़ गए तो अनन्त जन्म बिगड़ जाएंगे। हमारी एक इन्द्रिय भी अन्दर की ओर झुकी हुई नहीं है।

आनन्दघनजी महाराज अजितनाथ भगवान के स्तवन में कहते हैं-

"चरम नयण करी मारग जोवतां रे, भूल्यो सयल संसार,
जेण नयण मारग जोईये रे, नयण ते दिव्य विचार....,
पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिन तणो.... रे,"

अर्थात् मैं चर्म चक्षुओं से देख रहा हूँ इसीलिए संसार में भटक रहा हूँ। जिन नेत्रों के द्वारा मार्ग देख सकते हैं, वे दिव्य चक्षु है। हमारे दिव्य चक्षु खुल जाए तभी हमको हमारे अवगुण दृष्टि में आते हैं। गीता में **कृष्ण महाराजा अर्जुन को कहते हैं - "हे अर्जुन! दिव्यं ददामि ते चक्षुः।"** अर्थात् हे अर्जुन! मैं तुम्हें दिव्य चक्षु प्रदान करता हूँ, उसके द्वारा देखो।

गुणानुराग का तीसरा चरण

आँख कमजोर हो तो पास में पड़ी हुई वस्तु भी हम नहीं देख पाते हैं, यह सम्भव है। उसी प्रकार हमारी आन्तरीक दृष्टि यदि कमजोर हो तो हम अपने दोष भी नहीं देख पाते हैं, यह भी सम्भव है किन्तु यदि दूसरा व्यक्ति हमारे दोषों को बतलाता है तो हमें आनन्दपूर्वक अपनी भूल को स्वीकार करना चाहिए। यह तीसरा चरण है। **जिस प्रकार कमजोर आँखों वाले मनुष्य मार्ग में सम्मुख आती हुई गाय से टकरा न जाए इसलिए यदि कोई व्यक्ति उसका बचाव करे तो स्वयं को खुशी होगी या नहीं? अच्छा हुआ तुमने मुझे बचा लिया, नहीं तो मैं टकरा कर गिर जाता। इसी प्रकार हमें कोई अपनी भूल को बताएं तो उसे आनन्दपूर्वक स्वीकार करना चाहिए।** एक के बाद एक पगथियाँ चढ़ेंगे तो ही आगे बढ़ सकते हैं। तभी शिखर पर पहुँच सकते हैं। प्रथम चरण में हमारे दिमाग में जो भ्रांति भरी हुई है कि मैं तो बराबर हूँ, मेरे में किसी प्रकार का अवगुण नहीं है, मैं तो गुण का भण्डार हूँ। इस भ्रम को दिमाग

से निकाल देना चाहिए। और सिर्फ दूसरों के गुणों को ही देखना चाहिये और दोषों की उपेक्षा करनी चाहिये। दूसरे चरण में स्वयं अन्तर निरीक्षण करें कि मेरे में क्या-क्या अवगुण है? देखने पर ही ध्यान में आता है कि मैं कहाँ भूला हूँ और तीसरे चरण में कोई हमारे दोष बताएं तो सहर्ष स्वीकार करना चाहिए तभी हम सुधर सकते हैं।

हम दो हमारे दो

जीवन में गुणानुराग का पोषण करने से गुण स्वतः ही आकर उपस्थित हो जाते है। हम सबको पराया समझकर बैठे हैं, इसीलिए हम दुःखी हैं। मनुष्य का हृदय बहुत संकुचित बन गया है। '**हम दो और हमारे दो**' इसमें माता-पिता को भी कोई स्थान नहीं है। माँ-बाप कहाँ जाएंगे? वृद्धाश्रम में अथवा माण्डवी के आश्रम में? क्या वृद्धाश्रम में जाने के लिए ही तुम्हें जन्म दिया है। कितनी-कितनी बाधाएं उठाकर मानता मानकर तुमको इस पृथ्वी पर उतारा है.... अनेक मनुष्य ऐसा कहते हुए आते हैं - साहेब, मेरे पुत्र का दिमाग बराबर नहीं है, इसको अच्छी तरह से ज्ञान चढ़े.... वह सुखी हो इस प्रकार का इस पर वासक्षेप डालें। किन्तु कोई भी ऐसा नहीं कहता - साहेब, मेरे पिता स्वस्थ नहीं है, वे स्वस्थ रहें, वैसा वासक्षेप डालिए! कितना संकुचित मानस है। इस मानस को बदलना होगा। सब लोग मेरे हैं, जब इस प्रकार का व्यवहार जीवन में आएगा, तभी तुम्हारे जीवन में रही हुई ईर्ष्या और असूया दूर होगी।

सन्त और वेश्या का दृष्टान्त

किसी गाँव में एक सन्त पुरुष रहते थे। उनकी कुटिया के सामने ही किसी वेश्या का घर था। वह वेश्या प्रतिदिन सन्त पुरुष के दर्शन से स्वयं के कुल को पवित्र करती। वह अहोभाव से सन्त के गुणों का कीर्तन करती। उसका जीवन वेश्या का था, किन्तु विचार धारा सन्त जैसी थी। स्वयं के आचरण की हमेशा निन्दा करती थी। मैं कैसी मन्दभागी हूँ!

प्रतिदिन अनेक भांडपुरुषों को मुझे सन्तुष्ट करना पड़ता है, मेरी देह को नीलाम करना पड़ता है। निरन्तर पापमय प्रवृत्ति में डूबी रहती हूँ, जबकि कुटीर में रहे हुए सन्तपुरुष वेश्या की निन्दा किया करते थे। कैसी नीच स्त्री है, कुछ लाज शर्म नहीं, सुबह उठने के साथ ही पुरुष के साथ क्रीड़ा करती रहती है। कैसा निन्दनीय जीवन है! मैं कैसा सद्भागी हूँ। प्रातः उठने के साथ ही भगवान के भजन में लीन रहता हूँ। मैं कोई पाप कार्य नहीं करता। इस प्रकार स्वयं की प्रशंसा और परनिन्दा में उसका सारा दिन व्यतीत हो जाता। उस सन्तपुरुष से जो कोई भी मिलने आता उसके सामने उस वेश्या के दोषों का वर्णन किया करता था। उसका जीवन संत का अवश्य था किन्तु विचारधारा निम्न स्तर की थी। समय बीतता गया। संयोग ऐसा बना कि सन्त और वेश्या एक ही दिन मर गये। सन्त के लिए पालकी और वेश्या के लिए अर्थी तैयार हुई। सन्त की पालकी को फूलों से सजाया गया, जबकि वेश्या की अर्थी को कोई उठाने वाला नहीं था। जीव लेने के लिए आए हुए यमदूत योगी के जीव को नरक की ओर ले जाते हैं तथा वेश्या के जीव को स्वर्ग की ओर। यह अटपटा व्यवहार देखकर योगी का जीव बोल उठता है - अरे, लगता है तुम भूल गये हो, नरक में जाने योग्य तो इस वेश्या का जीव है। मैं तो योगी था। यमदूत कहते हैं - भाई! तू शरीर से तो संन्यासी था किन्तु तेरे दिल में क्या था? तू गुणद्वेषी था, परनिन्दक था। जबकि यह वेश्या तो तेरे संन्यासी जीवन में जो शान्ति और अपूर्व आनन्द था उसे पाने के लिए रात-दिन विचारों में खोई हुई रहती थी! जब तू रात्रि में भजन गाता और प्रातःकाल में मधुर मङ्गल श्लोक बोलता, उस समय वेश्या प्रभुमय बन जाती थी। भावविभोर बनकर स्वयं के कुकर्मों पर आँसू बहाती थी। तूं संन्यासी होने के अहंकार को पुष्ट करने के लिए सबकुछ करता था। जबकि दूसरी ओर वेश्या स्वयं के पापमय जीवन को पश्चात्ताप से विनम्र बनाती जाती थी। उसके चित्त में न अहंकार था, न वासना थी, बल्कि मृत्यु के समय उसका मन भगवान् की प्रार्थना में ही लीन था। सन्यासी मौन हो गया।

कहने का तात्पर्य यह है कि गुणानुराग से कलंकित जीवन जीने वाली वेश्या होने पर भी तीर गई और संन्यासी साधु जीवन को जीता हुआ भी डूब गया।

चारों तरफ दोषों से भरे हुए जगत में गुणों का दर्शन हो यह आश्चर्य की बात है। इसमें भी गुणों का भण्डार हो तो महान आश्चर्यजनक है। जीवन में एक भी गुण हो तो सद्भाग्य है। इससे आगे बढ़कर कहें कि जहाँ केवल दोष ही है, वहाँ कम दोष वाले हों तो भी अच्छा है। ऐसा महापुरुष कहते हैं कि जगत तो निर्गुणियों से भरा हुआ है, उसकी उपेक्षा करो।

जीव तीन प्रकार के

विचार ग्रस्त - पाँचों इन्द्रियों के विषयों की विचारणाओं में ही जिसका मन रमण करता हो।

विचार त्रस्त - व्यक्तियों के प्रति कषाय भाव से जिसका मन त्रस्त रहता हो वह।

विचार मस्त - विषय कषाय से ऊपर उठकर जिसका मन शुभ विचारों में रमण करता हो।

*

- शुभ भाव/शुभ प्रवृत्ति में रहने वाले का कल्याण निश्चित है।
- दान करता है, उसका पुण्य अखूट रहता है।
- शील-पालन करता है, उसका सुख अक्षय रहता है।
- तप करता है, उसको कभी दुःख नहीं होता।
- भाव से नवकार गिनता है, उसको मोक्ष मिलता ही है।

सत्कथा

आसोज सुदि २

दयापात्र कौन है?

हमारा कल्याण कैसे हो इसके लिए भगवान हमारी निरन्तर चिन्ता करते रहते हैं। जगत में अनेक धर्म प्रचलित हैं, किन्तु सच्चा धर्म कौनसा है इसकी अनेकों को जानकारी नहीं है। तप-जप करते हुए भी व्यर्थ ही उनको कायक्लेश लगता है और सद्धर्म उनके हाथ लगता नहीं। भगवान की वाणी को जो सुनते नहीं हैं, वास्तव में उनकी दशा शोचनीय है। वे दया के पात्र हैं, लेकिन **जो सुनकर एवं समझकर के भी आचरण नहीं करते, वे तो दयापात्रों में भी दया के पात्र हैं।**

तेली की घाणी में बंधा हुआ बैल सारे दिन में एक या दो किलोमीटर चलता है, किन्तु देखते हैं, तो उसी स्थान पर नजर आता है। उसी प्रकार हम मन में मानते हैं कि मैंने यह किया, मैंने वह किया, परन्तु अन्त में देखें तो वहीं के वहीं नजर आते हैं। हमारे स्वाभाव में न तो कोई परिवर्तन होता है और ना ही किसी प्रकार वाणी और आचार में परिवर्तन!

धर्म करने के लिए गुणों की आवश्यकता है। पूर्व में हम गुणानुराग पर विचार कर चुके हैं। अनन्त जन्मों से हमको अपनी जाति पर गर्व है इसीलिए हमको अपने ही गुण दिखाई देते हैं और दूसरों के अवगुण ही दृष्टि में आते हैं। अवगुणों को दूर करने के लिए सत्संग अत्यावश्यक है। **शास्त्रकार महाराज धर्म के योग्य व्यक्ति का तेरहवाँ गुण सत्कथा - सत्संग बता रहे हैं।**

सत्कथा अर्थात् जहाँ बैठा हो वहाँ उसके पास से श्रेष्ठ से श्रेष्ठ बात जानने को और सुनने को मिले। बहुत से मानव ऐसे होते हैं कि जहाँ बैठे

हों, वहाँ किसी न किसी की आप-बीति चलती रहती है। निन्दा के अतिरिक्त कुछ नहीं होता है।

चार विकथाएं - १. स्त्री कथा

सारा विश्व चार कथाओं में डूबा हुआ नजर आता है:- **स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा और राजकथा।** सत्कथाओं का मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। **स्त्रीकथा** अर्थात् **स्त्री सम्बन्धी चर्चा।** कामी पुरुष के पास बैठने पर हमें क्या सुनने को मिलेगा? स्त्रीकथा ही न! टी.वी., वीडियो और नाटक-सिनेमा में स्त्री कथा ही होती है न! और इस युग में तो आगे बढ़कर सौन्दर्य की स्पर्धा निकली है। स्त्री के सौन्दर्य की स्पर्धा! **स्त्री के सौन्दर्य को देखने का अधिकार पति के अतिरिक्त किसी को नहीं होता है, किन्तु आज भरे बाजार में ऐसी स्पर्धाएं आयोजित होती रहती है। हमारे शरीर में माँस है, यह क्या पक्षियों को बताना ठीक है? पक्षी न देखें इसीलिए उसके ऊपर चमड़ी रखी गई है। अन्यथा क्या गीद्ध तुम्हे जीवित रहने देंगे! सौन्दर्य तो आवरण में रखने की ही चीज है।** कामी पुरुष रूपी गीद्ध चारों तरफ उड़ रहे हैं। क्या दशा होगी? अरे, ट्रकों में भोजन की वस्तुएं भी आच्छादित करके रखने में आती है। विदेश में तो किसी भी प्रकार की भोजन सामग्री खुली रखकर बेचना भी अपराध माना जाता है। एक भाई ने अमेरिका में सिद्धचक्र पूजन का आयोजन रखा। पूजन में तो फल-फलादि खुले ही रखने में आते हैं। इन फल-फलादि को किसी ने हाथ भी नहीं लगाया। इस भाई ने सोचा कि अब यह फल-फलादि किसे दूँ। जलसरण करने गया तो वहाँ भी उसे ना कह दिया। क्योंकि यह हमारी जनता का नुकसान करता है, अत: पानी में भी नहीं फेंकने दिया। खुले खुराक की इतनी अधिक घृणा है। **खाद्य पदार्थों को भी जब ढक्कर रखा जाता है, तो सौन्दर्य जैसी इस महामूल्य वस्तु को**

सरे आम कैसे रख सकते हैं? आज तो इस स्पर्धा ने बहुत से लोगों को वासना ग्रस्त बना दिया है। चारों तरफ ऐसा ही वातावरण हो तो उसका प्रभाव पड़ता ही है। अत: ऐसी कथाएं जहाँ चलती हों वहाँ धर्मी मनुष्य को खड़ा नहीं रहना चाहिए।

२. भक्तकथा

दूसरी कथा है भक्तकथा अर्थात् **भोजन कथा** - जगत् का अधिकांश भाग अर्थात् स्त्री वर्ग भोजन कथा में ही रचा-पचा है। प्रात: उठने के साथ ही भोजनकथा शुरू होती है और वह सोने के पूर्व तक चलती रहती है। पहले तो रसोई तक ही भोजन कथा रहती थी और आज तो सुधरे हुए शिक्षित (?) युग में पत्र-पत्रिकाएं और कितनी ही पुस्तिकाओं में किस प्रकार के पदार्थ और किस पद्धति से बनाए जाएं इन बातों से भरी रहती है। भूख लगी, भोजन किया उसके बाद क्या खाया और कैसे बनाया इन बातों का अर्थ क्या? आज तो उपाश्रय में भी जाते हैं, तो वहाँ भी एक बहन दूसरी बहन से पूछती है - आज क्या बनाया था? वह पदार्थ किस प्रकार से बनता है? धर्मकथा के स्थान पर भी भोजन कथाओं की चर्चाएं चलती रहती हैं। इसीलिए उदयरत्नजी महाराज को सज्झाय बनानी पड़ी कि "**आज मारे एकादशी रे, नणदल मौन धरी मुख रहीये...**" घर से निकलने के बाद घर की बातें बन्द कर देनी चाहिए। बाहर निकलने पर श्रेष्ठ चर्चा ही करनी चाहिए। जिससे तुमको भी लाभ होगा और सुनने वाले को भी लाभ होगा।

३. देशकथा

तीसरी कथा है देशकथा :- भिन्न-भिन्न देशों की कथा। इस देश में यह चलता है! उस देश में यह चलता है! भांति-भांति के देशों की चर्चा करने पर हमारे हाथ क्या लगना है। इन कथाओं में मस्त हो जाने पर वहाँ परमात्मा की कथा का ध्यान कैसे आ सकता है?

४. राजकथा

चौथी कथा राजकथा है:- एक युग ऐसा था कि ऋषियों का राज्य चलता था। राज्य भले ही राजा करे किन्तु ऋषि-मुनियों के कथनानुसार ही संचालन होता था। राजागण उनको सम्मान देते थे। विश्वामित्र हों या दुर्वासा हो अथवा वशिष्ठ हों, ऋषियों के बल पर ही राज्य का संचालन होता था। समय बदला, क्षत्रियों का राज्य आया, क्षत्रियों ने जो चाहा सो किया। कुछ समय तक ठीक चलता रहा। फिर वेश्यों का राज्य आया। राज्य की व्यवस्था चाहे क्षत्रिय राजा ही करें, किन्तु उनके मन्त्री वणिक आदि जाति के ही रहते थे। मन्त्री लोग ही राज्य को चलाते थे। महाजन जो करता था वही होता था। ऐसा भी कुछ समय तक चला। इस प्रकार राज्य ऋषियों-ब्राह्मणों ने किया, क्षत्रियों ने किया, वेश्यों ने किया और अब शेष रहे शूद्र। आज राज्य व्यवस्था शूद्रों के हाथ लग गई है और उनकी शूद्र वृत्ति के कारण देश बरबादी की ओर अग्रसर है।

अजब अलौकिक शक्ति!

इन मुख्य चार कथाओं के अतिरिक्त भी दो कथाएं और हैं - अहंकारकथा और द्वेषकथा। लगभग सामान्य मनुष्यों के बीच में आप खड़े रहेंगे तो स्वयं की बढ़ाई के अतिरिक्त कुछ भी सुनने को नहीं मिलेगा। I am something. किन्तु वह यह नहीं जानता कि जगत में एक दूसरी भी अलौकिक शक्ति है। आज का मनुष्य इस शक्ति को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। बस, उसे तो अपनी ही शक्ति का प्रबल अहंकार होता है। चाहे नदियों की बाढ़ आए और चाहे भूकम्प हो उस समय मनुष्य की कौनसी शक्ति काम कर सकती है? परमात्मा के अतिरिक्त उस समय कोई भी बचा नहीं सकता। किसी भी कार्य के प्रारम्भ में जो प्रभु को याद करते हैं, तो उन पर प्रभु की कृपा अवश्य होती है। भले ही बढ़िया खाद्य पदार्थ खाने के लिए लेकर आए हों किन्तु पहले

भगवान के चरण पर धरते हैं। पर, यह कब बनता है? अहंकार से मुक्त बनेंगे तभी न! मनुष्य या तो अहंकार की कथा में फंसा हुआ रहता है अथवा द्वेष की कथा में। दूसरे का कोई गुणगान करता हो तो उसमें से उसके दोषों को चुन-चुनकर उसको नीचा दिखाने का प्रयत्न किया जाता है। आज तो चारों तरफ ये कथाएं ही चल रही हैं। ये कथाएं करने वाले मनुष्यों का विवेक रूपी रत्न नष्ट हो जाता है। मन कलुषित रहता है। धर्म में विवेक का स्थान सर्वोपरी है। अब तो विवेक ही न रहा? अतः धर्मार्थी को सत्कथी होना चाहिए।

अप्रमत्त, त्यागी, तपस्वी और दूसरों का कल्याण चाहने वाले जैन साधु निष्पाप, निष्परिग्रही, निश्चिन्त, निःस्पृही, निर्दम्भ, निरुपाधिक, निर्मल, निरुपद्रवी और निरोगी – नौ 'न' कार से युक्त जीवन जीने वाले होते हैं।

संसारियों का जीवन जीवों की यातना पर है जबकि संयमियों का जीवन जीवों की यतना पर है।

सुपक्ष से युक्त

आसोज सुदि ३

धर्म के योग्य अधिकारी का चौदहवाँ गुण सुपक्ष से युक्त होना है। सुपक्ष से युक्त अर्थात् सत्संग वाला होना चाहिए। उसकी बैठक में बैठने वाले श्रेष्ठ लोग होने चाहिए। यह बहुत ही आवश्यक है। आज तो अच्छे से अच्छे मनुष्य भी दूषित मनुष्यों की बैठक के कारण शराबी और जुआरी बन गए हैं। अच्छे मनुष्यों की संगत से कदाचित् हम दुर्व्यसनीय हों तब भी धीरे-धीरे सुधर जाते हैं। मुम्बई जैसे शहर में भी सत्संग होगा तो ही बच सकते हैं। अन्यथा फिसलते हुए समय नहीं लगेगा। सत्संग से तो भयंकर-खूँखार डाकू भी सज्जन बन गया।

डाकू से सन्त किसने बनाया?

एक डाकू था। खून और लूटपाट करना उसका धंधा था। रात-दिन उसी में लगा रहता था। एक समय उसकी एक सन्त से भेंट हुई। '**साधूनां दर्शनं पुण्यम्**।' अर्थात् सन्तों का दर्शन भी पुण्य को खेंचकर लाता है। तो फिर उनके सत्संग की तो बात ही क्या कहनी? कबीर एक स्थान पर लिखते है -

''कबीर संगत साधु की, हरे आधि और व्याधि,
बुरी संगत असाधु की, आठों पोर उपाधि।''

अर्थात् सज्जनों के सत्संग से मनुष्यों के दुःख-दर्द दूर हो जाते हैं जबकि दुर्जनों के सत्संग से मनुष्य आठों पहर उपाधि का वहन करता है। सन्त के दर्शन मात्र से उस लूटेरे का मन शान्त बन गया। सन्त के पास बैठने की उसकी कामना हुई। वह उनके पास बैठा। सन्त ने देखा कि लगता तो यह राजद्रोही है किन्तु इसका हृदय परिवर्तन के किनारे पर है, अतः समझाने की कोशिश करुं। सन्त ने पूछा - तुम क्या करते हो? उसने

कहा- मारना और लूटना यह मेरा व्यवसाय है। अ..र..र! एक पेट के खड्डे को भरने के लिए, तू इतना क्रूर आचरण करता है। कितने लोगो के हृदय की तूने हाय ली है। परिवार के एक मुखिया को तू यदि मार देता है, तो उसका सारा परिवार बरबाद हो जाता है। उसकी तुझे कितनी हाय लगती होगी। ऐसे एक नहीं तूने हजारों परिवारों की 'हाय' ली है। तेरा क्या होगा? शास्त्रकार कहते हैं कि किसी की भी 'हाय' मत लो। यह हाय तुम्हारे सुखमय जीवन रूपी बाग को जलाकर भस्म कर देगी। मैंने बहुत सी घटनाएं सुनी हैं। माँ-बाप और बड़ों की हाय लेने वाले बाद में कहीं के न रहे। इसके अतिरिक्त सोचिए, दुकान में बैठे हों और उस समय किसी को खराब माल बेचकर पैसा लें ले तों वह ग्राहक की हाय को नहीं लोगे? उसकी हाय तुम्हारे व्यवसाय को जड़ से बरबाद कर देगी। आज तो तीर्थस्थानों में ऐसा अधिकतर चलता है। शंखेश्वर जैसे तीर्थ में व्यक्ति तीर्थ दर्शन के साथ खरीदी भी करता जाता है। मुम्बई जाने के बाद खरीदे हुए माल को देखता है, तो नमूने के तौर पर अच्छे से अच्छा माल देखा था। लेकिन माल बिल्कुल हल्का निकलता है। अब वहाँ से जाने के बाद उस माल को बदलवाने के लिए कौन आएगा? किन्तु किसी के साथ इस प्रकार का विश्वासघात करने से वह कभी भी बढ़ोत्तरी नहीं कर सकता है।

वृद्धाश्रम की व्यथा

माण्डवी के वृद्धाश्रम में हम एक-दो दिन रहे। माता-पिता के हृदय की हाय आज के पुत्र लेते हैं। उनके हृदय की हाय, वेदना सुनकर हमारा हृदय कांप गया। माँ-बाप को छोड़ने पर भी वे ही माँ-बाप स्वयं के पुत्र-पौत्रों को याद करके आँखों से आंसू बहाते हैं। बेचारे कितने ही वृद्ध तो मन में यह आशा संजोए रहते हैं कि हमारा पुत्र आकर हमें ले जाएगा। आज ले जाएगा, कल ले जाएगा इसी आशा ही आशा में द्वार पर आँख लगाकर रात-दिन बिताते रहते हैं। कहाँ माता-पिता का निःस्वार्थ

प्रेम और कहाँ आज की सन्तानों का स्वार्थी प्रेम। पत्थर दिल मनुष्य का भी कलेजा कांप उठे वैसी स्थिति इस आश्रम में है। धर्म का प्रारम्भ ही माता-पिता से होता है। सर्वप्रथम इनकी पूजा और उसके बाद समस्त धर्म की। तुम मन्दिर जाते हो या नहीं? और पूजा करते हो या नहीं? यह तो सब बाद की बातें है, किन्तु तुम जहाँ भी हो, वहाँ से माता-पिता को मन से त्रिकाल नमस्कार किया करो। यह धर्म की भूमिका है और यही भूमिका मनुष्य को उच्च शिखर पर पहुँचाती है।

वाणी का चमत्कार

सन्त की मीठी वाणी सुनकर डाकू का हृदय भी पिघल गया। सत्संग का उस पर तत्काल ही प्रभाव पड़ा। जगत में दो चीज दुर्लभ हैं इसी बात को **सन्त तुलसीदास** कहते हैं :-

"सन्त समागम हरिकथा तुलसी दुर्लभ दोय,
सुत-दारा और लक्ष्मी पापी के भी होय।"

अर्थात् सन्त का समागम और हरि कथा ये दोनों ही अत्यन्त दुर्लभ है। सन्त के समागम से अच्छे-अच्छे पापी जीव भी पवित्र हो गए हैं। अनेक डाकू और लूटेरे भी सन्त का समागम प्राप्त कर इस मानव जीवन को सार्थक कर गये हैं। शेष पुत्र, पत्नी और लक्ष्मी तो पापियों के घर भी होती है अत: **धन मिलना यह महत्त्व नहीं रखता किन्तु सन्त का समागम मिल जाए यह महत्त्व का है।** इस डाकू ने भी उसी समय प्रतिज्ञा की कि अन्य के अधिकार की वस्तु मुझे नहीं चाहिए। मजदूरी करके ही मैं अपना गुजारा चलाऊँगा। पति और पत्नी दोनों ने पाप जनित कार्यों को छोड़कर धर्म के मार्ग पर चलने लगे और समय मिलने पर प्रभु के नाम का स्मरण भी करने लगे। प्रभु का नाम यह एक अपूर्व औषधि है। यदि सच्चे भाव से लोग उसका स्मरण करें तो सारे दु:ख अपने आप दूर हो जाते हैं।

"प्रभु नाम नी औषधि, खरा भावथी खाय,
रोग शोक आवे नहीं, सवि संकट मिट जाए।"

एक बार दोनों पति-पत्नी जंगल से गाँव की ओर जा रहे थे। रास्ते में एक चाँदी का कड़ा (पैर में पहनने का आभूषण) पड़ा हुआ था। वैसे तो इस समय उन दोनों के पास धन की बहुत कमी थी किन्तु उनकी प्रतिज्ञा थी कि दूसरे के अधिकार का धन नहीं लेना। पति ने विचार किया कि मुझे तो यह चाँदी का कड़ा नहीं लेना है किन्तु मेरे पीछे आ रही पत्नी की मनोवृत्ति बदल न जाए, इसीलिए उसने उस कड़े के ऊपर पर धूल डाल दी। पत्नी ने देखा और वह बोल उठी - "**धूल पर धूल क्यों डालते हो।**" अपने दोनों के मन में यह परधन पत्थर समान है। तुलसीदासजी ने कहा है -

"परधन पत्थर सम गणे, पर स्त्री मात समान,
इसको वैकुंठ न मले तो, तुलसी दास जमान।"

अर्थात् जो मनुष्य परधन को पत्थर के समान गिनता है और परस्त्री को माता के समान मानता है उसको यदि स्वर्ग नहीं मिले ऐसी स्थिति में तुलसीदास जी कहते हैं कि मैं जमानत देता हूँ, उसको वैकुंठ अवश्य मिलेगा। पति-पत्नी दोनों ही अपने नियम में अडिग रहे। सज्जन व्यक्तियों से भी बढ़कर ऐसा सुन्दर जीवन जी गये। एक खूँखार डाकू को भी सज्जन किसने बनाया? सन्त के समागम ने ही न!

आस-पास का परिवार श्रेष्ठ विचारों का हो तो ही मनुष्य शान्ति से रह सकता है और धर्म की आराधना कर सकता है। पक्ष अर्थात् पंख। पक्षी चाहे जितना भी विशाल हो किन्तु यदि उसके पंख कट जाएं तो वह नीचे ही गिरेगा न! इसी प्रकार प्रत्येक पक्ष से युक्त मनुष्य ही आगे बढ़ सकता है। राजा भी यदि सुपक्ष से युक्त हो तो ही राज्य व्यवस्था अच्छी चलती है। जो उसके साथ उठने-बैठने वाले लम्पट और लालची हों तो

राज्य का भी नाश हो जाता है। आज घर-घर में क्लेश क्यों उत्पन्न होता है? ननद और सास मिलकर पुत्र को ऐसे भड़काती है कि वह स्त्री से पूर्ण रूपेण विमुख बना देती है तो ऐसी अवस्था में वह घर बरबाद हो जाता है। कई बार ससुराल वाले भी जमाई को ऐसा चढ़ा देते हैं कि उसे माँ-बाप, भाई-बहन से विमुख बना देते हैं। संसार में कदम-कदम पर भड़काने के प्रसंग चलते ही रहते हैं। सभी स्थानों पर सुपक्ष से युक्त मानव होगा तभी शान्ति से जीवन व्यतीत कर सकेगा। सुपक्ष का दूसरा अर्थ यह है कि सच्ची सलाह देने वाले। दूसरों को सच्ची सलाह देने वाले बहुत कम लोग होते हैं। इस प्रकार सुपक्ष से युक्त मानव अपने जीवन में शान्ति प्राप्त कर सकेगा। शान्ति होगी तभी धर्म की आराधना कर सकता है।

चार प्रकार की बुद्धि-

1. कार्मणिकी - काम करते-करते ही मनुष्य को जो सूझ प्राप्त होती जाती है।

2. पारिणामिकी - अर्थात् अवस्था के साथ ही जो विकास को प्राप्त करती है।

3. औत्पातिकी - अर्थात् प्रत्युत्पन्नमति। हाजिर जवाबी।

4. वैनयिकी - विनय करते-करते ही देव-गुरु-धर्म की कृपा से यह बुद्धि प्रकट होती है।

अन्धेरे में भटकता जगत्

आसोज सुदि ४

सुदीर्घदर्शी

जगत के तमाम प्राणी अज्ञान के अन्धेरे में इधर-उधर भटक रहे हैं। यहाँ तक तो ठीक, लेकिन जीव अन्धेरे को ही प्रकाश मान बैठे हैं, यह दुःख की बात है। उसका परिणाम यह आया है कि आँखें होने पर भी और सामने निधान होने पर भी मनुष्य उसको देख नहीं पाता। जो मनुष्य यह समझ सकता है कि मैं अन्धेरे में भटक रहा हूँ तो सद्गुरु उसको मार्ग बताने के लिए तैयार बैठे हैं, किन्तु हम तो आँखें बन्द करके ही बैठे हैं। सत्य को सुनने की लिए तैयार ही नहीं है, यह कठिनाई है। महापुरुष घण्टा बजाकर हमें कह रहे हैं – **ब्रह्म सत्यं जगन् मिथ्या**। किन्तु हम तो मिथ्या जगत् को ही सत्य जगत् मानकर उसके पीछे दौड़ रहे हैं।

धर्मार्थी मनुष्य का पन्द्रहवाँ गुण – सुदीर्घदर्शी

इस लोक का धन कहाँ तक?

धर्मार्थियों के लिए भी दीर्घदर्शिता गुण अत्यन्त महत्त्व का है। मनुष्य दीर्घ दृष्टि से विचार करें तो वह अनेक अनर्थों से बच सकता है। हमारी विचारधारा तो बहुत ही छोटी होती है इसीलिए हमको चारों ओर धन और वैभव ही दिखाई देता है। जो मनुष्य दीर्घदृष्टि से विचार करता है कि धन कहाँ तक? तुम जीवित हो वहाँ तक शायद यह तुम्हारे काम में आ जाए किन्तु परलोक में यह धन काम नहीं लगने वाला है। भारत का रूपया अमेरिका तक भी नहीं चलता है तो इस लोक का धन परलोक तक कहाँ चलेगा? और इस धन का इस जीवन में भी अच्छी तरह से उपभोग नहीं कर पाते हैं। मुम्बई जैसे शहर में असली जवाहरात के आभूषण पहनकर के निकल सकते हैं क्या? यदि पहनकर निकलते हैं तो

जान जोखिम में पड़ जाती है। आभूषण लॉकर में ही बन्द रहते हैं। ऐसी सम्पत्ति है, तो भी मनुष्य भ्रांति में जीता है। अनेक संकटों को पैदा करने वाली सम्पत्ति का पूर्ण उपभोग भी नहीं कर सकते। कभी-कभी जीवन की समाप्ति तक यह हमें ले जाती है! अथवा प्रचुर सम्पत्ति हो किन्तु शरीर रोग युक्त हो तो? अच्छा खा-पी भी नहीं सकते। कदाचित् पुण्य के संयोग से सम्पत्ति मिल जाती है, भोग भी करते हैं किन्तु कहाँ तक? कबीर दासजी कहते हैं – **कहत कबीरा सुण मेरे गुणीया, आप मुये पीछे डूब गई दुनिया।** बल्कि आसक्ति के कारण स्वयं के आगामी जन्मों को भी वह बिगाड़ देती है। वैसे तो कहा जाता है कि सम्पत्ति पुण्य के योग से ही मिलती है, किन्तु कभी-कभी सम्पत्ति के कारण ही खून होता है तब तो यह मान लेना होगा कि पाप के उदय के कारण मिली है। सम्पत्ति आने के बाद मनुष्य विलास क्रिया में डूब जाता है और नए-नए पापों को बांधता जाता है। जो मनुष्य दीर्घदृष्टि से विचार करता है, तो उसको समझ में आ जाता है कि यह धन मुझे कहीं का कहीं फेंक देने वाला है। आगामी जन्म में तो धर्म ही मेरे काम आएगा।

साथ क्या आएगा?

मनुष्य के मर जाने पर उसे श्मशान में ले जाया जाता है। चिता जलाई जाती है.... लोग वापिस लौटते हैं, पीछे की ओर नजर करके देखते भी नहीं है। कहीं वह पीछे आ गया तो! यह मन में बराबर भय रहता है। साथ में आने वाला कौन? सगे-सम्बन्धी, प्रियजन, मोटर, बंगला या वैभव आदि कोई भी साथ आया है क्या? कोई भी साथ आने वाला नहीं है। जानते हुये भी इन सब को प्राप्त करने के लिए अंतिम सांस तक प्रयत्नशील रहता है जैसे यही सब कुछ साथ ले जाने वाला हो। संसार की इस माया में आकण्ठ डूबा हुआ रहता है। मनुष्य यदि दीर्घदृष्टि से विचार करे तो उसे सब कुछ अनर्थकारी लगेगा और वह धर्म के मार्ग की ओर चल सकेगा। उसी से पुण्योपार्जन होगा तथा सम्पत्ति, शान्ति अपने आप उसके

पास आकर खड़ी रहेगी.... उसको खोजने के लिए परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं है। पुण्य पैदा करो, सब कुछ ठीक हो जाएगा।

दृष्टि रूपी चश्मा

माइनस नम्बर वाले मनुष्य को निकट का सबकुछ दिखाई देता है, दूर का कुछ भी नहीं दिखाई देता है। दूर देखने के लिए तो उसे चश्मा पहनना ही पड़ता है.... उसी प्रकार हमारी दृष्टि भी माइनस बन गई है। अपने निकट में रहे हुए पत्नी, पुत्र, परिवार और धन-दौलत दिखाई देते हैं, किन्तु दूर के परलोक को हम देख नहीं पाते। यदि उसको देखना हो तो हमें सद्गुरु के बोध रूपी चश्में को धारण करना पड़ेगा। हम अंधकार में ही भटक रहे हैं। प्रकाश की किरणों तक हम पहुँचे ही नहीं। कदाचित् हमारे समक्ष प्रकाश आ जाए तो हम अपनी आँखों को बन्द कर लेते हैं। जैसे अन्धेरे में अचानक प्रकाश देखते हैं, तो हमारी आँखें अपने आप ही बन्द हो जाती हैं.... अहंकाररूपी अन्धेरे में हम भटक रहे हैं। इसी कारण सत्य के निकट नहीं पहुँच पाते। यदि कोई सत्य समझाता है, बताता है तो हम उसको छिटका देते हैं। अपने दोषों को देखने के प्रति हम अन्धे बन गये हैं।

आज का सुधरा हुआ (?) मानव....

मनुष्य सुख के भ्रम में जी रहा है। धर्म से सुख मिलता है यह उसकी बुद्धि में नही उतरता। धर्मवान बनने के लिए पहले गुणवान बनना होगा। परिणाम का विचार किए बिना ही आज का सुधरा हुआ, शिक्षित मानव प्रवृत्ति करता जाता है। क्रोध के आवेश या मान के आवेश आदि आवेशों में किए हुए कार्यों का परिणाम पीड़ी दर पीड़ी चलता रहता है। आज पैर ठण्डे हो गए हैं और दिमाग गरम हो गया हैं। पैरों को गरम रखना था, किन्तु उसके अभाव में कहीं निकट में जाना हो तब भी स्कूटर, गाड़ी के बिना चलता ही नहीं है। चलने की क्रिया तो आज प्रायः समाप्त सी हो गई है। इसी कारण शरीर भी कितना बेडौल और रोग का घर बन गया

है। एक व्यक्ति का शरीर इतना अधिक फूल गया था कि घर के दरवाजों से भी बाहर नहीं निकल सकता था। वह जब मर गया तो, उसे रस्से से बांध कर ही नीचे उतारा गया। क्यों? इसीलिए की वह दरवाजे में से निकल नहीं सकता था.... दिमाग को ठण्डा रखना था, उसके स्थान पर इतना गरम रखते हैं कि बात-बात में पुत्र बाप के सामने, बहू सास के सामने और भाई-भाई के साथ झगड़ा कर बैठते हैं। समता के अभाव में ही ऐसा होता है न!

मानव जन्म तो अनेकों को मिला है, किन्तु यह धर्म सबको नहीं मिला है। जिनको मिला है, वे भी उसके स्वरूप को समझने के लिए तैयार नहीं हैं। इसी कारण यह सारा जगत कीचड़ से सड़ रहा है। भविष्य का विचार किए बिना ही मनुष्य बात-बात में आवेश के कारण खून भी कर बैठता है। दीर्घदर्शिता के अभाव में सुखमय जीवन को भी दुःखमय बना लेता है। करोड़ो रूपये का प्रोजेक्ट खड़ा करता है, और उसके बाद चिन्ताओं से घिरकर अस्पताल में भर्ती होता है अथवा कुत्सित कार्यों के कारण जेल जाने की तैयारी करता है। मानव जन्म केवल देह का पालन-पोषण करने के लिए नहीं बल्कि आत्मा में जो अनन्त शक्ति भरी हुई है, उसे प्रकट करने के लिए है।

पश्चिमी अनुकरण

मनुस्मृति के अन्त में लिखा हुआ है कि दूसरे देश के मनुष्य हमारे पास से 'किस प्रकार जीवन जीया जाए' ऐसी शिक्षा प्राप्त करेंगे, ऐसा हम लोगों का रहन-सहन होगा किन्तु आज इस देश के लोगों में सबसे बड़ा दुर्गुण यह लगा हुआ है कि वे पश्चिमी देश का तुरन्त ही अनुकरण करते हैं, खाने-पीने में, पहनने-ओढ़ने में, और नाम रखने तक में भी हम पश्चिम का ही अनुसरण करते हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक सब कुछ नकली होता है। असलीयत पूर्णतः लुप्त हो गई है। **अब धोती, कुर्ता और साड़ी तो मुझे लगता है संग्रहालय में ही रखने होंगे**। धोती कैसी थी, वह देखने के

लिए संग्रहालय में जाना पड़ेगा। भारतीय जनता की प्रत्येक प्रवृत्ति में लाभ रहता था। धोती का पहनावा छोटे-बड़े सबके काम में आता था। एक का दूसरा पहन सकता था, किन्तु तुम्हारी यह मैक्सी-पंजाबी आदि कई प्रकार के कपड़े जिनके नाप के होते हैं उन्हीं के काम आते हैं।

लॉर्ड कर्जन कट

कैसा अन्धा अनुसरण है। उसका प्रत्यक्ष प्रमाण देखिए। लॉर्ड कर्जन भारत में वायसराय बनकर आए थे। उनका एक तरफ का होंठ कटा हुआ था। इस कारण उस पर मूँछ नहीं आती थी, इसी कारण बीच के हिस्से में ही मूँछ रखते थे। दूसरी तरफ की कटवा देते थे। उससे दोनों तरफ का हिस्सा बराबर हो जाता था। उसका अनुकरण हमारे यहाँ के बेवकूफ लोगों ने करना चालू किया। बीच के हिस्से में ही मूँछ रखने लगे। किसी समझदार मनुष्य ने एक युवक से पूछा - इस प्रकार मूँछ क्यों कटवाते हो। युवक ने उत्तर दिया - यह तो कर्जन कट है। यह सुनकर उस समझदार मनुष्य ने कहा - अरे, उस लॉर्ड कर्जन का तो होंठ कटा हुआ था और एक तरफ की ही मूँछ आती थी दोनों तरफ बराबर रहे इसलिए इस प्रकार से मूँछ कटवाता था पर तुम ऐसा क्यों करते हो तो उसका उत्तर था - अरे! यह तो फैशन है। ऐसा (बिना विचारे) अन्धा अनुसरण करने वाली आज की दुनिया को क्या कहें।

एक तरफ अनन्त अशान्ति को पैदा करने वाले पदार्थ हैं और दूसरी तरफ परमात्मा हैं। जिसने परमात्मा को पहचान लिया है उसके लिए तो सर्वप्रथम परलोक अर्थात् उसकी सद्गति निश्चित है, और पदार्थों के प्रति आसक्ति नहीं होने के कारण उसको प्राप्त करने के लिए अनेक प्रपंचों से मुक्ति मिलती है.... उससे जीवन में परम शान्ति होती है.... यह लोक भी शान्ति और प्रसन्नता से पूर्ण होता है और परलोक में भी सद्गति मिलने के कारण वहाँ भी परमशान्ति मिलती है। जिसने प्रभु को पहचान लिया है उसके मन की मस्ती अलौकिक होती है।

रामरक्षक है तो कौन क्या बिगाड़ेगा? (राम राखे तेने कौन चाखे)

एक सन्त पुरुष ध्यान में बैठे हुए थे। पास में ही शिष्य खड़ा था। भयंकर घोर जंगल था वहाँ बाघ और शेरों की भयावनी आवाज सुनाई देती थी। शिष्य एकदम घबरा जाता है। गुरु महाराज को भागने के लिए संकेत करता है किन्तु उसके गुरु तो ध्यानमग्न थे, भगवान के संरक्षण में थे। उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं था। अपने को बचाने के लिए शिष्य वृक्ष पर चढ़ गया। वहाँ भयोत्पादक शब्द करता हुआ बाघ आता है। वृक्ष पर बैठा हुआ शिष्य थरथर कांपता है। वह सोचता है कि यह बाघ अभी गुरु महाराज को फाड़कर खा जाएगा। उसको यह खबर नहीं थी कि जो भगवान के संरक्षण में होता है उसका कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता। कहावत है - **राम राखे तेने कोन चाखे।** बाघ निकट मे आया। गुरु की सौम्य मूर्ति देखकर एक दम शान्त हो गया और उनको प्रदक्षिणा देकर, कुछ समय उनकी छाया में रहकर वापिस चला गया। शिष्य तो यह दृश्य देखता ही रहा। गुरु भगवान के ध्यान में लीन थे। जब हम परमात्मा के साथ एकरूप बन जाते हैं तो हम भी परमात्म स्वरूप बन जाते हैं। जीवन में शान्ति का अकथनीय आनन्द प्रकट होता है। हम बाहर के पदार्थों के साथ तन्मय बन गये हैं इसी कारण हमारा चित्त परमात्मा में नहीं लगता है। कुछ समय के बाद शिष्य वृक्ष पर से उतरा। शिष्य ने गुरु महाराज की बड़ी प्रशंसा की। गुरु-शिष्य अब आगे चलते हैं। आगे जाते हुए सामने एक कुत्ता भौं-भौं करता आता है। गुरु ने हाथ में रही हुई लाठी को उठाया.... शिष्य बोला - गुरुजी ऐसा कैसे? जब बाघ जैसा भयंकर प्राणी सामने आया तो आपने आँख भी नहीं खोली और इस कुत्ते के सामने लाठी उठा ली, इसका क्या कारण है? गुरुजी ने उत्तर दिया - जब बाघ आया था तो **मैं भगवान के साथ था और अब तुम्हारे साथ हूँ।** संसार जनित प्रत्येक व्यवहार में यदि तुम प्रभु को साथ में और अपने सिर पर रखकर के काम करोगे तो.... उसके बाद उसका देखना चमत्कार। आज कोई मनुष्य

राष्ट्रपति अथवा संसद सदस्य के साथ सम्बन्ध रखता है तो वह कितना घमण्ड रखता है। जबकि ये तो राजाधिराज देवराज हैं। उनका सामीप्य कितना गर्व लाता है। अथवा जीवन में कितनी मस्ती लाता है?

किसकी रुचि?

पदार्थों और परमात्मा में रुचिकर कौन है, इसका निर्णय तुम्हें करना है। सद्गुरु तो तिराहे पर खड़े हुए तुमको रास्ता बता रहे हैं - हे भाई! यह मार्ग सीधा जाता है, शान्तिदायक है। और यह मार्ग राजमार्ग के समान निरन्तर चलता रहता है, जिसमें दुर्घटनाओं का भय बना रहता है। अनेक विघ्नों से परिपूर्ण है। तुझे जिस मार्ग जाना हो जा सकता है। कौन मूर्ख मनुष्य है, जो जानते हुये भी पदार्थ रूपी विघ्नों से भरे हुए (जहाँ दुर्घटना का भय है) मार्ग पर जाएगा? तुम जाओगे क्या?

भगवान श्री कृष्ण गीता में महत्व की बात कहते हैं - "**बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।**" अर्थात् जन्म के अन्तिम समय में ज्ञानी पुरुष मुझे प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु हमारा लक्ष्य परमात्मा को प्राप्त करने का होगा तभी तो सम्भव है। इस तरफ हम यदि कदम बढ़ाएंगे तभी न? किन्तु यदि हम परमात्मा के विरुद्ध दिशा में गमन करेंगे तो करोड़ो भव तक हम उसे प्राप्त नहीं कर सकेंगे। हमें जाना हो मुम्बई और रास्ता चुने दिल्ली का.... कभी मुम्बई पहुँच सकते हैं क्या! केवल कष्ट ही प्राप्त करेंगे न! उसी प्रकार परमात्मा की ओर अग्रसर होंगे तो ही जल्दी या देर से वे हमें अवश्य मिलेंगे। उनके विरुद्ध पदार्थों की दिशा में ही दौड़ेंगे तो कदापि परमात्मा नहीं प्राप्त कर सकेंगे। किन्तु दु:खों की विपरीत परम्परा खड़ी करेंगे।

परमात्मा के पास जाने की इच्छा होगी तो मन को तैयार करना ही पड़ेगा। दीर्घदृष्टि से विचार करोगे तो ही तुम्हे लगेगा कि यही सच्चा मार्ग है।

माला बनाई काष्ठ की, बीच में डाला सूत
माला बेचारी क्या करे कि, जपने वाला कपूत

दीर्घ दृष्टि

आसोज सुदि ५

परम कृपालु परमात्मा करुणापूर्वक हमको समझा रहे हैं कि तुम धर्म का मार्ग जैसा मानते हो, उतना कठिन नहीं है। है तो सरल ही; किन्तु उसके पहले दिमाग में यह बराबर बिठाना पड़ेगा। लेकिन आज के मनुष्य के दिमाग में विविध चिन्ताएं भरी पड़ी है। संसार की चिन्ता में व्यस्त व्यक्ति को धर्म का विचार करने का अवकाश ही कहाँ है?

जिस जन्म के मिलने के बाद स्वर्ग और मोक्ष तक पहुँचा जा सकता है, वैसा दुर्लभ जन्म मिलने के बाद भी यदि हम इसी प्रकार नष्ट कर देंगे तो दु:ख का अन्त कब आएगा। दीर्घ दृष्टि से विचार करें तो तुम्हारी समझ में आएगा की धर्म कैसा अमूल्य है? तुम तुम्हारी मनुष्य जाति के साथ तुलना तो करो कि वह झोपड़ी में रहने वाले लोगों की अपेक्षा हम कुछ सुखी हैं, क्यों? तुम्हारे पास कोई विशेष वस्तु है इसीलिए न! और वह विशिष्ट वस्तु है धर्म। इस भव में तो मालूम नहीं कि तुम किस प्रकार का और कैसा धर्म कर रहे हो? किन्तु पूर्व जन्म में किए हुए धर्म के कारण ही निश्चित रूप से तुम्हे शान्ति मिल रही है। लक्ष्मी को आकर्षित करने की आवश्यकता नहीं है। वह स्वयं आती है तो आने दो पुण्य उसको खेंच कर लाएगा। यदि तुम परिश्रम के बल पर खेंचना चाहोगे तो तुम ही टूट जाओगे। न्याय-नीति पूर्वक तुम अपना काम कर्त्तव्यपूर्वक करो उससे लक्ष्मी दौड़ती हुई स्वयं तुम्हारे सन्मुख आएगी।

लिखा हुआ लेख मिथ्या नहीं होता!

एक राजा था। वह नि:सन्तान था। इस कारण वह चिन्तातुर रहा करता था। प्रजा भी चिन्ता में थी। क्योंकि राजा और प्रजा के बीच में पिता-पुत्र जैसा सम्बन्ध था। राजागण प्रजा वत्सल रहते थे। लींबड़ी के राजा गाँव में किसी की मृत्यु होने पर, वे स्वयं वहाँ बैठने जाते। उसको

साँत्वना देते, ऐसे प्रजा वत्सल थे। आज की जनता तो राजा को निर्वाचित करके कुर्सी पर बिठाती है, तब भी वह आज का राजा, जनता को खड्डे मे डाल देता है। इस राजा का मन्त्री बहुत चतुर और परोपकारी था। उसने विधाता देवी की साधना की। साधना बल के सन्मुख क्या अशक्य होता है? देवी प्रत्यक्ष हुई, वरदान माँगने के लिए कहा। तब मन्त्री ने रानी को पुत्र हो, ऐसा मांगा। लेकिन देवी ने कहा- इसके अलावा कुछ और मांगो। मंत्री ने जिद पकड़ी तो देवी ने कहा- कि पुत्र तो होगा, किन्तु वह सुखी नहीं होगा। इतना कहकर देवी अदृश्य हो गई। समय व्यतीत होता गया। रानी ने पुत्र को जन्म दिया। राजा के हर्ष का कोई पार नहीं था। पुत्र का जन्मोत्सव बड़ी धूमधाम से मना रहा था। छट्ठी के दिवस विधाता भाग्यलेख लिखने के लिए आता है। मन्त्री, कुमार के पालने के पास जागृत बैठा हुआ है। मन्त्री ने देवी की आराधना की थी, इसीलिए देवी जो भाग्य लेख लिख रही थी उसको देख रहा था। लेख लिखने के बाद देवी ज्यों ही मुड़ती है, त्यों ही मन्त्री उसका पल्ला पकड़ लेता है, और पूछता है कि लेख में आपने क्या लिखा है, मुझे बतलाइए। देवी कहती है कि यह लड़का जब २० वर्ष का होगा तब राजा और रानी दोनों ही मृत्यु की गोद में चले जाएंगे। राज्य पर शत्रु राजाओं का अधिकार हो जाएगा और इस लड़के के पास केवल एक घोड़ा, रस्सा तथा कुहाड़ा ये तीन ही चीज रहेगी। देवी चली गई। इस गुप्त रहस्य को मन्त्री ने अपने हृदय में ही रखा। कालचक्र बीतते हुए क्या समय लगता है! समय तो पानी के प्रवाह के समान बह रहा है। सुख के दिवस जल्दी से बीत जाते हैं। देखते-देखते २० वर्ष बीत गए। राजा और रानी दोनों मृत्यु को प्राप्त हुए। उस राज्य पर दुश्मन अपना अधिकार कर लेते हैं। मन्त्री भी राज्य छोड़कर संन्यास धर्म स्वीकार करता है।

कर्म राजा का झटका

इस तरफ कुमार के हाथ में केवल एक घोड़ा, रस्सा और कुहाड़ा ही रहता है। इन तीनों वस्तओं को लेकर कमार वहाँ से भाग छुटता है।

एक समय का राजकुमार आज भटकता हुआ भिखारी बन गया। कर्म राजा कब और किसको किस दशा में ले जाएगा यह कह नहीं सकते? ऐसे विकट समय में धर्म ही साथ देता है, रक्षण करता है। यह कुमार घोड़ा लेकर सदा जंगल में जाता है और लकड़ियाँ काटकर उससे अपना गुजारा चलाता है। मन्त्री (संन्यासी) खूब चतुर एवं चालाक था। उसने कुमार के पास पहुँचकर कहा - आज सांझ को तुम घोड़ा, रस्सा और कुहाड़ा ये तीनों बेच देना। कुमार कहता है कि मेरी आजीविका का साधन यही है। यदि इसको बेच दूंगा तो मैं क्या करूँगा? संन्यासी कहता है - तू चिन्ता मत कर। मैं जैसा कहता हूँ वैसा कर। कुमार ने लकड़ी के भार के साथ घोड़ा, रस्सा और कुहाड़ा बेच दिया। अच्छा धन मिला। उस धन से अच्छा खाने-पीने और पहनने की वस्तुएं खरीदी। रात पूरी हुई, सुबह हुई तो देखता है कि आंगन में घोड़ा, रस्सा और कुहाड़ा ये तीनों ही मौजूद हैं। आश्चर्य के साथ इस तीनों वस्तुओं को लेकर वह जंगल में जाता है। सायंकाल इन तीनों वस्तुओं को बेच देता है। प्रातःकाल ये तीनों चीजे पुनः उसके आंगन में विद्यमान रहती है। क्योंकि उसके भाग्य में ये तीन वस्तुएं ही लिखी हुई थी। अतः विधाता देवी को ये तीनों वस्तुएं हाजिर करनी ही पड़ती हैं। विधाता देवी/भाग्य प्रतिदिन घोड़ा कहाँ से लाए! वह परेशान हो जाती है। पूर्व के मन्त्री (संन्यासी) के पास जाकर कहती है - तुमने मुझे संकट में डाल दिया। प्रतिदिन मैं घोड़ा कहाँ से लाऊँ? मन्त्री कहता है - हे भाग्य विधाता! या तो आप इसका राज्य सौंप दें नहीं तो रोज-रोज घोड़ा आपको लाना ही पड़ेगा। विधाता उसको वापिस राज्य दिला देती है।

निष्कर्ष ये है कि यह तो एक वार्ता/घटना है, किन्तु **जो भाग्य में लिखा होता है उसको मिथ्या करने में कोई भी समर्थ नहीं है**। कितने ही लोग धूल में से धन पैदा करते हैं। मकान के ठेकेदार क्या करते हैं, **रेत में से ही धन पैदा करते हैं न? कितने ही लोग भाग्यहीन होते हैं, तो धन को भी धूल कर देते हैं**। वंश परम्परा से चाहे जितना भी धन

मिला हो वह यदि भाग्य में न हो तो चला जाता है। तुम तुम्हारे भाग्य पर भरोसा रखो। उल्टा-सुल्टा करके लोगों को किसलिए लूट रहे हो। तुम्हारे भाग्य में लिखा हुआ धन कहीं जाने वाला नहीं है। विधाता को कहीं से भी लाकर तुम्हें देना ही पड़ेगा।

खोखलाधर्म

अगर मनुष्य दीर्घ दृष्टि से विचार करें तो उसकी समझ में आ सकेगा कि यह शरीर क्षण भंगुर है, नाश होने वाला है। आज का समय बहुत भयंकर है। किस पल में और किस क्षण में आदमी चला जाएगा, कह नहीं सकते? पुण्य का फल सबको चाहिए। गाड़ी, बगीचा, बंगला और समृद्धि चाहिए, किन्तु ये वस्तुएं जिसके आधार पर मिलती है उस पुण्य को प्राप्त करने का मनुष्य नहीं सोचता है। कहावत है - "**पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः।**" अर्थात् पुण्य फल की कामना करता है, किन्तु मानव पुण्य कर्म नहीं करता है। जन्माष्टमी आती है तब मन्दिरों को रोशनी से सजाया जाता है। बड़े-बड़े वरघोड़े निकालते हैं, किन्तु जीवन में झांककर देखें तो हमने जन्माष्टमी को जुआ खेलने की अष्टमी बना रखी है। वास्तव में उद्यापन करना हो तो उस दिन समस्त व्यसनों को तिलाञ्जली दे दो। पान, बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, शराब आदि को बन्द कर दो। भगवान् की आज्ञा को सिर पर चढ़ाओ तब ही वास्तविक जन्मोत्सव मनाया, ऐसा कह सकते हैं। यहाँ तो गला फाड़कर कहते हैं - '**हाथी घोड़ा पालकी जय कनैया लाल की**' किन्तु जीवन में कभी कृष्ण के द्वारा बताए हुए मार्ग को जानने की कोशिश नहीं की है। आचरण करना तो बहुत दूर की बात है। अपने यहाँ भी गला फाड़कर चिल्लाते हैं - '**गुरुजी अमारो अन्तर्नाद, अमने आपो आशीर्वाद**' किन्तु आशीर्वाद लेना हो तो अच्छे काम करो। हमारे पास आओ **धर्म को समझो किन्तु निकट तो आना नहीं है और आशीर्वाद लेना है। बाजार के बीच में बड़े ऊँचे-ऊँचे सुरो में गला फाड़कर कहते हैं, किन्तु गुरुजी के निकट आकर स्वयं के व्यसनो को, अवगुणों को दूर करने का प्रयास नहीं करते।**

धर्म करना नहीं, व्यसन छोड़ना नहीं और आशीर्वाद के लिए केवल गला फाड़ना है। यह कैसा मायावी और दम्भी संसार है। दीर्घ दृष्टि से विचार करो तो तुम्हे प्रतीत होगा की तुम कहाँ खड़े हो।

स्थान रखने के लिए धर्म

बहुत से लोग हमारे पास आकर कहते हैं - साहेब, हमें आर्शीवाद दीजिए। हमारे पास बहुत धन आए और हम संघ निकालें। मैंने कहा - भाई! तुम्हें संघ निकालने की क्या आवश्यकता पड़ गई? क्या किसी ने यात्रा नहीं की? उत्तर मिला - साहेब, ऐसा नहीं है! मित्र मण्डल में से किसी ने मूर्ति भराई है, किसी ने संघ निकाला है, किसी ने पूजन पढ़ाया है और मैं यदि कुछ भी नहीं करुंगा तो लोगों की दृष्टि में मेरा नीचा स्थान हो जाएगा। मैंने कहा - अरे भाई! समाज में अपना दबदबा दिखाने के लिए ही धर्म करना है या सद्गति प्राप्त करने के लिए! ऐसे एक-दो नहीं अनेक लोग इसी को धर्म मानते हैं। आशीर्वाद तो हमारा कल्याण हो ऐसा मांगना चाहिए इसके स्थान पर हम खूब धन कमायें ऐसा आशीर्वाद दो!

धन को सम्मान देती दुनिया - सेठ की कथा

एक सेठ थे। पूर्वजन्मों में किए हुए सुकृत कार्यों के कारण ही इस जन्म में उन्हें अखूट लक्ष्मी मिली। जहाँ गुड़ होगा वहाँ मक्खियाँ आएंगी ही। इस कहावत के अनुसार सेठ को बहुत लक्ष्मी मिली थी इस कारण उसके मित्र भी बहुत थे। किन्तु पुण्य का बादल कब छिटक जाता है, कह नहीं सकते। पुण्य समाप्त हुआ। ज्यों-ज्यों लक्ष्मी धीमे-धीमे घटने लगी त्यों-त्यों उसके मित्र भी घटने लगे। अन्त में ऐसी स्थिति आ गई की अन्न और दांत के वैर हो गया अर्थात् खाना मिलना भी मुश्किल हो गया। जो मित्र साथ में घूमने फिरने वाले थे, वे अब उधर झांकते भी नहीं थे। यह संसार कैसा स्वार्थी है! सेठ को लगा की स्वदेश में तो मैं किसी प्रकार का धन पैदा नहीं कर सकता अतः परदेश जाऊँ। ऐसा सोचकर धन कमाने के लिए वह परदेश गया। क्षेत्र बदलने पर कितने ही कर्म अपना

रूप भी बदल देते हैं। परदेश में सेठ का पुण्य खिल उठा। बहुत धन कमाकर अपने देश लौटा। अखूट सम्पत्ति के साथ अपने देश लौटने पर गाँव के मनुष्यों को खबर पड़ी कि सेठ बहुत धन कमाकर आ रहा है। सेठ का सामैय्या करना चाहिए। सब मित्र इकट्ठे हुए, सामैय्या लेकर सामने गये। सेठ पूर्णत: सामान्य वेश में आ रहे थे। किसी को कल्पना भी नहीं आ सकती की यह अरबपति है। सेठ आगे चलता है, पीछे घोड़े पर धन की थेलियाँ रखी हुई है। एक-दो घोड़े नहीं वरन् पच्चीसों घोड़ों का झुन्ड आ रहा है। सबसे आगे सेठ चल रहा है। बहुत वर्ष बीत जाने और सादे वेश में रहने के कारण लोग सेठ को पहचान नहीं पाते। उसको सेठ का नौकर समझकर पूछते हैं - सेठ कहाँ है? सेठ ने कहा - पीछे घोड़े पर आ रहा है। लोग पीछे की ओर गये। देखा, तो घोड़े पर तो माल और सामान के अतिरिक्त कुछ नहीं था। वापस आगे आकर सेठ को ही पूछते है - पीछे तो कुछ भी नहीं है, क्या तुम ही सेठ हो? सेठ कहता है - सेठ तो मैं स्वयं हूँ, किन्तु जिसका स्वागत करने के लिए तुम लोग आए हो वह तो घोड़े की पीठ पर है। It is on the Horse back. लोगों का लज्जा के कारण मुँह झुक गया। सेठ कहता है - मैं तो वही का वही हूँ। पहले जब मेरे पास यह धन था, तब तुम मेरी पूजा करते थे। और आज यह धन वापिस मेरे पास आ गया है, तो तुम भी सत्कार/पूजा करने के लिए आ गये हो। संसार में ऐसा ही चलता है। स्वार्थ होगा वहाँ तक तुम्हारी फूलों से पूजा होगी, स्वार्थ खत्म होने पर वे ही लोग तुम्हे पत्थर मारने वाले होंगे। इसीलिए महापुरुष कहते हैं कि भाई! तनिक विचार करो। दीर्घ दृष्टि से विचार करोगे तो तुम्हारी समझ में आएगा की इस धन-दौलत की कोई महत्ता नहीं है।

युवावस्था में मनुष्य धन के लिए अपने आरोग्य का मटियामेट कर देता है। और वृद्धावस्था में आरोग्य के लिए धन गंवाता है। और अन्त में उसके पास कुछ नहीं रहता।

दीर्घ दृष्टि

आसोज सुदि ६

परम कृपालु परमात्मा हमको धर्म का मङ्गलमय मार्ग बताते हुए कह रहें है कि धर्म का स्पर्श जीवन के साथ होना चाहिए। **एक संघ निकाला, ९९ यात्रा करवाई, चौमासा करवाया और किसी स्थान पर भगवान को विराजमान किया। इससे धर्म कार्य पूर्ण हो गया ऐसा नहीं मानें। धर्म तुम्हारे प्रत्येक व्यवहार में गूंथा हुआ होना चाहिए।**

वृक्ष के मूल में पानी सिंचन करने का होता है। उसकी शाखा या फल पर पानी का सिंचन नहीं होता है। मूल में सिंचन करोगे तो वृक्ष अपने आप ही फलेगा-फूलेगा। उसी प्रकार सुख की जो जड़ है उस धर्म का सिंचन करो। सुख अपने आप प्राप्त होगा। धन प्राप्त करने की तो अनादि काल की संज्ञा है आवश्यकता से अधिक नहीं ऐसी धारणा कर इस संज्ञा को दूर करके धर्म प्राप्ति की ओर मन को लगाओ। पैसा जीव को मनुष्य नहीं बना सकता.... अर्थात् मनुष्य जन्म नहीं दिला सकता। चक्रवर्ती के पास अरबों की सम्पत्ति होती है, यदि वह उसको नहीं छोड़ता है तो वह नरक में जाता है। सम्पत्ति मिल जाने से सद्गति मिल जाएगी, ऐसा सोचकर न बैठे। धर्म का गम्भीरता से विचार करना चाहिए। दीर्घदृष्टि से समझना चाहिए। शास्त्र में एक दृष्टान्त आता है।

छिलके वाला धान

एक सेठ थे। उनके चार लड़के थे। चारों पुत्रों का विवाह कर दिया। सेठ अब संसार के व्यवहारों से मुक्त होने की आशा रखते थे। पुत्र जब सम्भालने योग्य हो गये उस अवस्था में तुम निवृत्त होने की इच्छा करोगे या नहीं? कितने ही मनुष्य ऐसे होते हैं कि अन्तिम सांस तक व्यापार धन्धें को नहीं छोड़ते। अन्त में मृत्यु आ जाती है, तब सब कुछ

छुट जाता है। संसार की उपाधियों से मुक्त होने पर ही तुम्हें धर्म करने का विचार और समय मिल सकता है। सेठ ने विचार किया कि घर का इतना मोटा कार्यभार किसको सौंपु। पुत्र वधुओं की परीक्षा करने के लिए उसके एक महोत्सव किया। समस्त स्वजन-सम्बन्धियों को बुलाया। सभी लोगों के बीच में क्रमशः एक-एक बहू को बुलाता है और चारों बहूओं को छिलके वाले धान के पाँच-पाँच दाने संभालने के लिए देता है और कहता है मैं जब इन्हें माँगू तब मुझे यह देना। बड़ी बहू को ऐसा लगता है कि यह बुढ्ढे की मति मारी गई है। इन पाँच दानों का मैं क्या करुँगी। ससुर जी माँगेगे तब घर में से दूसरे पाँच दाने लाकर उन्हें दे दूँगी। इनको कहाँ संभालती रहूँ? ऐसा सोचकर उसने धान के पाँच दाने फेंक दिए। दूसरे नम्बर की बहू उन दानों को खा गई। तीसरे नम्बर की बहू ने सोचा कि ससुरजी ने सबके सामने यह दाने दिए है तो इसमें कोई न कोई रहस्य होगा अतः उन दानों को संभालकर आलमारी में रख दिये। अब चौथे नम्बर की बहू अत्यन्त चतुर और विचक्षण थी। उसने विचार किया कि मेरे ससुरजी बहुत ही बुद्धिमान है, उन्होंने किसी कारण से ये दाने मुझे दिए हैं, अतः उसने उन दानों को स्वयं के पीहर भिजवा दिये और भाईयों को कहलवाया कि इन पाँच दानों को अपने खेत में बो देना। इसमें से पकने पर जो दाने निकले वे सारे के सारे दूसरे वर्ष बो देना। उसमें से जो मिले उसको तीसरे वर्ष बो देना। इस प्रकार इन दानों को क्रमशः बोते जाना है।

छोटी बहू का चातुर्य

समय बीता। पाँच वर्ष का काल पूरा हुआ। ससुरजी ने फिर बड़ा समारोह किया। सभी बहूओं को पहले वाले पाँच दानों को लाने के लिए आदेश दिया। बड़ी बहू ने तो कोठी में से पाँच दाने लाकर उनको दे दिए। श्वसुरजी ने कहा - ये दाने वह नहीं है जो मैंने तुम्हें दिए थे। वे दाने कहाँ गये? बड़ी बहू सच बोली और उसने कहा - पिताजी, वे दाने तो मैंने फेंक

दिए थे, ठीक है। दूसरी बहू के पास से माँगे तो उसने कहा कि उन दानों को तो मैं खा गई थी। ससुरजी ने कहा – ठीक है। ससुरजी फिर तीसरी बहू से वे ही दाने माँगे। उसने तत्काल ही आलमारी मे से निकालकर दे दिए। चौथी बहू से ससुरजी ने उन दानों को माँगा। छोटी बहू ने कहा – पिताजी उन दानों को लाने के लिए तो आपको कई गाड़िया भेजनी पड़ेगी। ससुरजी ने बैल गाड़िया दी। पाँच सौ गाड़िया भरकर वे चावल लाए गये। दीर्घदृष्टि से ससुरजी ने देखा कि बड़ी बहू ने उन दानों को फेंक दिया था, उसको फेंकना ही आता है, अतः उसको घर की साफ-सफाई आदि का काम सौंप दिया। दूसरी बहू खा गई थी अतः उसको खाना ही आता है, ऐसा समझकर रसोई घर का काम उसे सौंप दिया। तीसरी बहू ने दानों को संभालकर रखा था अतः उसको घर के आभूषण और कीमती वस्तुएं संभालने का काम सौंप दिया। छोटी बहू ने अपने बुद्धि वैभव से उन दानों की वृद्धि की थी अतः उसको घर का सम्पूर्ण कार्यभार संभला दिया। इस घर की देख-रेख तुझे ही करनी है। सब लोग तेरे आदेश का पालन करेंगे। यह तो दृष्टान्त मात्र है, इसका उपनय इस प्रकार है।

पुण्य के चार भेद

हमें पुण्य को फेंक देना है, खा जाना है, संभालकर रखना है अथवा उसको बढ़ाना है? आज का अधिकांश वर्ग पुण्य को फेंक देता है। अर्थात् उड़ा देता है। तुम लोग मौज मस्ती में सारे धन को उड़ा देते हो न! घूमने के लिए जाते हो। पाँच-पच्चीस हजार खर्च करके आते हो। किसी गरीब परिवार की सहायता की होती तो कितने मनुष्यों को सांत्वना मिलती। तो क्या तुम्हें भी इस पुण्य को उड़ा देना है? कितने ही मनुष्य पुण्य को खा जाने का कार्य करते है। उड़ाऊ मनुष्य जैसे-तैसे और जहाँ-तहाँ पैसे फेंकता ही रहता है। कितने ही मनुष्य पुण्य को संजोकर/सम्भालकर रखते है। प्राप्त-लक्ष्मी की कुछ बढ़ोत्तरी करते है.... जबकि

कितने ही मनुष्य सुकृत कार्यों के द्वारा दूसरे के परोपकार करते हुए दान, दया आदि सत्कृत्यों से अपने पुण्य को बढ़ाते रहते हैं। इन चार प्रकार के मनुष्यों में तुम्हारा नम्बर कौनसा आता है? विचार करें....! सबसे श्रेष्ठ पुण्य में बढ़ोत्तरी करने वाला मनुष्य है....!

विशेषज्ञ

धर्मार्थी मनुष्य का १६वाँ गुण **विशेषज्ञ** होता है।

उत्तम धर्म की प्राप्ति कब होती है? जो मनुष्य विशेषज्ञ होता है अर्थात् अन्तर को समझता है वही सच्चे धर्म को परखने वाला होता है। गोल और खोल के भेद को जानने वाला होता है अर्थात् वस्तु और उसकी कमी के भेद को जानने वाला होता है। वही पूर्ण वस्तु को प्राप्त कर सकता है। जैसे - गुण कौनसे है और दोष कौनसे है उनको जानने वाला व्यक्ति ही गुणों की आराधना कर सकता है। समृद्धि मिलने के बाद वह यदि विशेषज्ञ होगा तो उस सम्पत्ति का सदुपयोग करेगा, अन्यथा भोग विलास और मौज-मस्ती में मिली हुई सम्पत्ति को उड़ा देगा। आज धर्म के अनेक मतमतान्तर हैं, अनेक गच्छ हैं और अनेक सम्प्रदाय हैं, उन सब में से विशेषज्ञ मनुष्य ही श्रेष्ठ को ग्रहण कर सकता है, अन्यथा वह कुपथ पर चला जाएगा।

आज जगत् का अधिकांश वर्ग जहाँ चमत्कार होता है वहाँ नमस्कार करने वाला बन गया है। इस गुण के अभाव में ही वह इतना अधिक अंधश्रद्धालु बन गया है कि उसको यदि पत्थर में भी चमत्कार दिखता है तो पत्थर के समक्ष ही अपनी भोगों की याचना करने बैठ जाता है। कोई उसको बताने वाला चाहिए कि भाई इनके पास से याचना कर तुझे सब कुछ मिलेगा।

अन्धश्रद्धालु मूर्ख की कथा

एक मनुष्य था। उसकी स्त्री खो गई। वह राम के मन्दिर में जाकर भगवान के सामने खूब रोने लगा। उसको रोते हुए देखकर पूजारी को दया

आई। पूजारी ने कहा - भाई! क्या हुआ जो तुम इतने, अधिक क्यों रो रहे हो? मुझे कहो, कोई न कोई समाधान मिल जाएगा। पहले तो उस मनुष्य ने कहने में आनाकारी की। कुछ नहीं.... फिर पूजारी ने कहा - भाई! इस राम की मैं वर्षों से पूजा कर रहा हूँ। तुम शायद आज ही दर्शन करने के लिए आए हो। ये भगवान ऐसे ही तुम्हारी प्रार्थना नहीं सुनेंगे। मुझे कहो, मेरी बात वे सुनेंगे। क्योंकि तुम्हारी अपेक्षा मेरे साथ उनके अधिक सम्बन्ध है। मैंने तुम्हारी अपेक्षा अधिक पूजा की है। उस मनुष्य को ऐसा लगा कि बात सच्ची है। मैं तो कभी-कभी ही भगवान को याद करता हूँ। यह पूजारी तो प्रतिदिन उनकी पूजा करता है। उस मनुष्य ने पूजारी से कहा - हे भाई! मेरी स्त्री कहीं खो गई है। वह मुझे जल्दी से मिल जाए इसीलिए मैं भगवान् से प्रार्थना करने आया हूँ। पूजारी ने कहा - मित्र! तुम भूल गये हो। जो तुम्हें तुम्हारी स्त्री को ही प्राप्त करना है तो तुम हनुमान के पास जाओ.... क्योंकि राम की सीता जब खो गई थी तो हनुमान ने ही खोजकर सूचना दी थी। उस मनुष्य को लगा कि इसकी बात सच्ची है। वह गया हनुमान के मन्दिर में वहाँ हनुमान की मूर्ति पर बैठकर एक चूहा नाच रहा था। उसको लगा कि हनुमान की अपेक्षा तो यह चूहा बढ़कर है। चूहे को पकड़कर पिंजरे में डाल दिया और उसकी पूजा करने लगा। एक दिन बिल्ली ने उस चूहे को पकड़ लिया। उसको ऐसा लगा कि चूहे कि अपेक्षा भी बिल्ली अधिक बलशाली है अतः वह बिल्ली की पूजा करने लगा। एक दिन उसने देखा कि एक कुत्ता बिल्ली के पीछे दौड़ रहा है। उसको लगा की बिल्ली की अपेक्षा कुत्ता बढ़कर है। कुत्ते को घर लाया, उसको रोज स्नान कराता, तिलक इत्यादि लगता। संयोग से उसकी स्त्री घर आ गई। उस औरत को लगा की इनको कैसे समझाऊं। जिसको देखते हैं उसी ही की पूजा करने लग जाते हैं। उसको शिक्षा देने के लिए एक दिन उसके सामने ही उस कुत्ते को डंडा मारा। कुत्ता चीखता-चिल्लाता हुआ भागा। उन भाईसाहब को लगा कि अरे, कुत्ते की अपेक्षा

तो मेरी स्त्री ही बढ़-चढ़कर है, उसकी ही मुझे पूजा करनी चाहिए। अब वह अपनी स्त्री की पूजा करने लगा। स्त्री चिड़ गई और उसने हाथ उठाया, यह देखकर भाईसाहब ने भी डंडा उठाया और उसको मार दिया। स्त्री रोने लगी तब उस मनुष्य को लगा की अरे रे.... इन सबकी अपेक्षा तो मैं ही महान हूँ। कैसी मूर्खता है! कैसी अन्धश्रद्धा है!

ऐसे अनेक चमत्कार बताने वाले अनेक मत-मतान्तर आज विद्यमान हैं। ऐसे बाबालोग, भूत निकालने वाले और संन्यासीगण आज अनेक प्रकार के भोले मनुष्यों को ठग रहे हैं। ऐसे युग में विशेषज्ञ मनुष्य ही सच्चे तत्त्व को पा सकता है।

बुझती हुई दीपक की ज्योति।
अस्ताचल पर जाता हुआ सूर्य।
नाभि में से उठती हुई श्वास।

दृष्टि खुली हो तो ही जान सकते हैं कि ये हमें मौत का संकेत दे रहे हैं, किन्तु हमारे पास तो वह आँख ही नहीं तो फिर दृष्टि को उघाड़ने की बात क्या करें?

श्री सिद्धचक्र के व्याख्यान

आसोज सुदि ७

प्रथम पद

वर्ष में दो बार नवपद की आराधना करने में आती है। जहाँ देखो वहाँ मन्दिर में सिद्धचक्र का यन्त्र तो होता ही है। सिद्धचक्र एक चक्र है। उसके प्रत्येक पदों का महत्व बहुत अधिक है। जिस प्रकार घड़ी में एक-एक पुर्जे का महत्व होता है। घड़ी पूर्ण हो किन्तु उसमें सुईयाँ न हो तो, सुईयाँ हो किन्तु चाबी न हो तो। सेल वाली घड़ी में सबकुछ है किन्तु सेल न हो तो, एक स्क्रू न हो तो घड़ी नहीं चल सकती। इसी प्रकार एक पद न हो तो उसका सामर्थ्य खंडित हो जाता है। नवपद में शासन है और शासन में नवपद है। उसके तीन विभाग हैं - देव, गुरु और धर्म। प्रारम्भ के दो पदों में देव हैं। बीच के तीन पदों में गुरु है और अन्तिम चार पदों में धर्म है। नवपद में पाँच गुणी है और चार गुण है। इन चार गुणों के बल पर ही अरिहंत सिद्ध आदि होते हैं। देव (अरिहंत देव) ने शासन की स्थापना की और गुरुओं ने उसे आगे बढ़ाया।

प्रथम अरिहंत कैसे?

नवपद में प्रथम अरिहंत पद किसलिए है? अरिहंत परमात्मा के तो चार कर्म ही क्षय हुए हैं, जबकि सिद्ध परमात्मा के तो आठ कर्मों का क्षय हो गया है तब भी अरिहंत पहले और सिद्ध बाद में क्यों? यह इसलिए की हमारे सबसे निकट के उपकारी अरिहंत ही है। हमको मार्ग दिखाने वाले भी यही है। अरे, विश्व में सिद्धपद है ऐसा कहने वाले कौन है? अरिहंत के अतिरिक्त यह कौन समझाता है? वैसे तो मनुष्य धर्म से ही तिरता है! फिर भी हम देव, गुरु और धर्म में देव को अधिक उपकारी मानते हैं। क्योंकि जैसे किसी सेठ ने संकटग्रस्त किसी व्यक्ति को १००

रूपये दिये। उसके कारण उसका संकटकाल टल गया। उस समय वह बोलेगा कि सेठ ने मुझे बचा लिया। उसके उपकार को वह नहीं भूलता है। वास्तव में तो उसको रूपयों ने ही बचाया था न! यदि सेठ न होता तो रूपये कहाँ से मिलते? इसी प्रकार धर्म से भव समुद्र को पार किया जा सकता है यह सच्ची बात है, किन्तु धर्म को बताने वाले कौन है? अरिहंत परमात्मा ही है न! जो ये नहीं मिले होते तो हमारे हाथ में धर्म आता ही नहीं। धर्म तो मियांभाई भी करते हैं, पर कैसा? डूबाने वाला ही न! अतः मनुष्य शान्त चित्त से विचार करे तो उसको अरिहंत परमात्मा की तरफ बहुमान जगे बिना नहीं रहेगा। गुरु भी अरिहंत द्वारा धर्म स्थापना के बाद ही इसमें जुड़े हैं न! गौतम स्वामी भले ही शासन को चलाने वाले कहे जाते हैं किन्तु जो भगवान महावीर न मिले होते तो होंम-हवन ही करते होते न? ऐसे गुरु की भेंट देने वाला कौन? अरिहंत ही है न! कई सन्त ध्यान की मस्ती में डूबे हुए रहते है? प्रभु मिले तभी तो यह ध्यान की मस्ती है न! दूसरे जन्मान्तर में जाएंगे तो इनमें से एक वस्तु भी साथ आने वाली है क्या? साथ आने वाला तो केवल भगवान का स्मरण ही है न! इस प्रकार महान् में महान् उपकारी केन्द्र स्थान में रहे हुए अरिहंत परमात्मा हैं। इसलिए वास्तविक रूप से कृतज्ञ मनुष्य दिन-रात अरिहंत को भूलता नहीं है। जहाँ-जहाँ चाहे उस सबको बताने वाले अरिहंत हैं, उनको कैसे भूल सकते हैं! जब जीवन में अरिहंत का अग्रगण्य स्थान आता है, फिर उसके घर में देहरासर नहीं होते हुए भी घर में देहरासर आ जाता है।

उत्सर्पिणी काल के छः आरे और अवसर्पिणी काल के छः आरे हैं.... इस प्रकार बारह आरों का कालचक्र निरन्तर चलता रहता है। उत्सर्पिणी काल का पहला, दूसरा और तीसरा आरा अवसर्पिणी काल का चौथा, पांचवाँ, और छट्ठा आरा समान होता है। पहले आरे में सुख ही सुख होता है। पृथ्वी की मिट्टी में शक्कर से भी बढ़कर मीठापन होता है।

उस आरे में रहे हुए जीव कालधर्म को प्राप्त करके नियम से स्वर्ग में ही जाते हैं। वे अत्यन्त सरल स्वभाव के होते हैं। उत्सर्पिणी काल का पहला आरा चार कोडाकोडी सागरोपम वर्ष का होता है। दूसरा आरा तीन कोडाकोडी सागरोपम का तथा तीसरा आरा दो कोडाकोडी सागरोपम वर्ष का होता है। इसी प्रकार अवसर्पिणी काल का चौथा, पांचवाँ और छट्ठा आरा नव कोडाकोडी सागरोपम वर्ष का होता है। कुल अट्ठारह कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति में धर्म होता ही नहीं है। तीसरे आरे का अधिकांश भाग व्यतीत होने पर अरिहंत भगवान का जन्म होता है और वे धर्म की स्थापना करते है। अरिहंत भगवान सूर्य के समान हैं। यह सूर्य अट्ठारह कोडाकोडी सागरोपम के अंधकार को नष्ट करता है।

सिद्धचक्र के केन्द्र स्थान में अरिहंत परमात्मा हैं और अरिहंत परमात्मा के केन्द्र स्थान में जगत् के कल्याण की उच्च कोटि की भावना है। उस भावना से तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन करते हैं। इस नामकर्म के प्रभाव से भगवान् में ऐसी शक्ति आ जाती है कि उससे वे तीर्थ की स्थापना करते हैं। स्थापना करना, यह बहुत बड़ा और कठिनतम कार्य है। रास्ता होने पर उस मार्ग पर चलने वाले हजारो मनुष्य होते हैं। किन्तु रास्ता बनाना यह कठिनतम है। तीर्थ की स्थापना के बाद हजारों लाखों लोग तिरते हैं। आज हजारों मनुष्य घर छोड़ते हैं, मौज-मस्ती छोड़ते हैं, किसके नाम पर? भगवान महावीर के नाम पर ही न! अरे, भगवान का जन्म हुआ यह सुनने के लिए करोड़ो रूपये खर्च किए जाते है। कैसा विलक्षण व्यक्तित्व होगा कि एक व्यक्ति के नाम से हजारों लोग तिर गये। कैसा विलक्षण पुण्य होगा! मासक्षमण के पारणे पर मासक्षमण। उसमें भी केवल एक ही चिन्तन रहता है कि समस्त जीवों को मैं सुखी कैसे करूँ? दुःख में से जीव कैसे मुक्ति प्राप्त करें! शासन प्रेमी बने! सबका कल्याण कैसे हो? यही एक चिन्तन धारा। भगवान के रोम-रोम में कल्याण की भावना रही हुई है। इस भावना में से ही ऐसा विलक्षण

कोटि का पुण्य उपार्जन होता है। हमारे रोम-रोम में स्वार्थ की भावना भरी हुई है। भगवान के रोम-रोम में परोपकार की भावना भरी हुई है। इसीलिए भगवान परार्थव्यसनी कहलाते हैं।

विचारधारा का पुण्य

हमारी विचारधारा कितनी कमजोर है। एक संघ निकालने पर भी चाँदी के फ्रेम वाली सम्मानपत्र की आशा करते हैं। कितनी तुच्छता है? इसके स्थान पर ऐसा विचार करें कि इस मानपत्र के लायक मैं हूँ क्या? मेरे ऊपर कृपा कर इस संघ में सम्मिलित होकर मानव-मेदिनी ने मेरी लक्ष्मी को सफल बनाने का अवसर दिया है। ऐसी उच्च विचारधारा होनी चाहिए। धनसार्थवाह के भव में भगवान आदिनाथ सार्थ लेकर जाते है। मन में एक ही विचारणा है कि मैं एकाकी सुखी होऊं यह नहीं चल सकता। मेरे ग्राम के सब लोग सुखी होने चाहिए। इसीलिए वह सार्थ ले जाने के पूर्व घोषणा कराते हैं कि जिनको साथ चलना हो वे चलें, सारी सुविधाएं मेरी तरफ से प्राप्त होंगी.... बहुत से लोग सार्थवाह के साथ चलने के लिए तैयार हुए। उनके साथ आचार्य महाराज भी हैं। एक समय रात्रि में धनसार्थवाह जग जाता है, वहाँ उसके कान में वार्तालाप की शब्दध्वनि आती है। दो चौकीदार आपस में बातें करते हुए कहते हैं कि हमारे सेठ कितने उदार हैं! कितने दयालु है! कितने परोपकारी है! चौकीदारों के द्वारा की हुई अपनी प्रशंसा सुनकर सेठ मन में फूलते/हर्षित नहीं होते हैं किन्तु वे विचार करते हैं - वस्तुत: क्या इस प्रशंसा के लायक मैं हूँ? विचारते हुए तत्काल ही उनको आचार्य महाराज स्मरण में आते हैं.... अरे, इन आचार्य महाराज को तो मैं भूल ही गया। उन्होंने अपनी व्यवस्था किस प्रकार की होगी। स्वयं की भूल का गहरा पश्चाताप होता है। पश्चाताप की अग्नि इतनी अधिक प्रज्वलित बन जाती है कि प्रात:काल होते ही साधुमहाराज की ओर नंगे पैर ही दौड़ जाते है। आचार्य महाराज के चरणों में सिर रखकर माफी मांगते है.... लाभ देने के लिए आमंत्रित

करते हैं। सेठ का भावोल्लास देखकर मुनि भगवन्त वहोरने के लिए पधारते हैं। प्रथम पहर में तम्बू में कुछ भी तैयार नहीं मिलता है। क्या दान में दूं/वहोराऊं। घी के कलश नजर आते हैं। पूरा कलश उठाकर पात्र में उंढेल देते हैं। शास्त्रकार कहते हैं कि उस समय उनकी ऐसी उच्च भावधारा चलती है कि वे उसी समय बोधिबीज/सम्यक्त्व की प्राप्ति करते हैं। सेठ अन्य किसी प्रकार का धर्म नहीं जानते थे। और आचरण भी नहीं किया था। बस विशुद्ध भाव से ही उन्होंने तीर्थंकर नामकर्म का बन्धन किया। आज तक हम स्वार्थी विचारधारा में ही घूमे हैं। सगा भाई भी यदि धनवान बन जाए तो हमें प्रसन्नता नहीं होती। दुकान पर बैठकर हम यही सोचते है कि दूसरे को कैसे लूटा जाए? ऐसी निम्न स्तर की विचारधारा चलती है। विचारधारा का पुण्य, भगवान आदिनाथ का जीवन और भगवान महावीर का जीवन देखें तो ध्यान में आएगा।

हम दूसरे की भलाई न कर सके तो न सही, किन्तु दूसरे की बुराई न करे ऐसा नियम तो लेना ही चाहिए। दूसरे की बुराई के ज्यों ही विचार आएं त्यों ही मन को उपालम्ब देना चाहिए, ऐसा विचार मुझे क्यों आया? यह तो अस्पृश्य विचार है। चण्डाल के समान है। हम चण्डाल से कितने दूर भागते हैं, वैसे ही खराब विचारों से दूर भागना चाहिए। हमारे गुरुदेव बापजी महाराज के क्रोध में भी भलाई के शब्द निकलते थे। कभी किसी शिष्य पर क्रोधित होते तो उसे क्या कहते - 'तेरा भला हो....' रोम-रोम में दूसरे की भलाई की भावना भरी हुई हो तभी ऐसे उद्‌गार निकलते हैं। सारे विश्व के लोगों की हम सहायता नहीं कर सकते तो कोई बात नहीं, किन्तु हमारी दुकान में सामग्री लेने के लिए आये हुए ग्राहक को ऊँचा नीचा समझाकर ठगना नहीं चाहिए। यह तो सम्भव है न? क्या ठगने से ही तुम धनवान बन जाओगे? यह हमारी भ्रांत धारणा है। लक्ष्मी तो पुण्याधीन है। आज इतना मात्र तो करिए कि दूसरे का बुरा हो ऐसा विचार मुझे नहीं करना है, करना ही नहीं अपितु बोलना भी नहीं है।

धर्म केवल क्रियाकांड नहीं है। शरीर हो किन्तु उसमें यदि प्राणों का संचारण न हो तो.... हम अच्छे विचार नहीं कर सकते, अच्छा बोल नहीं सकते और अच्छा काम नहीं कर सकते.... मैं किसलिए घिसता रहूँ? चन्दन घिसा जाता है उसके बदले में शीतलता और सुगन्ध देता है इसीलिए वह भगवान के मस्तक पर चढ़ाया जाता है। तीर्थंकर स्वयं को घिसते हैं इसीलिए उच्चतम पद को प्राप्त करते हैं। उन्होंने शासन की स्थापना क्या स्वयं के लिए की है? हम दूसरे को घिसने के लिए तैयार रहते हैं किन्तु स्वयं को घिसना खुद को अच्छा नहीं लगता। भला करने की भावना से विचारों में सुगन्ध बढ़ती है और दूसरे का बिगाड़ करने की भावना से विचारों में दुर्गन्ध बढ़ती है।

जिनके पाँच कल्याणकों के दिनों में नरक में भी प्रकाश छा जाता है। जगत् के कल्याण की भावना से भरा हुआ एक ज्योति स्वरूप आत्मा पृथ्वी पर अवतरण लेता है। उस समय जहाँ सर्वदा ही प्रत्येक काल में अंधकार ही अंधकार छाया हुआ हो, जहाँ निरन्तर दुःख ही दुःख हो वहाँ क्षणभर के लिए शान्ति का वातावरण फैल जाता है। कितना विलक्षण पुण्य है।

संसार एक समुद्र है

भगवान् तीर्थंकर हैं। **तीर्थ अर्थात् किनारा या घाट....** तालाब में, नदियों में, सरावरों में, सभी स्थानों पर उनके किनारे होते हैं, घाट होते हैं। किनारे के बिना हम इच्छानुसार तालाब इत्यादि में उतरने की इच्छा करें तो डूब ही जाएंगे। उसी प्रकार संसार रूपी समुद्र को तिरने के लिए यह तीर्थ एक किनारा है, घाट है। **तीर्यतेऽनेन इति तीर्थम्।** जो तारता है वह तीर्थ कहलाता है। संसार को समुद्र की उपमा क्यो दी जाती है। समुद्र में तो पानी होता है। संसार भी जन्म, जरा, मृत्यु रूपी जल से पूर्ण भरा हुआ है। यह पानी भी समुद्र के समान अत्यन्त गहरा है। उसको पार करना सहज नहीं है, क्योंकि हमारे पास सच्चा दर्शन नहीं है। हमें विपरीत बुद्धि ही मिली है। महापुरुष जिसका त्याग करने के लिए कहते हैं, उसी

को हमने मजबूती के साथ पकड़ रखा है। जब तक हमें यह ज्ञान नहीं होगा कि यह सब कुछ मिथ्या है तब तक हम इस संसार में से बाहर नहीं निकल सकते। कदाचित् हमें सम्यक दृष्टि भी प्राप्त हो जाए फिर भी हम उसे स्वीकार नहीं करते। श्रावक को नियमित रूप से नवकारसी और चउविहार करना चाहिए। हम यह जानते हैं फिर भी यदि हमें कहा जाए कि भाई इतना नियम ले लीजिए। सारा दिन आपको खाने की छूट है किन्तु सूर्योदय के पूर्व और सूर्यास्त के बाद त्याग करिए। क्या हम इसके लिए तैयार होते है? यह व्रतों का बन्धन हमें रूचिकर नहीं लगता है। अविरती में ही हमें रस है। बहुत से लोग कहते हैं - साहब! हम करेंगे किन्तु नियम नहीं लेंगे। आवारा ढोरों/पशुओं के समान भटकते हुए खाते रहते हो। तुम्हारे भले के लिए तुम्हे कहते हैं - हे भाई! मसाला/गुटका न खाओ। क्या हम स्वीकार करते हैं? **नाथ विनानो बळद अने नियम विनानो मरद** दोनों ही किसी काम के नहीं होते हैं। नाथ बिना का बैल होगा तो वह सांड के समान ही घूमता रहेगा न! प्रतिक्रमण के प्रारम्भ में उनको आने दो ऐसा कहकर प्रतिक्षा करते हैं और पूर्ण होने की क्रिया करते हुए कायोत्सर्ग में किसी को कुछ अधिक समय लग जाए तो झटपट हम क्रिया पूर्ण करके खड़े हो जाते है। मानो जेल में से छुटे हो, छुटने के जैसा उद्‌गार निकालते हैं। क्योंकि हमें अविरति ही अधिक अच्छी लगती है। ग्रहण करते हुए प्रतिक्षा करेंगे किन्तु पारते समय उनमें ऐसी अखुलाहट होगी की क्रिया पूर्ण कर शीघ्र ही घर भागू.... जब सच्ची समझदारी आएगी तब उसको संसार छोड़ते समय ऐसा लगेगा कि मैं छुट गया। हमें सामान्य नियम ग्रहण करना भी अच्छा नहीं लगता है। झूठ नहीं बोलना चाहिए, हिंसा नहीं करनी चाहिए, चोरी नहीं करनी चाहिए, विश्वासघात नहीं करना चाहिए, कपट से किसी को ठगना नहीं चाहिए, यह सब तो जीवन में स्वाभाविक रूप से होना ही चाहिए। किन्तु होता इसके विपरीत है। मिथ्यादृष्टि के कारण अथवा अविरती के कारण संसार पार करना

हमारे लिए बहुत कठिन बन गया है। मिथ्या का आवरण इतना अधिक प्रगाढ़ है जिसके कारण हम हमारे में रहे हुए क्रोध और मान की भूख को देख नहीं पाते। **नाम और मान के पीछे यह दुनिया पागल बनी हुई है।** समुद्र के भीतर चार पाताल कलश होते हैं। उनमें वायु भर जाने से समुद्र में एकदम तूफान आता है। उसी प्रकार इस संसार रूपी समुद्र में क्रोध, मान, माया और लोभ रूपी चार पाताल कलश हैं। उसमें से जब क्रोध आदि का प्रचण्ड उछाल आता है तो अच्छे-अच्छे तपस्वियों ओर त्यागियों को भी वह दूर फेंक देता है। गीता में भी कृष्ण ने कहा है - **त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः। कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्॥** नरक के तीन दरवाजे हैं - काम, क्रोध और लोभ। आज अधिकांशतः अनर्थों का आवीर्भाव इन तीन कारणों से ही होता है।

कामवासना के कारण ही पाप का मार्ग

अभी कुछ दिन पहले ही समाचार पत्र में एक घटना छपी थी। तीन जिगरी मित्र थे। एक दूसरे को मिले बिना चल नहीं सकता था। ऐसा कह सकते हैं कि जीव एक था और उनके शरीर अलग-अलग। ऐसी मित्राचारी थी। एक समय एक मित्र की बहन के साथ दूसरे मित्र की आँखें लड़ गई। धीरे-धीरे उन दोनों के बीच में प्रगाढ़ प्रेम पनपता गया। दूसरे मित्र के साथ भी उसके सम्बन्ध बने। स्त्री एक और उसके चाहने वाले दो बन गए। एक दिन बात-बात में एक मित्र ने कहा कि मुझे तुम्हारी बहन के साथ प्रेम हो गया है। तुम ऐसी व्यवस्था करो कि हम दोनों का विवाह हो जाए। उसी समय दूसरा मित्र बोला कि इसकी बहन के साथ तो मेरा प्रेम है। उसके साथ तो विवाह मुझे ही करना है। दोनों मित्रों के बीच में विवाद चला। कुछ दिन बाद पहले मित्र ने दूसरे मित्र को अमूक स्थान पर मिलने के लिए बुलाया। मित्रता के कारण सरल स्वभाव से वह वहाँ मिलने गया। तत्काल ही तीक्ष्ण शस्त्रों से उसका खून कर दिया। किसके कारण से? कामवासना के कारण ही हुआ न! सम्बन्ध

कैसे स्वार्थ पूर्ण और क्षणिक होते हैं। पृथ्वीराज चौहान संयुक्ता नाम की स्त्री के मोह में डूबकर इस भारत वर्ष को हार गया।

समुद्र में बड़े-बड़े आवर्त्त (चक्रभ्रमरी) होते हैं। जिसके अन्दर कोई भी यान या नौका आ जाए तो डूब ही जाती है। उसी प्रकार इस संसार रूपी समुद्र में भी बड़े-बड़े आवर्त्त हैं। मोह के चक्र में जो फंस जाता है, बरबाद/नष्ट हो जाता है। ब्रिटिश साम्राज्य का कोई राजा एक विधवा के चक्कर में फंस गया। ब्रिटिश जनता ने कहा - या तो सत्ता छोड़िये अथवा विधवा को छोड़िए? मोह के चक्र में वह ऐसा फंस गया कि उसने ब्रिटिश राज्य की सत्ता छोड़ दी। सत्ता से वह नीचे उतर गया। ब्रिटिश राज्य चारों तरफ फैला हुआ था। कहा जाता था कि इस राज्य में सूर्य कब अस्त होता है कह नहीं सकते। ऐसे समर्थ राज्य का स्वामी होते हुए भी वह विधवा के मोह में फंस गया। संसार की समुद्र के साथ ही तुलना की गई है। समुद्र को पार करना हो तो किनारा चाहिए ही। संसार के समुद्र को पार करने के लिए अरिहंत परमात्मा तीर्थ की स्थापना करते हैं इसीलिए वे तीर्थंकर कहलाते हैं।

तीर्थस्थान का महत्व किस लिए है? क्योंकि तीर्थस्थान अधिकांशतः सद्विचारों से ही परिपूर्ण होते हैं। मन्दिर में जितने समय बैठते हैं उतने समय तक दूषित विचारों से दूर रहते हैं। दादा के दर्शन करने के लिए जाते हैं, तो प्रायः हृदय में सुविचार ही आते हैं। क्योंकि वातावरण का प्रभाव है। किसी वेश्या के स्थान के पास से गुजरते हैं तो दूषित परमाणुओं के व्याप्त होने के कारण हमारे शुभ विचार भी अशुभ बन जाते हैं। स्वामी विवेकानन्द के लिए कहा जाता है कि मार्ग में चलते हुए बीच में सिनेमाघर आ जाता तो वे उस मार्ग को छोड़कर दूसरे मार्ग पर चले जाते। सिनेमाघर की सीमा समाप्त होने पर वे उसी मार्ग पर आ जाते।

मातृ-पितृ भक्त श्रवण

मातृ-पितृ भक्त श्रवण के जीवन में भी विचारों से एक प्रसंग बना था। श्रवण माता-पिता को कावड़ में बिठाकर तीर्थ स्थानों की यात्रा

करवा रहा था। महाराष्ट्र में जाता है वहाँ कावेरी तीर्थ स्थान है। लोगों को पूछता है। कावेरी कहाँ आई है? कावड़ में माता-पिता को बिठाकर ले जाते हुए श्रवण को लोग कहते हैं - कावेरी-कावेरी क्या करते हो? तुम स्वयं ही कावेरी रूप हो। तीर्थ से तुम नहीं, तुमसे तीर्थ पवित्र होगा। तुम्हारी माता-पिता की ओर अजोड़ भक्ति ही तीर्थ स्वरूप है। आज तो यह सबकुछ विलुप्त हो रहा है। हमारे देश में तो कुछ है भी किन्तु अमेरिका आदि देशों में तो १६ वर्ष की अवस्था होते ही पुत्र माता-पिता को छोड़ देता है, उसके बाद तो किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रहता है।

माता-पिता की भक्ति यह पुण्यबन्ध का कारण है। श्रवण माता-पिता को लेकर युद्ध स्थल के मैदान से जाता है। जिस स्थान पर अनेक युद्ध और संहार हुए है। जहाँ मारो-काटो के विचारों के पुद्‌गल ही चारो तरफ फैले हुए हैं। वहाँ से निकलते हुए। मातृभक्त श्रवण के विचार एकदम पलटे। उसको लगा कि यह बोझ जिन्दगी भर मुझे ही उठाना है क्या? ऐसे तो मैं मर जाऊँगा। यदि ये माँ-बाप मरण को प्राप्त हो जाए तो मेरा छुटकारा हो जाए। देखो, विचारों का कैसा प्रभाव हुआ? इन्हीं विचारों में वह श्रवण उस स्थान को पार कर गया। उसी समय उसके विचारों ने पलटा खाया। अरे, यह तूने क्या विचार किया? माता-पिता का मेरे ऊपर कितना उपकार है। सारे विश्व में विचार के परमाणु फैले हुए हैं। बहुत से लोगों के विचार बहुत ही उज्ज्वल होते हैं और उन विचारों के कारण उनके मुख पर तेजस्विता की आभा फैली हुई नजर आती है। जबकि अनेक मनुष्यों के विचार दूषित होते हैं तो उनके मुख पर मानों काली स्याही लगा दी हो, वैसा ही उनका मुरझा हुआ काला चेहरा नजर आता है। विचारों में एक अलौकिक शक्ति होती है। आरोग्य का विचार करोंगे तो रोग रहित हो जाओगे और यदि तुम प्रतिसमय रुग्णता के विचार करोगे तो अच्छे होते हुए भी बीमार हो जाओगे।

अरिहंत का नाम

आसोज सुदि ७

मानवता बड़ा धर्म है

नवपद में मुख्य स्थान पर अरिहंत हैं। मनुष्य महान् नहीं किन्तु मनुष्य की भावना महान है। एक-एक तीर्थंकर परमात्माओं के जीवन देखोंगे तो तुम्हें उनकी उच्च भावना का ख्याल आएगा। भगवान नेमिनाथ पूर्व जन्म में पति-पत्नी के रूप में जंगल में जा रहे थे। वहाँ जंगल में किसी गुफा में कोई महात्मा कायोत्सर्ग ध्यान में रहे हुए थे। महात्मा एकदम गिर पड़े.... गिरने की आवाज उन दोनों ने सुनी। आवाज सुनकर दोनों गुफा में दौड़कर गये। महात्मा को बिठाया, उनकी सेवा शुश्रूषा की। बस, इस छोटे से प्रसंग मात्र से उन्होंने बोधिबीज/सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया। दूसरे को किस प्रकार सहायक रूप हो सकते हैं। यही उनके रक्त के अणु-अणु में व्याप्त था। हम तो यदि मनुष्य अन्तिम श्वास ले रहा हो तो भी उसके सामने खड़े नहीं होते है.... आज देखते हैं कि तुम किसी बस में बैठे हो मार्ग में कोई दुर्घटना हो जाती है। कितने ही मनुष्य मर जाते हैं। तुम्हारी बस को वहाँ कुछ देर रुकना पड़े और तुम्हें जल्दी पहुँचने की उतावल भी है। उस समय तुम क्या विचार करते हो? सामने कितने ही मनुष्य मरे पड़े हों तब भी तुम्हारा हृदय तनिक भी कम्पित होता है क्या.... नहीं, तुम्हें तो तुम्हारे काम में देरी हो रही है इसकी ही चिन्ता रहती है। जबकि ऐसे महापुरुषों के रग-रग में दूसरों के दु:ख को दूर करने की अभिलाषा बनी रहती है। ९ वें भव में वे ही पति-पत्नी, नेमिनाथ-राजुल बनते हैं। अच्छे काम में दिया हुआ साथ मनुष्य के लिए कितना सहयोगी होता है। संसार के सारे सम्बन्ध क्षणिक होते हैं। एक जन्म के सम्बन्ध भी मृत्यु तक नहीं रहते हैं। तो अनेक जन्मों के सम्बन्ध कैसे रह सकते हैं? पति-पत्नी, माता-पुत्र. और पिता-पुत्र ये सम्बन्ध प्राय: करके जन्म के अन्त

तक भी नहीं रह पाते हैं। एक भाई मेरे पास आए.... दादा की हर पूनम को यात्रा करता है। लाखों रूपये धर्म में खर्च भी करता है, किन्तु वर्षों से पति-पत्नी के बीच में बोलचाल नहीं है। दोनों साथ रहते हैं, किन्तु बोलते नहीं है। उनके जीवन में तनिक भी उमंग या उत्साह नहीं है। उनके जीवन में कैसी गांठे पड़ गई होंगी इनको धर्म छू गया है, कैसे कह सकते हैं? दो पुत्रों को अपनी सम्पत्ति का बंटवारा कर दिया। इसमें किसी को कुछ कम-ज्यादा हुआ तो, ऐसी स्थिति में तत्काल ही माँ-बाप पर अप्रीति पैदा हो गई। माँ-बाप बेकार हैं! अरे भाई, तुझे छोटे से हाथी जैसा बड़ा किसने बनाया? माता ने ही तुझे बोलना सिखाया, खाना-पीना सिखाया, तेरे मल-मूत्र को साफ किया, इन उपकारों को क्या तू भूल गया। एक चीज तुझे कम मिली इसलिए क्या माँ-बाप बेकार हो गये। इनके उपकारों की तुलना तो कर। हमारे सम्बन्धों में केवल स्वार्थ की दुर्गन्ध ही भभक रही है। तीर्थंकर परमात्मा तो मानवता से ही बनते हैं। उन्होंने तो धर्म नाम की कोई चीज सुनी भी नहीं है। केवल परोपकार का लक्ष्य ही उनके जीवन में होता है। दीन-दुःखी को देखते ही दौड़ते हैं। आज तो दीन-दुःखी को देखकर हम मुहँ फेर लेते हैं। '**व्यापार बढ़ाओ और धन कमाओ।**' इस सूत्र को ही हम आज लेकर बैठे हैं। उसके स्थान पर '**विचारों को सुधारो और पुण्य को बढ़ाओ**' इसको ग्रहण करने की आवश्यकता है।

जगत् में सभी प्रकार के पुद्‌गल चारों तरफ फैले हुए हैं। अच्छे और बुरे। जैसे ठण्ड की ऋतु में ठण्ड के पुद्‌गल समस्त वातावरण में फैल जाते हैं और गर्मी में गर्मी के पुद्‌गल चारों तरफ फैल जाते हैं। कश्मीर यहां से चाहे जितना योजन दूर हो यदि वहाँ हिमवर्षा होती है, तो उसके परमाणु यहाँ तक पहुँच आते हैं। उस कारण से गर्मी की ऋतु में भी अचानक ठण्ड लगने लगती है। उसी प्रकार मनोवर्गणा के पुद्‌गल चारों तरफ फैले हुए हैं। हमारे अन्तःकरण के जैसे विचार होंगे वैसे ही पुद्‌गल आकर्षित होकर हमारे पास आ जाएंगे। पर्युषण में तप सम्बन्धी विचारों के पुद्‌गल चारों तरफ फैले हुए होते हैं। उस कारण से जिसकी कल्पना

भी नहीं कर सकते वैसी घोर तपश्चर्याएं होती हैं। जैसे विचार होते हैं वैसे ही पुद्गलों को मन खेंच लेता है।

इस कलयुग में अस्पताल को देखों.... कैसे परमाणु फैले हुए होते हैं? बहुत से डॉक्टर ऐसे निर्दय होते हैं कि बीमार को देखकर उसको कैसे लूट सकुं यही भावना रखते हैं - अरे, किसी के जवान लड़के की मौत हो गई हो, सारे स्वजन ढार-ढार कर रो रहे हों, उस समय ऐसे निर्दयी डॉक्टर कहते हैं कि पहले हमारे बिल का चुका दो उसके बाद ही तुम इस मृत देह को ले जा सकोगे। ऐसे क्रूर परिणामों के पुद्गल वहाँ चारों तरफ व्याप्त होते हैं। ऐसे वातावरण का मनुष्य पर भी शीघ्र ही प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार किसी मन्दिर में जाओ, भक्ति के रस में भावना चल रही हो, तथा सब एक मन होकर तन्मय हो रहे हों वहाँ हमारी भावना कैसी बन जाती है। कुछ समय के लिए तो हम भी प्रभु में डूब जाते हैं। **'मनुष्य का सबसे बड़ा धन उसका मन है।'** अच्छे से अच्छे विचार करके मोक्ष में भी जा सकते हैं और निम्न स्तरों के विचारों से नरक में भी जा सकते हैं।

हमारे जीवन में दो वस्तुओं की कमी है, एक भावना और दूसरी साधना। आज मनुष्य का मन बहुत ही संकुचित बन गया है। दूसरे का भला हो इसके लिए सोचने को भी हम तैयार नहीं है। भगवान की परकल्याण की भावना है, अतः उसकी प्रतिध्वनि भी वैसी ही पड़ती है।

विचारों की प्रतिध्वनि - चन्दन का व्यापारी

एक नगर में चन्दन का व्यापारी रहता था। चारों ओर उसकी ख्याति फैली हुई थी। राजा भी समय-समय पर उसके वहाँ से चन्दन खरीदता था। उसका व्यापार अच्छा चल रहा था। उसने अपनी पूंजी चन्दन में लगा दी थी। चन्दन खरीदकर उसने भण्डारों को भर दिया था। ऐसा ख्यातिमान व्यापारी होने के कारण उसकी राजसभा में भी राजा के साथ बैठक थी। चन्दन का मूल्य भी अधिक था.... प्रारम्भ में तो उसका

व्यापार अच्छा चला किन्तु चन्दन का उपयोग कितना....? इस कारण से धीरे-धीरे उसका व्यापार बन्द होने लगा। उसने सारी पूंजी तो इसमें लगा दी थी। चन्दन का उपयोग नहीं होता था इस कारण से व्यापारी के मन में प्रश्न हुआ। उसके मन में एक विचार आया कि यदि राजकुल में किसी व्यक्ति का मरण हो जाए तो उसकी चिता जलाने के लिए मेरा चन्दन बिक सकता है। मन में प्रतिदिन इस प्रकार के दुष्ट विचार चलते रहते थे। राजसभा में जाता है, उसके चारों तरफ दुष्ट विचारों के परमाणु फैले हुए हैं। देखो, विचार की प्रतिध्वनि कैसी होती है? यकायक राजा के मन में भी उसके लिए द्वेष के विचार आए। उसके सामने नजर उठाना भी राजा को रूचिकर नहीं लगता था। राजसभा में मत आओ, ऐसा कहने की इच्छा होती थी, किन्तु बिना कारण ही सम्बन्ध कैसे बिगाड़े? कभी तो इसको मार डालूं ऐसे मन में विचार आते थे। राजा ने अपने हृदय के विचार मन्त्री को बतलाए। मन्त्री ने विचार किया कि यकायक ऐसे विचार कैसे आए? व्यापारी का कोई अपराध नहीं फिर भी राजा के मन में ऐसे दुष्ट विचार आते हैं तो क्यों? मन्त्री हमेशा चतुर और विचक्षण होते हैं। वह व्यापारी के यहाँ गया और पूछा - व्यापार कैसा चल रहा है? व्यापारी ने भी बिना छिपाए हुए अपनी सारी स्थिति मन्त्री के समक्ष रख दी। मन्त्री समझ गया कि राजा को इसके प्रति खराब विचार क्यों आए? इस व्यापारी के मन में खराब विचार चल रहे हैं इसलिए राजा के मन में भी ऐसे विचार उत्पन्न हुए। आत्मा यह एक दर्पण है। उसमें उसका प्रतिबिम्ब तुरन्त पड़ता है। तुम्हारे विचारों की प्रतिध्वनि सामने के हृदय में भी पड़े बिना नहीं रहेगी। मन्त्री राजा के पास पहुँचा है और कहता है कि राजन्, आप तो महाराजाधिराज हैं। दुनिया में सबके यहाँ खाना, कोयला एवं लकड़ी से ही बनता है। आप एक विशिष्ट व्यक्ति हैं। अतः आपके यहाँ चन्दन की लकड़ी से ही रसोई बननी चाहिए। राजा ने तत्काल ही इस बात को स्वीकार कर लिया। चन्दन के व्यापारी के वहाँ से इकट्ठा ही चन्दन खरीद लिया। व्यापार अच्छी तरह से चलने लगा।

अब चन्दन के व्यापारी के विचार भी बदले। राजा बहुत काल तक जीवित रहे तो अच्छा! व्यापारी के विचार बदले तो राजा के भी विचार बदले। राजा का उस पर यकायक प्रेम भाव उमड़ा। राजसभा में उसकी उपस्थिति अच्छी लगने लगी.... इसलिए राजा ने मन्त्री से पूछा - ऐसा कैसे हो गया? उसके प्रति मेरे विचार कैसे बदल गये। मन्त्री ने सत्यवस्तु स्थिति राजा को बता दी। विचारों का एक प्रबल साम्राज्य है। हजारों मील दूर बैठा हुआ आदमी भी एक दूसरे के आकर्षण से अचानक आकर मिलता है। चेतना में कोई अन्तर नहीं होगा। उसी प्रकार काल और क्षेत्र में भी अन्तर नहीं होता। भगवान और हमारे बीच में क्षेत्र और काल का कितना बड़ा अन्तर है, अन्तर होते हुए भी इसका हम प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं। चेतना सर्वव्यापी है। हम किसी को बहुत याद करते हैं, तो वह मनुष्य हमको जल्दी से आकर मिल जाता है। हम भले ही दूर हों तब भी उसके मन में मिलने की प्रतिध्वनि पड़ती ही है।

अरिहंत शब्द भी महान् है

महापुरुष कहते हैं कि अरिहंत तो महान् है ही, किन्तु अरिहंत का नाम भी महान है। भगवान जब विचरण कर रहे होंगे तब उनके दर्शन और वाणी से लोग तिर गये होंगे। किन्तु आज हम उनके नाम से ही तिर जाते हैं। किसी के अन्तिम समय में लोग कहते हैं कि इसको नवकार मन्त्र सुनाओ.... भगवान के नाम का स्मरण कराओ.... उनके नाम से ही सद्गति होगी। नाम में भी कितनी शक्ति होगी? नरसिंह मेहता ने कहा है कि '**रटण कर रटण कर कठण कलिकालमां दाम बेसे नहीं काम सरशे**' अर्थात बिना पैसे ही स्वयं का काम सुधर जाता है, ऐसी महान शक्ति प्रभु के नाम में है। 'नमो अरिहंताणं' इसका जाप करते-करते 'ये केवल अक्षर मात्र हैं ऐसा न समझें अपितु ये अक्षर ही साक्षात् परमात्मा हैं।' **पदमयी देवता**! ऐसा समझकर स्मरण करो। उपासना में देश और काल का अन्तर नहीं होता। जाप करते-करते ऐसी अनुभूति होनी चाहिए कि भगवान मेरे चारों ओर हैं। मेरे साथ ही हैं, मुझे क्या चिन्ता। ऐसी

निष्ठापूर्वक किया हुआ प्रभु का नाम स्मरण कैसे नहीं तारेगा? मराठी में एक भजन है - **जेथे मीं जासी तेथे तुं माझा सांगाथी**। अर्थात् मैं जहाँ जाऊँ वहाँ तुम मेरे साथ रहना। भगवान को हम साथी की तरह मानें यही जीवन की बड़ी सिद्धि है। भगवान् जैसे भगवान् अपने साथी हों तो दूसरे किसी की भी आवश्यकता क्यों हो? पुण्य को साथी मानते हुए परमात्मा को भी साथी मानो। भगवान् को साथी मानने से बहुत से बुरे काम अपने आप ही रुक जाते हैं। मन्दिर में जाते हैं तो किसी भी प्रकार का दूषित विचार आने पर तत्काल ही मन के भीतर आवाज उठती है - भगवान् तेरा साथी है। भगवान साथ हो तो बुरे विचार कैसे कर सकते हैं? दूषित विचारों से पुण्य भी पाप में बदल जाता है।

भगवान का नामस्मरण परलोक में सद्गति प्रदान करता है और इस लोक में यह सारा जगत् जिसके पीछे पागल हुआ है, वह अर्थ और काम की भी प्राप्ति करा देता है। इस सड़क पर हजारों गाड़ियाँ दौड़ रही है और हजारों मनुष्य दौड़ रहे है, क्या ये भगवान् को प्राप्त करने के लिए दौड़ रहे है? नहीं, अर्थ के लिए ही दौड़ते हैं न! भगवान् के नाम का जाप करने से तुम्हारी तिजोरी में धन आ जाएगा ऐसा मैं नहीं कहता, किन्तु सम्पत्ति और समृद्धि सहजता से प्राप्त हो जाती है। जब भगवान् के नाम का जीवन में स्वाद लगेगा तब सारे रस और स्वाद को भूल जाओगे। फिर भोजन करते-करते भोजन का ठिकाना हो या नहीं तो भी खबर नहीं पड़ती। नमक डाला है या बिना नमक का है? उसकी भी खबर नहीं पड़ती।

व्यथा किस-किस की

हमें धन की व्यथा, परिवार की व्यथा और प्रतिष्ठा की व्यथा आदि व्यथाओं से हम घिरे हुए हैं किन्तु प्रभु नहीं मिले इसकी भी कभी व्यथा होती है? चौबीस घण्टे में प्रभु का भजन क्षण मात्र भी नहीं होता। भजन के बिना जीवन व्यर्थ जा रहा है। कभी ऐसा हृदय में खटकता है क्या? अनेक जन्मों में अनेक वस्तुएं मिलेगी किन्तु प्रभु नहीं मिलेंगे। जब

जीवन में प्रभु नहीं मिलने कि व्यथा उत्पन्न होगी तक उनके नाम में, ध्यान में, एक अलौकिक आनन्द की अनुभूति होगी। एक कहावत है -

सब रसायन हम करी, प्रभु नाम सम न कोय,
रंचक घटमें संचरे, सब तन कंचन होय।

प्रभु नाम की औषधि के समान कोई दूसरी औषधि नहीं है। यह थोड़ा सा भी जीवन में उतर जाए तो जीवन कंचन जैसा बन जाए। जगत में जितने प्रकार के आनंद है वे सब उत्तेजित करने वाले हैं। उत्तेजना समाप्त होने पर वह पूर्णत: अशक्त हो जाता है। हमारा कोई प्रिय व्यक्ति अथवा जिस पर हमने शर्त लगाई हो वह व्यक्ति क्रिकेट में जीत जाए उस समय क्षण मात्र के लिए कितना आनन्द होता है और वहीं यदि दूसरा व्यक्ति जीत जाए तो हमारा आनन्द गायब हो जाता है, खेद में बदल जाता है। ऐसा ही हमारा आनन्द क्षणिक है। जबकि प्रभु के भजन का आनन्द कभी भूला नहीं जा सकता। भोजन में कोई अच्छी वस्तु खाएंगे तो कुछ क्षणों के लिए उसका आनन्द रहता है और उससे जो पेट खराब हो जाए तो क्षण का सुख और मण का दु:ख। जबकि प्रभु के आनन्द में मण का सुख और क्षण का दु:ख। तीर्थंकर परमात्मा सब क्षेत्रों में नहीं होते हैं किन्तु उनका नाम तो होता ही है। देवलोक में रहे हुए देव भी भगवान् के नाम से तिर जाते है! वहाँ भगवान् जाने वाले नहीं है किन्तु उनका नाम तो सभी जगह है।

वीतराग की वाणी और दर्शन

आसोज सुदि ९

दुर्लभ ऐसे मानव भव को तुमने पाया है तो अब सिद्धचक्र की आराधरा अच्छी तरह से कर लो। यह मानव-जन्म परमात्मा को प्राप्त करने के लिए है। पदार्थों को प्राप्त करने के लिए नहीं। मनुष्य होकर जन्म लिया है और सच्चे अर्थ में मानव बनना है। तुम्हारे जीवन में मानवता है या नहीं यह महत्त्व का है। भगवान के रोम-रोम में यह गुण बसा हुआ था। इस गुण के कारण ही जगत् के शुभ परमाणु आकर्षित होकर उनकी तरफ आते थे।

भूखी-प्यासी वृद्धा की कथा

भगवान की वाणी में अपूर्व शक्ति है। भूख और प्यास को भूला दे ऐसी अत्यन्त मधुर होती है। एक कथानक आता है। एक अत्यन्त वृद्ध माता थी, जो आश्रय रहित थी। कोई कमाने वाला नहीं था, इस कारण वह स्वयं एक सेठ के यहाँ लकड़ियों का गठ्ठा देकर भोजन प्राप्त करती थी। एक समय गर्मी के दिन थे। वृद्धा माँ जंगल में लकड़ी लेने के लिए जाती थी। बेचारी अत्यन्त वृद्ध होने के कारण प्रतिदिन की अपेक्षा कुछ कम लकड़ियाँ लेकर सेठ के घर आती है। सिर पर तो आग बरस रही है। वृद्धा माँ पसीने से तर-बतर है। आकर ज्यों ही लकड़ी का गठ्ठा रखती है त्यों ही सेठानी क्रोधित होती है.... आज इतनी ही लकड़ियाँ क्यों? जाओ, दूसरी और लकड़ियाँ लेकर आओ तभी भोजन मिलेगा। धन मनुष्य को अत्यन्त निष्ठुर बना देता है।

दुःखीना दुःखनी वातो सुखी ना जाणी शके,
जो सुखी जाणी शके तो दुःख विश्वमां ना टके।

[दुःखी के दुःख की बात सुखी नही जान सकता। अगर सुखी जान ले तो, दुःख संसार में नहीं टिक सकता] वृद्धा बहुत ही थकी हुई

थी, परन्तु उदरपूर्ति हेतु बेचारी वृद्धा वापस वन में जाती है। जैसे-तैसे करके लकड़ियाँ काटकर बोझ उठाकर वापिस फिरती है। त्यों ही रास्तें में उसके कानों में भगवान् की वाणी का सुमधुर स्वर सुनाई देता है। वाणी में इतनी अधिक शीतलता और मधुरता होती है कि वृद्धा वहीं की वहीं खड़ी रह जाती है। भूख और प्यास की वेदना तथा बोझ को भूल जाती है। शास्त्रकार कहते हैं कि वैसे तो भगवान् की देशना एक प्रहर तक चलती है किन्तु वह देशना छः महीने तक भी चलती रहे तब भी वह वृद्धा इस दशा में एक भी कदम आगे नहीं रख सकती। ऐसी अपूर्व शक्ति महावीर की वाणी में है कि, पापी से पापी व्यक्ति को भी वह क्षण भर में तार देती है। चक्रवर्ती को भी क्षण भर में रङ्क देती है। ऐसी अपूर्व शक्ति कहाँ से आती है? हृदय में रही हुई परकल्याण की भावना में से ही.... और **भगवान् सर्वाभिमुख है।** इस कारण सब जीवों को ऐसा लगता है कि भगवान् मेरे साथ ही बात कर रहे हैं। मुझे ही लक्ष्य करके कह रहे हैं। **हम सर्वविमुख हैं अथवा स्वाभिमुख हैं** इसीलिए हमारी वाणी से कोई प्रभावित नहीं होता। पूर्ण रूप से सर्वाभिमुख न बन सके तो कोई बात नहीं किन्तु हमारे सम्पर्क में आने वाले का तो कल्याण करना ही चाहिए, किन्तु विपरीत गुणों के कारण ही हमारी वाणी मानव हृदय में प्रवेश नहीं करती है। वापिस लौट आती है। जबकि भगवान की वाणी आर-पार उतर जाती है, हृदयंगम हो जाती है।

दर्शन की अपूर्व शक्ति - (पिता-पुत्र की कथा)

भगवान् की वाणी की और उनके नाम की अपूर्व शक्ति हमने देखी है। अब भगवान् के दर्शन में कितनी शक्ति है, यह देखते है। बिना मन के किया हुआ भगवान् का दर्शन भी निष्फल नहीं जाता है। पिता-पुत्र थे। पिता धर्म में श्रद्धा रखने वाला था किन्तु पुत्र नास्तिक था। पिता रोज पुत्र को कहता - पुत्र, भगवान के दर्शन किया कर.... तेरा जन्म सफल हो जाएगा। किन्तु वह लड़का तो आज के कलयुग का था। पिता

को कहता है - पिताजी! यह पत्थर की मूर्ति के दर्शन करने से क्या जन्म सफल हो जाएगा? मुझे तो समय नहीं है। पिता को ये कठोर शब्द वज्र के समान लगते थे, पर क्या करे! वात्सल्य है न! पुत्र का भावी जन्म बिगड़ न जाए ऐसा उस पिता को कुछ करना था। पुत्र का यह जन्म तो सुधारना ही था साथ ही परलोक भी सुधारना था। आज तुम्हें तुम्हारे सन्तान के परलोक की तनिक भी चिन्ता है....! ट्यूशन पर नहीं जाए तो उसे जबरदस्ती भेजते हैं किन्तु पाठशाला नहीं जाए तो कुछ नहीं कहते हैं। पिता पुराने जमाने के अनुभवी थे। उन्होंने एक युक्ति का प्रयोग किया। घर का दरवाजा छोटा बनवाया और दरवाजे के ऊपर/बारसाख पर भगवान की छोटी से मूर्ति बनवाई.... घर के दरवाजे में प्रतिदिन दस बार प्रवेश करने का होता है। जब-जब पुत्र द्वार के भीतर प्रवेश करता है तब-तब उस मूर्ति पर नजर नहीं डालने पर भी दृष्टि पड़ ही जाती है। दरवाजा नीचा है इसीलिए झुककर जाना पड़ता है। जिस वस्तु को हम देखना नहीं चाहते उस वस्तु पर बारम्बार दृष्टि पड़ती है। वर्षों बीत गए। पिता स्वर्गवासी हो गए और पुत्र भी मृत्यु को प्राप्त हुआ। पुत्र मरकर समुद्र में बड़े मच्छे के रूप में उत्पन्न हुआ। कहते हैं कि समुद्र में सभी आकार प्रकार के मत्स्य होते हैं.... प्रतिमा के आकार के भी होते हैं.... अनायास ही मनरहित किए हुए भगवान के दर्शन भी इस मत्स्य के जीवन में परिवर्तन कर जाते हैं। वह मत्स्य बारम्बार उस प्रतिमा के आकार के मत्स्य की ओर देखा करता है। ऐसा मैंने कहीं देखा है.... विचार करते-करते उसे उसी अवस्था में जातिस्मरण ज्ञान होता है। पूर्व जन्म देखता है। दुःख है कि मैंने पिता की आज्ञा का पालन नहीं किया.... और जिनेश्वर देव की कि हुई आशातना का प्रत्यक्ष फल अनुभव कर रहा हूँ। बहुत पश्चाताप् करता है। मत्स्य के भव में भी वह तप-त्याग करता है। अन्त में अनशन करके स्वर्ग में जाता है। भाव रहित दर्शन भी यदि मनुष्य को पार लगा देते हैं तो भाव से करे हुए दर्शन मनुष्य को क्या नहीं प्रदान करते? अरे, दर्शन तो देती ही है, किन्तु दर्शन की मात्र अभिलाषा भी सद्गति को देती है।

दर्शन की तन्मयता - (वृद्धा माँ की कथा)

एक आश्रय-रहित वृद्धा माँ जंगल में लकड़ी लेने के लिए गई थी। वहाँ रास्ते में लोगों का झुंड का झुंड सामने मिलता है। वह जनता को पूछती है कि आज सब लोग कहाँ जा रहे हैं? लोग कहते हैं कि यहां तीर्थंकर पधारे हैं उनके दर्शन करने के लिए जा रहे हैं। तीर्थंकर अर्थात् क्या? लोग कहते हैं - अरे, जिनका नाम ग्रहण करने मात्र से हमारे दुःख और दरिद्रता चली जाती है। वृद्धा को भी भगवान् के दर्शन की अभिलाषा होती है। मन में एक ही ध्यान है कि मुझे भगवान् के दर्शन करने हैं। दर्शन करने के लिए जाते हुए मार्ग में ही उसकी मृत्यु हो जाती है। दर्शन की उत्कृष्ट अभिलाषा होने के कारण वह मरकर देवलोक में जाती है। वहाँ से च्युत होकर किसी राजा के यहाँ कुमार के रूप में जन्म लेती है। एक भव देव का और एक भव राजा का। इस प्रकार सात भव करने के पश्चात् आठवें भव में राजा बनती है। वह राजा किसी बगीचे में बैठकर वहाँ के दृश्य देखता है। एक मेंढ़क को सांप ने पकड़ लिया, उसको शमी नाम के पक्षी ने पकड़ लिया, शमी पक्षी को अजगर ने पकड़ रखा है। इस प्रकार **मत्स्यगलागल** न्याय के समान संसार में भी ऐसा ही चलता है। बड़ा छोटे को दबाता है, उससे बड़ा उस बड़े को दबाता है.... इस प्रकार यह भयंकर संसार चल रहा है। यह दृश्य देखते ही उसे तत्काल ही वैराग्य उत्पन्न होता है और वह संयम ग्रहण करता है, अन्त में मोक्ष में जाता है। विचार करो भगवान् के दर्शन मात्र की अभिलाषा भी कितनी सहजता से मोक्ष को प्रदान करती है।

अरिहंत परमात्मा की उपासना श्वेत वर्ण से करनी होती है। कारण कि उनका वर्ण श्वेत है। निर्मल श्वेत रङ्ग की उपासना हमको भी श्वेत बनाती है। हम अन्दर से काले हैं, चितकबरे हैं। कितने ही दुर्गणों से भरे हुए हैं। सफेद रंग में शुद्धि करने की शक्ति है। अरिहंत परमात्मा का ज्यों-ज्यों ध्यान करते हैं त्यों-त्यों हमारे भीतर तेज और उज्ज्वलता बढ़ती जाती है।

हमारी कालिमा दूर होती है। चित्त की उज्ज्वलता से एक भी दूषित विचार आता है तो तुरन्त ही हमारा ध्यान उस ओर केन्द्रित हो जाता है। जैसे सफेद कपड़े पर लगा हुआ काला धब्बा तुरन्त ही दिखाई देता है न!

जिन के ध्यान से जिन

ऐसे अरिहंत परमात्मा की सच्ची पहचान तभी होती है जब दूसरी ओर भटकता हुआ चित्त प्रभु के ध्यान में लीन होता है.... हम माला फेरते हैं, पूजा करते हैं, किन्तु चित्त उसमें मग्न नहीं होता है। क्योंकि चित्त में पदार्थों का समूह भरा हुआ होता है। जब भ्रमर-इलिका के न्याय से प्रभु में तन्मय बनेगें तभी उसका वास्तविक आनन्द और सच्चा स्वाद मिलेगा। इलिका भ्रमरी के डंक से बहुत भयभीत रहती है। वह भय ही भय में भ्रमरी बन जाती है। क्योंकि निरन्तर उसका ध्यान भ्रमरी की ओर रहता है। इस भय से भ्रमरी में मग्न होने के कारण इलिका भी भ्रमरी स्वरूप बन जाती है। इसी प्रकार दिन-रात अरिहंत का ध्यान करोगे तो अरिहंत के स्वरूप को धारण कर सकोगे।

अरिहंत के भजन से अनादि काल से जो हमारी कुटेव पड़ी हुई है वह नष्ट हो जाएगी। किन्तु वास्तविक रूप से **हम भगवान का स्मरण करते ही नहीं हैं! करते हैं तो भोगवान का भजन करते हैं।** अरिहंत बनना बहुत कठिन है, किन्तु अरिहंत का नाम लेना तो कठिन नहीं है न!

सिद्धपद

अरिहंत भगवान किसलिए उपदेश देते हैं? धन पैदा करने के लिए नहीं, सिद्धपद प्राप्त करने के लिए देते है। सिद्धपद की पहचान कराने वाले तो अरिहंत ही है। एक आत्मा मोक्ष में जाती है, सिद्ध होती है, तो एक जीव निगोद में से बाहर आता है। निगोद में अनन्त जीवों का पिण्ड है। उसी में वे जन्म ग्रहण करते हैं और उसी में मरते हैं। अनादि काल से यह चक्र चलता रहता है। एक आत्मा के सिद्ध होने पर इन अनन्त जीवों के समूह में से एक जीव बाहर निकलता है। इस प्रकार सिद्ध

भगवन्त का हमारे ऊपर अनन्य उपकार है। जिसके सब कार्य सिद्ध हो गए हो उसे सिद्ध कहते हैं। सिद्ध के सुख की तुलना करने लायक तो कोई भी पदार्थ इस जगत में नहीं है। उनका सुख अवर्णनीय होता है। एक दृष्टान्त आता है।

सिद्ध का सुख कैसा?

किसी एक नगर में एक राजा था। उसके पास विपरीत शिक्षा वाला एक घोड़ा था। एक बार राजा उस घोड़े पर सवार होकर घूमने निकला। यह घोड़ा विपरीत शिक्षा वाला है इसका ज्ञान उस राजा को नहीं था। इस कारण वह घोड़े की लगाम को ज्यों-ज्यों खेंचता त्यों-त्यों घोड़े का वेग बढ़ता जाता। घोड़ा खड़े रहने के स्थान पर भागता। जंगल की तरफ दौड़ा। राजा थक गया। उसने लगाम को छोड़ दिया.... लगाम ढीली होते ही घोड़े का वेग घटता गया और घोड़ा खड़ा रहा। राजा ने जान लिया कि यह तो विपरीत ज्ञान वाला घोड़ा है। भयंकर जंगल में राजा इधर-उधर भटक रहा है। कुछ दूरी पर उसे झोपड़ियाँ दिखाई दी। राजा उस तरफ चला, भूख-प्यास से बेहाल हो रहा था.... झोपड़े में से एक पुरुष बाहर निकला। उसने राजा को सम्मान दिया, भोजन पानी से राजा की सेवा की। राजा बहुत खुश हुआ, और उस पुरुष को साथ लेकर स्वयं के नगर की ओर वापस चला। उस जंगली पुरुष ने कभी भी नगर नहीं देखा था। ऐसे सभ्य मनुष्यों और ऊँची हवेलियों को उसने जिन्दगी में पहली बार देखा। राजा ने उसको अपने महल के पास में ही ठहराया। कुछ दिवस तो उसने अपने को राजा का मेहमान माना। ऐसे सुन्दर भोजन उसने कभी नहीं किए थे। राजा के यहाँ किस बात की कमी हो सकती है....? और यह तो राजा का उपकारी है.... इसीलिए उसकी देखभाल विशिष्ट प्रकार से होती है। किन्तु, जंगल के मुक्त वातावरण में रहे हुए मनुष्य को महल भी जेल के समान लगने लगा। वापस जंगल में जाने के लिए राजा से वह आज्ञा मांगता है। राजा उसे अनेक प्रकार से समझाते हैं। ऐसा सुख और वैभव छोड़कर तूं जंगल में जाकर क्या करेगा? तब भी

उसने जंगल में जाने की मांग चालु रखी। अन्त में राजा ने उसको जाने की अनुमति दे दी। वह जंगल में जाकर अपने साथियों से मिलता है। साथी पूछते हैं कि तूने वहाँ क्या देखा? क्या खाया? जंगल में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं थी कि जिसके साथ इसने जो देखा और खाया उसकी तुलना कर सके....! राजा के वहाँ भोगे हुए सुख को वह अपने शब्दों में वर्णन कर सके ऐसा नहीं था.... सिद्ध का सुख भी ऐसा ही है। इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनके पास में स्वद्रव्य है, स्वक्षेत्र है और स्वकाल है। हमारे पास इनमें से कुछ भी नहीं है। हम परद्रव्यों के आधार पर ही मजबूत है। मोटर, बंगला, वैभव.... यह सब परद्रव्य है। आत्मा के गुण तो स्वयं के होते हैं। सिद्ध कालातीत कहलाते हैं। जहाँ राज-परम्परा के राजागण और वंश-परम्पराएँ नष्ट हो जाती हैं। जहाँ स्थल वहाँ जल और जहाँ जल वहाँ स्थल हो जाते हैं। सभी काल से घिरे हुए रहते हैं। जबकि सिद्ध भगवान अकाल है। जैसे कोई अल्ला बोले, कोई स्वामीनारायण, कोई हर-हर महादेव वैसे ही एक ऐसा भी पंथ है जो "सत् श्री अकाल" ऐसा बोलता है। यह सब परम तत्त्व के ही रूप है। अरिहंत परमात्मा के लिये जो यह मंथन है, परिश्रम है, वह सब परम तत्त्व तक हमको पहुँचाने के लिए है।

सुख की व्याख्या

अनेक व्यक्तियों के हृदय में यह प्रश्न उठता है कि सिद्धपद में खाने का नहीं है, पीने का नहीं है, सोने का नहीं है और न ही किसी प्रकार की विरह-वेदना है, तो फिर आनन्द कैसा। हम लोग सुख की व्याख्या बहुत संक्षेप में करते है। घर में गाड़ियाँ हो, आलीशान बंगला हो, सुख के सब साधन मौजूद हों इसे हम सुख कहते हैं.... वास्तव में यह सच्चा सुख नहीं है, किन्तु सुखाभास है। संसार के सुखों में वेदना का अभाव होता है। जब चढ़ता बुखार हो.... १०६ डिग्री तक पहुँच जाए तब मनुष्य कितना अधीर और व्यथित हो जाता है किन्तु दवा से धीमे-धीमे बुखार उतरता हुआ १०५ डिग्री पर आता है। चढ़ते हुए १०५ डिग्री से ऊपर चढ़ता है, उस समय क्या स्थिति थी? और उतरते समय १०५ डिग्री आती है तब

मन की क्या स्थिति होती है? चढ़ते समय मनुष्य आकुल-व्याकुल बन जाता है किन्तु ज्यों ही बुखार उतरने लगता है त्यों ही एकदम राजी-राजी हो जाता है। वेदना के अभाव में मनुष्य प्रसन्न होता है। **सिद्ध के जीव परमानन्दी हैं।** जबकि संसार के जीव अत्यन्त क्लेशों से युक्त हैं।

सिद्ध का वर्ण लाल क्यों?

नमो सिद्धाणं पद की आराधना करने से मनुष्य के सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं। सिद्ध का वर्ण लाल है। क्योंकि उनके समस्त कर्म जल/नष्ट हो चुके हैं इसीलिए उनकी उपासना लाल रङ्ग से करने में आती है। इस रङ्ग में वशीकरण की एक शक्ति है। सारा संसार भी इसी वशीकरण पर ही चलता है न! देखो, स्त्रियों की चुनड़ी का रङ्ग भी लाल, बिन्दी का रङ्ग भी लाल। स्त्रियाँ कपाल में लाल रङ्ग की ही बिन्दी क्यों लगाती है? ताकि उस पर उसके पति की हमेशा नजर पड़ती रहे। वह उसकी तरफ आकर्षित रहे। जबकि आज तो काली, नीली और पीली बिन्दी भी दिखाई देती है। इन लोगों को कौन समझाए कि नीली, पीली और काली बिन्दी से तुम्हारा संसार भी नीला-पीला हो रहा है। इस पद की उपासना से ऐसी वशीकरण शक्ति उत्पन्न होती है कि वह अच्छे-अच्छे राजा-महाराजाओं को भी वश में कर सकते हैं। किन्तु आज के मानव को गहराई में उतरने का अवकाश ही कहाँ है? सबकुछ पुस्तकों में ही सुरक्षित है। आराधनाएं बहुत करते हैं। जीवन में अनेक ओलियाँ करते हैं। किन्तु एक पद की भी सच्ची उपासना नहीं कर सके हैं। तुम आयम्बिल करते हो बहुत अच्छी बात है किन्तु हमें इस आयम्बिल में प्राण फूंकने है। तप के साथ जप भी चालु रखो।

> तन पवित्र सेवा करने से।
> धन पवित्र दान देने से।
> मन पवित्र भजन करने से।
> ये त्रिविध कल्याण करने के लिए है।

तीसरा पद – आचार्यपद

आसोज सुदि १०

सिद्धचक्र में गुणों और तमाम गुणवानों का समावेश हो जाता है। पिता को पुत्र को तैयार करने की, आगे लाने की कितनी आतुरता रहती है? शिल्पी को पत्थर में से मूर्ति बनाने की कितनी आतुरता रहती है। मन में निरन्तर एक ही चिन्तन चलता रहता है कि मुझे यह करना है। और इस चिन्तन की प्रतिध्वनि भी पड़ती है। जिस प्रकार हमारे मन में किसी प्रकार का संकल्प करते हैं तो उसकी प्रतिध्वनि पड़ती ही है। महापुरुषों ने संकल्प किया है कि जगत् के समग्र जीवों को मुझे तारना है। हमें इस संकल्प के अनुकूल बनने का है। शिल्पी चाहे जैसा भी हो किन्तु पत्थर इतना कठोर हो कि वह टांकने को ही तोड़ देता हो। तो इसमें शिल्पी का कोई दोष नहीं है। किसी चित्रकार ने चित्र को लम्बे समय तक स्थाई बनाने के लिए सुन्दर कैनवास के कपड़े पर चित्र बनाना प्रारम्भ किया। यदि पवन के जोर से कपड़ा उड़ता रहे तो चित्रकार उस चित्र को बना सकता है क्या? नहीं, अरिहंत परमात्मा का संकल्प है कि '**सवि जीव करुं शासन रसी**' किन्तु यदि जीव की योग्यता ही न हो तो। हमें उपासना के द्वारा/गुणों के द्वारा योग्यता प्राप्त करनी है। हम योग्य बनेंगे तभी साधना कर सकेंगे। पहले तो जीवन में सज्जनता की आराधना/साधना करने की है। श्रीपाल महाराजा के गुणों का गायन शासनाधिपति गौतमस्वामीजी महाराज भी करते हैं। किसलिए? उनके जीवन में सज्जनता शिखर पर थी। उनके रास में से केवल कथानक ही नहीं पकड़ने का है किन्तु श्रीपाल के जीवन में रहे हुए गुणों को प्राप्त करने का है। धवल सेठ की दुर्जनता भी शिखर पर थी.... ऐसा होने पर भी सहानुभूति से और कृतज्ञता के गुण के बल पर अधम में अधम कोटि की दुर्जनता करने पर भी उसमें उपकारी के दर्शन करते हैं, कितना विशाल हृदय? प्राय: करके

जगत् का अधिकांश भाग दुर्जनों से भरा हुआ है। शास्त्रकार कहते हैं कि दुर्जनों की उपेक्षा कर और उनकी तरफ सहानुभूति जताकर सज्जन को उच्च स्थान प्राप्त करना है। एक सुवाक्य है - **दुर्जनं प्रथमं वन्दे सज्जनं तदनन्तरम्।** अर्थात् मैं पहले दुर्जन को नमस्कार करता हूँ और उसके बाद सज्जन को नमस्कार करता हूँ। क्योंकि दुर्जन होंगे तभी सज्जन का महत्व समझ सकते हैं। पीतल होगा तब ही स्वर्ण की कीमत आंक सकते हैं। काँच के टुकड़े होंगे तभी हीरे का मूल्य समझ सकते हैं। वैसे ही जो जगत् में दुर्जन न हों तो सज्जन मनुष्य के महत्व को भी नहीं आंका जा सकता।

शासन का दीपक

भगवान् महावीर तो इस पृथ्वी पर उपदेश देने के लिए केवल तीस वर्ष ही रहे। अल्प काल में ही सूर्य प्रकाश कर गया। किन्तु उनके बाद ज्योति के समान जाज्वल्यमान आचार्य भगवंत नहीं होते तो अंधेरा ही होता न! आज हजारों वर्ष बीत जीने पर भी हमारे तक यह शासन पहुँचा, यह किसके बल पर? आचार्य भगवंतो के कारण ही न! अरिहंत पद की अपेक्षा भी कभी-कभी आचार्य पद कठिन बन जाता है। कारण कि अरिहंत भगवान के पास तो अतिशय होता है और उन अतिशयों के बल पर कार्य को पूर्ण कर देते हैं। जबकि आचार्य भगवंतो को तो अतिशयों के बिना ही काम लेना पड़ता है। शासन में अनेक प्रकार के जीव होते हैं। ऊँचे कक्षा के भी होते हैं, मध्यम कक्षा के भी होते हैं और निम्न कक्षा के भी होते हैं। ऐसा होने पर भी सबको उन-उन की योग्यता के अनुसार सम्भालना स्वयं पञ्चाचार का पालन करना और दूसरों के पास से पालन करवाना। आज के नेतागण तो स्वयं कुछ करते नहीं और प्रजा को आदेश देते हैं/प्रजा को कहते हैं कि आवश्यकता से अधिक खर्च न करो.... गरीबी हटाओ.... किन्तु स्वयं तो छाछ पीने के लिए भी प्लेन में जाते हैं.... और पैरों को दबवाने के लिए भी प्लेन में उड़ते हैं। यहाँ तो पहले पालन करो और बाद में पालन करवाओ। आचार्य महाराज गम्भीर

ज्ञानी और बाह्य तथा अभ्यन्तर आचारों में सुदृढ़ होते हैं। जिनेश्वर भगवान् रूपी सूर्य भी अस्त हो गया और सामान्य केवली भगवन्त रूपी चन्द्र अस्त हो गया। ऐसी दशा में अमावस्या की घोर अन्धेरी रात के समान ही अंधकार फैलेगा न! अमावस की अंधेरी रात में तुम क्या करोगे? दीपक जलाओगे न! ये आचार्य भगवान भी दीपक के समान हैं, इसीलिए इनका वर्ण भी पीला है। वे शासन में राष्ट्रपति के स्थान पर हैं। इस शासन को चलाने का कठिनतम कार्य आचार्य भगवन्त का है। आचार्य पद यूं ही नहीं मिल जाता? उसके लिए तो कितना ही भोग देना पड़ता है।

मानदेवसूरि महाराज

लघु शान्ति के प्रणेता महाराज की बात है। उनकी साधना बहुत उन्नत थी। उनकी साधना से आकर्षित जया और विजया नाम की दो देवियाँ उनकी सेवा में ही रहती थीं। उनके गुरु महाराज ने विचार किया कि मानदेव, ज्ञानी हैं, साधक हैं, गम्भीर हैं, इसीलिए आचार्य पद के लिए बराबर योग्य हैं। उस समय में समग्र संघ के ऊपर एक ही आचार्य रहता था। आचार्य पद प्रदान करने का महोत्सव प्रारम्भ हुआ। लोगों में प्रबल उत्साह था। पद प्रदान का दिन भी आ गया। विधि प्रारम्भ हुई। सूरिमन्त्र देने का समय आ पहुँचा। उस समय गुरु भगवन्त की दृष्टि मानदेवजी महाराज के कन्धे पर बैठी हुई दो देवियों पर गई। देवियाँ जिनके समीप रहती हों उनको आचार्य पद नहीं दिया जाता। वे कभी भी मार्गच्युत हो सकते हैं। विशुद्ध नहीं रह सकते। क्या करना? भले ही संघ समूह इकट्ठा हो गया हो किन्तु अयोग्य को यदि आचार्य पदवी दी जाए तो वह शासन के लिए हितकारी नहीं होगा। मैं दोषी बनूँगा। तत्काल ही निर्णय लिया - आचार्य पद नहीं देना है। मिनटों की गणना हो रही है, समय हो गया है, गुरुदेव मौन बैठे हैं, इस कारण से सभा भी स्तब्ध हो गई है। समय हो जाने पर भी आचार्य महाराज मौन क्यों बैठे हैं? पूज्य मानदेवविजय महाराज की दृष्टि गुरुमहाराज की मुखाकृति पर पड़ी।

उन्होंने देखा कि गुरुमहाराज दुविधा में हैं। उनके चेहरे पर उद्विग्नता छा रही है। उन्होंने आस-पास दृष्टि डाली। देवियों को कन्धे पर बैठी हुई देखकर वे समझ गये.... गुरु के प्रति भी कितना अधिक सम्मान? गुरुजी जो विचार करते हैं वह सत्य ही है। तत्काल ही गुरुदेव के पास जाकर उनके चरणों में गिर पड़े और कहा - हे गुरुदेव! यावज्जीव छः (रस) विगईयों का त्याग करवाईए। पूर्ण युवावस्था....! छः विगइयों का त्याग....! शासन के प्रति कितनी भक्ति.... कितना गुरु के प्रति प्रेम! गुरुदेव ने उनकी तेजस्विता देखी। छहों विगईयों का प्रत्याख्यान करवाया और फिर पदवी की क्रिया प्रारम्भ करवाई। ऐसे गुण हों तभी आचार्य बनने के लिए समर्थ हो सकते हैं। कोई पदवी की मुद्रा लगानी नहीं है बहुत बड़ी जवाबदारी सिर पर आ जाती है।

आचार्य भगवंत भी प्रज्ञा को किस प्रकार हजम करते हैं, इसका हूबहू चित्र का वर्णन करने वाला यह दृष्टान्त है। बुद्धि को पचाना यह एक बड़ा परिषह है।

कालिकाचार्य

उज्जयिनी नगरी में कालिकाचार्य विचरण करते थे। वे महाज्ञानी थे। अप्रमत्त थे, किन्तु उनके शिष्य बहुत ही प्रमादी और जड़ थे। शिष्यों को कुछ भी कहें तब भी वे शिष्य मानते नहीं थे। इसी कारण आचार्य महाराज को क्रोध आ जाता था। बहुत समय तक यह क्रम चला, अन्त में उन्होंने सोचा कि ऐसे तो मेरा सबकुछ बिगड़ जाएगा। ये शिष्य तनिक भी सुधरते नहीं हैं। अतः एक अग्रगण्य श्रावक से बात की। मैं इन सब शिष्यों से अत्यन्त दु:खी हो गया हूँ अतः एकाकी ही कहीं जाने की इच्छा रखता हूँ.... कर्म सत्ता किसी को भी छोड़ती नहीं है। ऐसे युगप्रधान आचार्य को भी एकाकी रहने का अवसर आया! किसी भी शिष्य को कहे बिना ही अकेले निकल पड़े। प्रातःकाल हुआ.... शिष्यों ने राह देखी कि अभी गुरु महाराज आ जाएंगे, किन्तु दिन पर दिन बीतते गए तब भी गुरु

महाराज नहीं आये। उन्होंने चारों तरफ खोज की। श्रावकों को पूछा, किन्तु उनका कहीं भी ठिकाना नहीं मिला। कालिकाचार्य वहाँ से निकलकर सुवर्णभूमि (सुमात्रा) जहाँ उनका प्रशिष्य विचरण करता था। वहाँ आ पहुँचे। उन दोनों ने आपस में किसी को देखा नहीं था। इसीलिए, पहचानते भी नहीं थे। इस तरफ शिष्यों ने श्रावकों को खूब आग्रह करके पूछा, तब श्रावकों ने कहा कि तुम्हारे क्लेश से कंटालकर गुरु महाराज चले गये है किन्तु कहाँ गए यह मालूम नहीं है। शिष्यों को लगा कि इससे तो हमारी बदनामी होगी। अतः चाहे जैसे भी गुरु महाराज को ढूंढ लेना चाहिए। उन्होंने वहाँ से विहार किया।

सुवर्ण भूमि में कालिकाचार्य को देखकर वहाँ विचरते इन्हीं के प्रशिष्य आदि साधुओं ने विचार किया कि कोई वृद्ध साधु आया है। इसी कारण उन्होंने उनका अधिक आगत-स्वागत भी नहीं किया और मान-सम्मान भी नहीं दिया, किन्तु आचार्य तो धैर्य और गम्भीरता के भण्डार थे। एक तरफ कोने में बैठ जाते हैं। पूरे दिन अपनी साधना में मस्त रहते हैं। दूसरे साधु प्रतिदिन वाचना लेने के लिए बैठते हैं। उस समय यह कालिकाचार्य महाराज भी शिष्यों के पीछे एक तरफ बैठ जाते हैं। ज्ञान को कितना हजम किया होगा? वाचना सुनते हैं, वाचना देने वाले साधु आचार्य महाराज से पूछते हैं - क्यों महाराज मैं बराबर वाचना देता हूँ न! आचार्य भगवंत उत्तर में कहते हैं- हाँ भाई! बराबर है। इससे अधिक कुछ भी नहीं बोलते हैं। चुपचाप सबकुछ देखा करते हैं। स्वयं की साधना-आराधना में ही मस्त रहते हैं।

इस ओर उनके शिष्य उनकी शोध करते-करते उस तरफ आ जाते हैं। यहाँ विराजमान सागरसूरिजी महाराज को खबर मिलती है कि कोई साधुओं का संघ भारत से आ रहा है। इसी गाँव में पहुँच गये हैं। यहाँ रहे हुए समस्त साधु उनकी अगवानी के लिए सामने जाते हैं। आचार्य महाराज तो एक कोने में ही बैठे हुए हैं। सब साधु मिलकर उस स्थान पर

आते हैं। आने वाले साधुगण सागरसूरि से पूछते हैं कि यहाँ कोई साधु महाराज आए हैं? हाँ, एक वृद्ध साधु आया है, यह कोई अन्य वृद्ध साधु नहीं किन्तु हम सबके गुरु होने चाहिए। वहाँ जाकर देखते हैं, गुरु महाराज के चरणों में गिर पड़ते हैं, माफी मांगते हैं। सागरसूरिजी महाराज तो यह दृश्य देखकर दंग रह जाते है.... अ र र.... मैंने ज्ञानी गुरु की भयंकर आशातना की है.... वे भी आचार्य भगवंत के चरणों में गिर पड़ते हैं। क्षमा मांगते हैं। आचार्य भगवंत कितने सरल हैं? कहते हैं - भाई! तुम्हारे पास ज्ञान बहुत है, प्रसिद्धि भी है, कुशलता भी है, किन्तु तुम्हारे में एक कमी है। तुम प्रज्ञा को पचा नहीं सकते। तुम्हें ज्ञान/प्रज्ञा का अजीर्ण हो गया है। ज्ञान यह अहंकार का नाश करने के लिए है जबकि वह तेरे अहंकार को बढ़ाने वाला बना है। आचार्य भगवंत ने प्रज्ञा को कितना पचाया था कि स्वयं के प्रशिष्य द्वारा किया हुआ अपमान भी सहन कर गये। ऐसे युगप्रधानों से ही यह शासन टिक रहा है।

आचार्य पद की उपासना से हमारा अज्ञानरूपी अंधकार नष्ट हो जाता है। वे जाज्वल्यमान ज्योति के समान है। अत: भीतर के अंधकार को दूर करता है। इसके उपरान्त सिंह, व्याघ्र, सर्प जैसे भयंकर प्राणियों को भी स्तम्भित करने की शक्ति इस पद के जाप करने से पैदा होती है।

धर्म केवल विधि बन गया

पूज्य हीरसूरिजी महाराज के जीवन का प्रसंग है। साधुवृन्द के साथ विहार करते हुए वे जा रहे हैं। रास्ते में किसी साधु को सर्प ने काट लिया। वह एकदम चिल्ला उठा। सांप ने काटा....सांप ने काटा...। हीरसूरिजी महाराज उसके पास आए। जहाँ सांप ने काटा था वहाँ हाथ फेरा और कहा- चल खड़ा हो जा! और चलना प्रारम्भ कर.... उनके स्पर्श से जहर उतर गया। इन सभी साधनाओं के लिए आत्मा में गहराई से उतरना पडता है। १०८ बार नवकार की गणना कर ली और फल मिल जाएगा ऐसा नहीं है। इसमें तो तन्मय होना पड़ेगा। हमारी समस्त क्रियाएं

सिर्फ क्रियाकांड ही बन गई है। हम धर्म के सारे विधि-विधान तो करते रहते हैं। सामायिक अर्थात् दो घड़ी (४८ मिनट) तक इरियावहीयं कर कटासणे पर बैठ जाना। फिर भले ही मन में किसी भी प्रकार के विचारों का द्वन्द्व चलता हो। वास्तव में सामायिक अर्थात् समता की साधना, दूषित विचारों का त्याग, शुभ भावनाओं की प्रवृत्ति, सामायिक करने के बाद जीवन में कितनी समता आई? वाणी में समता नहीं, विचारों में समता नहीं। इधर-उधर के झगड़े विचारों में चलते रहते हैं। १०० सामायिक करने पर भी बिन्दु जितनी भी जीवन में समता नहीं आई तो सामायिक करने का कोई अर्थ नहीं है। उल्टा कर्मों का बंध ही होता है। श्रीपाल महाराजा को तो विवाह के लिए जाते समय भी सामायिक था। क्योंकि उनके चित्त में समता थी। धवल सेठ की दुर्जनता पराकाष्ठा पर पहुँची हुई थी तब भी उनकी तरफ उनका लेशमात्र भी द्वेष भाव नहीं था। श्रीपाल महाराजा की प्रत्येक क्रिया में सामायिक ही होती थी। भले ही वे कटासणा बिछाकर दो घड़ी भी बैठते नहीं थे, किन्तु उनका चित्त सामायिक में ही था। समता में ही रमण करते थे। इसीलिए धवल सेठ द्वारा समुद्र में गिरा देने पर भी सिद्धचक्र के प्रभाव से समुद्र को तैर कर वे किनारे आ गए थे। तब भी उनके हृदय में धवल सेठ के प्रति लेशमात्र भी द्वेष नहीं था। निश्चिन्त होकर वृक्ष के नीचे सो जाते हैं। नींद कब आएगी? मनुष्य निश्चिन्त होगा तभी न! दो-दो स्त्रियों और अखूट लक्ष्मी को समुद्र में छोड़कर आ गए थे, इसका भी लेशमात्र उनके हृदय में रञ्ज/दुःख नहीं था। श्रीपाल रास से यही सार ग्रहण करने का है। आराधना के साथ क्रिया करेंगे तो उसका अलौकिक फल मिलेगा। आज तो बहुत से लोगों के जीवन में पूजा-दर्शन, सामायिक-प्रतिक्रमण यह सभी विधि मात्र ही हैं। ये साधना का रूप धारण नहीं कर सकी हैं। कई बार तो दीक्षा भी एक विधि बन जाती है। साधु-साध्वियों के जीवन में से भी यदि समता का लोप होने लगे तो संयम रूपी महल कैसे टिकेगा। किसी भी

क्रिया के मूल तक पहुँचना चाहिए। केवल रूढ़ी के अनुसार करने से उसका सम्पूर्ण फल नहीं मिल सकता.... क्रिया में एकाग्रता लाओ.... आज हम नवपद की आराधना में अर्थात् नौ दिन आयम्बिल करना, कोई एक धान से करता है तो कोई एक द्रव्य से करता है। इससे आगे बढ़कर नवपद की पूजा पढ़ाई जाती है। उससे भी आगे सिद्धचक्र महापूजन करवाया जाता है.... बस इतने में ही हमने उत्कृष्ट आराधना कर ली हो ऐसा संतोष होता है, किन्तु नहीं, इतने मात्र से संतोष नहीं मिल सकता.... नवपद में रहे हुए प्रत्येक पदों के गुणों तक पहुँचना होगा, उसकी आराधना में तन्मय बनना होगा....

तिरने के तीन स्थान - पर्वाधिराज, मन्त्राधिराज, तीर्थाधिराज

किसी के सुख जैसा सुख मुझे मिले ऐसी याचना करने वाला भिखारी वृत्ति का होता है।

किसी के सुख को लूटने वाला व्यक्ति शिकारी वृत्ति का होता है।

स्वयं के सुख को दूसरे के सुख के लिए लुटा देने वाला मुनि वृत्ति का होता है।

उपाध्याय - साधु - दर्शनपद

आसोज सुदि ११

चौथा पद - नमो उवज्झायाणं

नवपद के नौ पदों में अरिहंत और सिद्ध ये देव तत्त्व हैं। आचार्य, उपाध्याय और साधु ये गुरु तत्त्व हैं। देव तत्त्व तो अमुख समय में ही उत्पन्न होते हैं और कुछ समय तक ही रहते हैं। उस समय में जिन जीवों का उद्धार हुआ, वह हो गया किन्तु उनके बाद असंख्य जीवात्माओं का क्या होगा? गुरु तत्त्व के बल पर ही ये जीवात्माएं तिर सकती है। जिस प्रकार बिना माँ-बाप के लड़के का हित नहीं हो सकता उसी प्रकार गुरु तत्त्व के बिना जीवात्मा पार नहीं हो सकता। अस्वस्थ शरीर के उपचार के लिए डॉक्टर अथवा वैद्य की आवश्यकता पड़ती है। उसी प्रकार मन की व्याधि के उपचार के लिए गुरु की नितान्त आवश्यकता है। काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, हिंसा और असूया आदि मन की व्याधियाँ हैं। ये व्याधियाँ गुरु भगवन्त रूपी डॉक्टर के द्वारा ही दूर हो सकती है।

देश स्वतन्त्र हुआ और तुरन्त ही निर्वाचित बुद्धिशाली लोगों को इकट्ठे करके देश का संविधान बनाया। यहाँ भी तीर्थ की स्थापना के बाद तत्काल ही विधान बनाया गया। जिसे द्वादशांगी कहते हैं। भगवान ने तीन पद दिए - **उप्पन्ने इ वा, धुवे इ वा, विगए इ वा।** इन तीन पदों के आधार पर ही गणधर भगवन्तों ने द्वादशांगी की रचना की। विधान को सम्भालने एवं सुरक्षित रखने का काम उपाध्याय भगवन्तों ने किया। आचार्य महाराज भी यदि किसी प्रकार से इधर-उधर हों तो उपाध्याय भगवंत तत्काल ही उनको रोक सकते हैं। यहाँ तो सब-कुछ नियमानुसार चलता है, तुम्हारी इच्छानुसार नहीं। दूसरा पढ़ना और पढ़ाना यह काम उपाध्याय भगवन्तों का रहता है। पत्थर पर बीजों को अंकुरित करना

कितना कठिन काम है। उपाध्याय भगवंत पत्थर जैसे शिष्यों में भी प्रेम से ज्ञान को अंकुरित करते हैं। आज तुम्हें अपने लड़कों को पढ़ाने के लिए लाखों रुपये खर्च करने पढ़ते हैं किन्तु उपाध्याय महाराज तो दिन-रात पढ़ाते हैं परन्तु पारिश्रमिक के रूप में एक रुपया भी नहीं लेते। **उपाध्याय अर्थात् जिनके चरणों में बैठकर पढ़ाई की जाए।** उनका वर्ण हरा होता है। क्योंकि वे ज्ञान के अंकुरों का आर्विभाव करने वाले होते हैं। अंकुर का रङ्ग हरा ही होता है न। हरे रङ्ग को देखकर मनुष्य को शान्ति मिलती है। चाहे जैसा भी जड़ शिष्य हो किन्तु उपाध्याय भगवंत की उपासना करने से ज्ञानी बन सकता है।

पाँचवाँ पद - नमो लोए सव्वसाहूणं

एक राज्य को चलाना हो तो राजा चाहिए, मन्त्री चाहिए, सेनापति चाहिए और सैनिक चाहिए। जबकि यहाँ तो पूर्ण शासन चलाने का है। उसमें क्या नहीं चाहिए? अरिहंत परमात्मा का स्थान राजा के स्थान पर है, आचार्य भगवंत मन्त्री के स्थान पर है, उपाध्याय भगवंत सेनापति के स्थान पर है और साधुगण सैनिकों के स्थान पर हैं। उक्त सभी का आधार सैनिकों पर ही है। सेनापति चाहे जितना भी महारथी क्यों न हो किन्तु सैनिकों के बिना वह क्या कर सकता है? यह शासन साधु-साध्वियों के सैन्य समूह पर ही चलता है। देश-देश, गाँव-गाँव और घर-घर तक पहुँचने के कारण ही यह धर्म गाँव-गाँव में फैला हुआ है। प्रभु के शासन को फैलाने वाले साधु-साध्वी ही हैं। अरिहंत भगवान के शासन में साधु-साध्वियों का प्रबल सहयोग है। यह जगत सत्पुरुषों के पुण्य के आधार पर ही टिका हुआ है। जगत् में पाप बहुत ज्यादा बढ़ गया है, तब भी समुद्र अपनी मर्यादा क्यों नहीं छोड़ता? क्योंकि वह विचारता है कि यदि मैं मर्यादा का त्याग कर दूंगा, तो इन सत्पुरुषों का क्या होगा? वे भी डूब जाएंगे। इसीलिए वह अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता। सारा जगत् जैन संघ से ही शोभायमान है। पारिश्रमिक लिए बिना घर-बार छोड़कर निकले हुए,

भूख-प्यास और मान-अपमान को सहन करने वाले ऐसे महात्माओं से ही यह शासन चल रहा है। विश्व-कल्याण के लिए ही शान्तिनाथ, कुंथुनाथ और अरनाथ जैसे महापुरुषों ने चक्रवर्ती पद की ऋद्धि को त्याग दिया है। महावीर स्वामी भगवान् ने बारह वर्ष तक घोर तपश्चर्या की है।

साधु पद की आराधना काले रङ्ग से होती है। क्योंकि उनका वर्ण भी काला होता है। तप-तपस्या करने से वे श्याम वर्ण वाले बन जाते हैं। काले रङ्ग का अत्यधिक महत्त्व है। किसी शासन विरोधी को उखाड़ फेंकना हो तो काले रङ्ग की ही उपासना की जाती है। तांत्रिक लोग काले रंग की साधना से अच्छे-अच्छों का उच्चाटन कर देते हैं। काले रङ्ग की साधना अच्छे-अच्छों का उच्चाटन कर देती है। इस समय तो केवल धार्मिक अर्थ ही रहा। तांत्रिक अर्थ पूर्ण रूप से छूट गया। यही कारण है कि शासन पर चारों तरफ से आक्रमण किया जा रहा है। गोरजियों (यतिवर्ग) के पास में मन्त्र-तन्त्र, ज्योतिष और अनेक विद्याएँ थी। गोरजियों के समाप्त होते ही सबकुछ समाप्त हो गया। ऐसे साधकों के कारण लोग भी डरते थे। साधुपद का दोहा आता है कि साधु किसे कहें?

'अप्रमत्त जे नित्य रहे, नवि हरखे नवि सोचे रे।
साधु सुधा ते आत्मा, शुं मुंडे शुं लोचे रे॥'

अर्थात् साधु सदा ही अप्रमत्त रहता है। जैसे-तैसे करके सारा दिन बिताने वाले नहीं होते हैं। चाहे जैसे भी भक्त उनके पास आते हों, उनको वांछित मान-सम्मान भी देते हैं, किन्तु उन साधुओं को इस पर तनिक भी हर्ष नहीं होता है। आज की तरह पत्र-पत्रिकाओं में यह नहीं छपता कि अमुक मन्त्री मिलने के लिए आए थे अथवा नासिक के बैण्ड-बाजों से उनका भव्य प्रवेशोत्सव हुआ था। साधु विज्ञ और चतुर होना चाहिए कि यह मान-सम्मान मुझे नहीं मिल रहा है, बल्कि प्रभु के इस वेश को मिल रहा है। अनजाने गाँव में पहुँच जाने पर भी सिर्फ वेश को देखकर तत्काल ही उपाश्रय खोल दिये जाते हैं.... साहेब वहोरने के लिए पधारें.... साहेब

पानी तैयार है। यह सारा आगत-स्वागत किसके बल पर मिल रहा है! तुम अनजान गाँव में जाकर खड़े रहोगे तो तुम्हें कोई भी आदर सत्कार देगा क्या? कोई पानी के लिए भी पूछेगा? **महावीर की चादर (वेश) सवा लाख की है**। इसीलिए जो कुछ भी मान-सम्मान मिल रहा है वह मुझे नहीं बल्कि वेश को मिल रहा है, ऐसा मानकर मन में तनिक भी गर्वित नहीं होता है, उसी प्रकार कदाचित् किसी समय मान नहीं मिले.... तब भी हृदय में तनिक भी शोक धारण नहीं करता है। गाँव में ऐसा भव्य प्रवेशोत्सव हुआ और लोगों ने मुझे कोई भाव नहीं पूछा, ऐसा विचार कर मन में तनिक भी दीनता का अनुभव नहीं करता है, इसे कहते हैं साधु। जो ऐसा साधु न हो तो श्री यशोविजयजी महाराज कहते हैं - **शुं मुंडे? शुं लोचे रे?** सिर मुंडा लेने मात्र से कोई सफलता नहीं मिलने वाली है, किन्तु सच्चा साधु बनने के लिए मन को मुंडित करना होगा।

गुरु - यह तत्त्व है

गुरु मांस का पिण्ड नहीं है अपितु तत्त्व है। गुरु शब्द यह मन्त्राक्षर है। **'गु' अक्षर अंधकार वाचक है और 'रु' अग्नि वाचक है**। शास्त्रों में सभी अक्षरों को मन्त्राक्षर के रूप में प्रतिपादित किया गया है। शब्द यह सृष्टि का मूल है। शब्द के भीतर सारा विश्व आ जाता है। कोई अक्षर अग्नि का बीज है, तो कोई जल का बीज है और कोई वायु का बीज है। साधना करने की योग्यता/ज्ञान होना चाहिए। सबसे पहले उन-उन अक्षरों की साधना करनी होती है और फिर उसका जाप करते हुए अग्नि की आवश्यकता हो या न हो अग्नि यकायक प्रकट हो जाती है। जल के बीज की साधना करते हुए कुछ न हो फिर भी यकायक प्रवहमान जल निकल पड़ता है। शब्द का कभी भी नाश नहीं होता है, इसीलिए उसे 'अक्षर' कहते हैं अर्थात् जो 'क्षय' नहीं होता।

कलकत्ता का एक न्यायाधीश था। उसने यह बात सुनी की अक्षर यह बीज है। उसको लगा कि चीकू का तो बीज होता है, आम का भी

बीज होता है और सीताफल का भी बीज होता है, यह तो समझ में आता है किन्तु बारह खड़ी के अक्षर भी मन्त्र बीज होते हैं इसको दिमाग स्वीकार नहीं करता। वह न्यायाधीश किसी योगी के पास गया और हृदय की शंका उसके सामने रख दी। योगी ने कहा - कल आना। योगी साधक था। दूसरे दिन उसने लकड़ियों का एक बड़ा ढेर लगवाया, और उसके सामने कुछ दूरी पर योगी तथा न्यायाधीश बैठे.... दूर बैठे हुए योगी ने **'र'** बीज मन्त्र का उच्चारण किया। कुछ ही समय में लकड़ियों में से धुंआ निकलने लगा, घास गिरने लगी और आग भभक उठी। न्यायाधीश के मन की शंका दूर हुई। उसने प्रत्यक्ष में मन्त्राक्षर का प्रभाव देखा। 'गुरु' शब्द यह हमारे अज्ञानरूपी अंधकार को दूर करके ज्ञान रूपी प्रकाश फैलाता है। जगत् में देवतत्त्व की अपेक्षा भी गुरुतत्त्व महान् है। देव और धर्म की पहचान कराने वाला गुरु तत्त्व ही है। शास्त्रकार कहते हैं कि हमारी आत्मा शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गन्ध इन पांच इन्द्रियों के विषय में ही आकण्ठ डूबी हुई है। इनको ही पाँच-परमेष्ठि मानकर उनकी सेवा में रात-दिन लगी रहती है। संसार में भटकाने वाले इन पाँच परमेष्ठियों को जीतना हो तो अरिहंत आदि पांच परमेष्ठियों की उपासना करो।

छट्ठा पद - नमो दंसणस्स

आठों पदों की उत्पत्ति सम्यक् दर्शन से ही होती है। सम्यक्त्व की प्राप्ति न हो तो अरिहंत कैसे बन सकते हैं? चाहे जितना भी ज्ञानी हो या विद्वान हो किन्तु सम्यक्त्व के बिना वह निगोद में फेंका जाता है। ज्ञान भी प्रमाण भूत कब कहा जा सकता है? सम्यक् दर्शन होने पर ही। सम्यक् दर्शन क्या है? **जिनेश्वर की वाणी और वचनों में रुचि अर्थात् श्रद्धा, उसका नाम ही सम्यक् दर्शन है।** जहाँ रुचि होगी वहीं वीर्योल्लास प्रकट होगा। खाने में रुचि होगी, तभी खाने के लिए दिल होगा। **जिसकी जैसी रुचि होती है वैसी ही उसकी दौड़ होती है।** बहुत कुछ सुना किन्तु रुचि नहीं हो तो। थाली में घेवर परोसा गया हो किन्तु खाने में अरुचि हो तो

खाने की इच्छा होगी क्या? इसीलिए शास्त्रकार कहते हैं कि श्रद्धा बिना सब व्यर्थ है। एक बार भी जिनेश्वर के तत्त्वों में रुचि पैदा हो गई और भले ही वह फिर, वापस चली जाए तब भी अर्द्धपुद्गल परावर्तन उसका संसार कम हो जाता है। रुचि अर्थात् बीज। बीज होगा तो वह वृक्ष बनेगा ही। काशी के पण्डितों ने जैन शास्त्रों का अभ्यास किया हो और दूसरे विद्यार्थियों को पढ़ाते भी हों, किन्तु वे पुस्तक में लिखा हुआ बोल जाते हैं। उनको वह ज्ञान तनिक भी स्पर्श नहीं करता है। पढ़-पढ़कर पण्डित हो जाने से हाथ में कुछ नहीं आता है।

एक पण्डित के यहाँ मैं मिलने गया। उनकी अवस्था ८५ वर्ष की थी। जैन शास्त्रों के अभ्यासी विद्वान् थे, किन्तु अब वे निवृत्त हो गए थे। उनसे मैंने पूछा - अब क्या करते हो? पण्डित जी बोले - टी.वी. देखता हूँ, पत्र-पत्रिकाएं पढ़ता हूँ। पण्डितजी के मुख से यह सुनकर मुझे अत्यधिक आश्चर्य हुआ। उसी समय मेरे साथ में रहे हुए छोटे साधु ने पूछ ही लिया - भगवान का नाम तो लेते हो न? पण्डितजी ने उत्तर दिया - मैं तो नास्तिक हूँ। क्या कहना? सारी जिन्दगी जिन्होंने शास्त्र पढ़े और पढ़ाये, किन्तु जीवन में उस ज्ञान का तनिक भी स्पर्श नहीं हुआ। कड़छी (बड़ा चम्मच) के समान ही हुआ। खीर की कड़ाई में कड़छी घूमती रहती है, किन्तु उसे खीर का स्वाद मिल सकता है क्या? ऐसे **सेवा निवृत्त मनुष्य भी सम्यक् दर्शन के बिना संसार से निवृत्त नहीं हो सकते**। जब तक सम्यक् दर्शन प्राप्त न हो तब तक भव-भ्रमण चालू ही रहता है। चारित्र भी उच्च कोटि का क्यों न हो? किन्तु सम्यक्त्व के बिना उसका वास्तविक फल नहीं मिल सकता।

समकित के भेद

आत्मा में रागद्वेष का कचरा भरा हुआ है, उसमें जिनेश्वर भगवान की वाणी रूपी कतक चूर्ण का चूरा डाल दिया जाए तो सारा कचरा नीचे बैठ जाता है। जिस प्रकार चलायमान पानी में कतक चूर्ण का चूरा डालते

ही कचरा सब नीचे बैठ जाता है उसी प्रकार यहाँ भी सम्यक् दर्शन से आत्मा निर्मल बन जाती है। इसके तीन प्रकार हैं। या तो कचरा नीचे बैठ जाता है अर्थात् रागद्वेष उपशमित हो जाता है, उसे **उपशम समकित** कहते हैं। दूसरा **क्षायोपशमिक समकित है।** रागद्वेष रूपी कचरा नीचे बैठ जाने पर उसको हिलाया जाए तो कचरा जैसे डोलायमान होता है वैसे समकित भी डोलायमान हो जाता है। अर्थात् मिथ्यात्व का तनिक भी सम्पर्क होने पर मनुष्य का समकित डोल जाता है। समकित को स्थिर रखने के लिए सत्संग अत्यावश्यक है। अधिकांश रूप में व्यक्तियों को क्षायोपशमिक समकित ही होता है। यह समकित जीवन में असंख्य बार आता है। सत्संग होता है वहाँ तक वह स्थिर रहता है। मिथ्यात्वी होने में उसे तनिक भी समय नहीं लगता। आता है और चला जाता है। तीसरा **क्षायिक समकित है।** इसमें रागद्वेष रूपी कचरे का नितान्त ही अभाव है। यह समकित जीवन में एक बार ही आता है और आने के बाद कभी भी जाता नहीं है। रागद्वेष रूपी कचरा ही न हो तो वह डोलायमान कहाँ से होगा?

समकित के आभूषण

सम्यक्त्व भी आभूषणों से युक्त होने पर शोभा देता है। उसके पाँच आभूषण महत्त्व के निम्नानुसार है। **१. स्थैर्य - अर्थात् स्थिरता, २. प्रभावना, ३. प्रभुभक्ति, ४. जिनशासन में कुशलता, ५. तीर्थसेवा।**

१. स्थिरता - भगवान का धर्म समझने के बाद उसमें स्थिरता होनी चाहिए। अधिकांशतः जगत् के जीव अस्थिर ही होते हैं। जहाँ किसी दूसरे का सम्पर्क होता है वहीं भागकर दौड़ जाते हैं। उसको ऐसा लगता है कि यह सच्चा है या वह सच्चा है.... शास्त्रकार कहते हैं कि ऐसे डांवाडोल मत बनो। एक ही भगवान के धर्म पर श्रद्धा रखो। आज तो अनेक सम्प्रदाय हैं, अनेक गच्छ हैं और अनेक मार्ग हैं। कितने ही लोग अस्थिरता के कारण सच्चे धर्म को छोड़कर जैसे-तैसे मार्ग पर चढ़ जाते हैं। सामान्य आदमियों की बात छोड़िए किन्तु स्वयं भगवान

की पुत्री साध्वी प्रियदर्शना भी भगवान् के पथ को छोड़कर कुछ समय के लिए अपने पति जमाली के पन्थ में मिल गई थी। जमाली कहता था - कोई भी कार्य सम्पूर्ण होने पर, सम्पूर्ण हुआ कहना चाहिए। भगवान् का मत था - कार्य का प्रारम्भ हुआ तो कार्य किया कहा जा सकता है। प्रियदर्शना को भगवान् के मार्ग में स्थिर कुम्हार ने किया था। एक समय जब कुम्हार के वहाँ प्रियदर्शना ठहरी हुई थी। कुम्हार भगवान् का विशिष्ट भक्त था। उसने सोचा कि भगवान् की पुत्री होकर भी भगवान के पन्थ को छोड़ दे, यह कैसे चल सकता है। इसलिए साध्वी प्रियदर्शना को सच्चे मार्ग पर लाने के लिए जहाँ प्रियदर्शना बैठी हुई थी वहाँ बर्तन पकाने के भट्ठे से एक जलता हुआ अंगारा लेकर उसके साड़े पर फेंका। साड़े पर अंगारा गिरते ही वह साड़ा जलने लगा। प्रियदर्शना ने उसको बुझाया और कुम्हार से कहा - कुम्हार! जरा सावधानी से काम करो। देखो, मेरा साड़ा जल गया। कुम्हार ने उसी समय उत्तर दिया - तुम्हारे पति के मतानुसार तो वस्त्र सम्पूर्ण जल जाए तभी जल गया कह सकते हैं। भगवान के मतानुसार तो ठीक ही है क्योंकि थोड़ा सा जला तब भी जल गया कहा जाता है। तुम तो अपने पति के मत को मानती हो इसीलिये ऐसा बोलना युक्त नहीं है। यह सुनकर उसकी आँखें खुल गई और भगवान के मार्ग में आ गई। धर्म में स्थिर रहना यह समकित का पहला आभूषण है।

२. **प्रभावना** - मनुष्य के जीवन का प्रभाव पड़ना ही चाहिए। अहो! यह मनुष्य कितना धर्मिष्ठ है? धर्म के कारण ही इसका सारा जीवन बदल गया है! अहो, धर्म का कितना अचिन्त्य प्रभाव है। दान, शील, और तप से धर्म की प्रभावना करनी चाहिए। जबकि आज शासन की प्रभावना, खाने-पीने और बैण्ड-बाजे तक ही सीमित हो गई है। इस उत्सव में कैसे बैण्ड बज रहे थे? खाना अच्छा था या नहीं। यही सब देखते हैं, किन्तु धर्म की प्रभावना कैसी हुई, यह कोई भी नहीं देखता।

३. प्रभुभक्ति (भक्ति तीन प्रकार की)

प्रभुभक्ति - जिनेश्वर की तरफ भक्ति। प्रभु के प्रति राग-अनुराग होना चाहिए। जब जीवन में भक्ति प्रकट होती है, तब स्वयं ही जीवन को रङ्ग देती है। व्यसन के नशे की तरह भक्ति के रस का भी एक नशा होता है। भक्ति तीन प्रकार की है - १. पत्थर की पुतली समान। २. वस्त्रों की पुतली समान। ३. शक्कर की पुतली समान।

१. पत्थर की पुतली समान - पत्थर की पुतली को अगर पानी में डूबाए रखोगे तो उसमें तनिक भी पानी का प्रवेश होगा क्या? जो भक्ति पत्थर की पुतली के समान होगी तो हृदय में उसका रस तनिक भी प्रवेश नहीं करेगा। वह हमारे दुर्गुणों को कैसे दूर करेगी? आज पूजाओं को देखो और भावनाओं को देखो। अधिकांशत: किरायदारों से ही भक्ति होती है! ऐसी भक्ति से क्या फायदा?

२. वस्त्रों की पुतली समान - वस्त्रों की पुतली को पानी में डालोगे तो वह सम्पूर्ण रूप से पानी में भीग जाएगी। भक्ति भी इसी प्रकार की होनी चाहिए कि मनुष्य उस भक्तिरस से निर्मल हो जाए। स्वभाव में परिवर्तन आ जाए। दोषों का ज्ञान हो जाए। भक्तिरस में तर-बतर हो जाए।

३. शक्कर की पुतली समान - शक्कर की पुतली को पानी में डालोगे तो वह पिघलकर पानी के साथ एकमेक हो जाएगी। उसी प्रकार भक्त प्रभु की भक्ति में एकाकार हो जाता है। आनन्दघनजी महाराज ने स्तवन की चौबीसी बनाई थी, उसमें बावीसवें भगवान श्री नेमिनाथ का स्तवन बनाते हुए भगवान में ऐसे लीन हो गए जैसे राजुल, नेमिनाथ में समाविष्ट हो गयी। वैसे ही आनन्दघनजी महाराज भी भगवान् में समा गए। बाद के दो स्तवन की अन्य ने रचना कर उसमें ज़ोड़ दिए हैं। मीरा, नरसिंह मेहता, सन्त कबीर आदि की भक्ति शक्कर की पुतली के समान थी।

जब लग में तब प्रभु नहीं, जब प्रभु तब मैं नहीं,
प्रेम गली अति सांकरी वामें दो न समैं॥

दूसरे नम्बर की पूजा होगी तो तीसरे नम्बर की पूजा जीवन में आएगी ही। भगवान् पर बहुमान प्रगट होगा तभी सच्ची भक्ति आएगी। समकित के दो आभूषण शेष रहे हैं, उनका विचार आगे।

गुरुवचन में जिसकी श्रद्धा नहीं उसे
स्वप्न में भी सुख की सिद्धि नहीं मिलती
गुरु श्रद्धा यह महान वस्तु है, तीन तत्त्वों में भी
गुरु तत्त्व का माहात्म्य अधिक है।

संपे संपत सांपडे, संपे पामे सुख,
संप विनाना मानवी, पळ पळ पामे दुःख।

✳

दहेरासर में जाओ तब-**जिन भक्ति**
संसार के व्यवहार में रहो तब-**जीव मैत्री**
एकान्त में रहो तब-**आत्म भक्ति**

दर्शन - ज्ञान - चारित्र

आसोज सुदि १२

समकित का चौथा आभूषण (जिनशासन में कुशलता)

सिद्धचक्र यह एक अमूल्य पदार्थ है। उसकी उपासना करने से और उन-उन पदों का ध्यान धरने से उस पद की प्राप्ति होती है। जीवन में सब लोग पदों को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं किन्तु इन पदों को प्राप्त करने के लिए उनका प्रयत्न अत्यल्प होता है। एक बार जो सच्चा सम्यक् दर्शन प्राप्त हो जाए, तो जीवन-मरण का अन्त आ जाए। सम्यक्त्व भी आभूषणों से युक्त होता है, तभी शोभित होता है। **सम्यक्त्व का चौथा आभूषण है-जिनशासन में कुशलता।** व्यापार में जो मनुष्य कुशल, चतुर और चपल होगा तो वह आगे बढ़ जाता है। उसी प्रकार जिनशासन में कुशलता होनी चाहिए। व्यापारी स्वयं के माल को बेचने के लिए किस प्रकार की कुशलता से स्वयं के माल को दिखाता है। उसी प्रकार धर्म का भी ऐसी मधुरता से प्रदर्शन करना चाहिए कि सामने वाले व्यक्ति को ऐसा ही लगे कि अहो! ऐसा सुन्दर और ऐसा अद्‌भुत जैन धर्म है?

नास्तिक को पाठ पढ़ाने वाला प्रधान

एक राजा था। उसके दरबार में नास्तिक और आस्तिक सभी आते थे। उनमें से किसी ने कहा - जैनों के साधुओं का कहना पड़ेगा कि वे संसार के विषयों से अलिप्त रहकर मन के योग द्वारा मुक्ति की साधना करते हैं। उसी समय सभा में से कोई नास्तिक सेठ कह बैठा - यह सम्भव ही नहीं है। ऐसे विषयों से क्या साधु अलिप्त रह सकता है? राजा भी विचार में पड़ गया। प्रधान आस्तिकवादी और चतुर था। इन दोनों के गले में यह बात उतर जाए इसीलिए उसने एक नाटक खेला। राजा के आदमी से दगा करवाकर राजा का कीमती हार चुरा लिया और वह हार उस सेठ

के घर में छुपा दिया। राजा को खबर लगी कि, हार खो गया है। जाहिरात करी कि जिस किसी ने हार को चुराया हो वह वापिस दे जाए अन्यथा जिसके घर में से निकलेगा, उसको मृत्यु दण्ड की सजा दी जाएगी। सैनिकों ने चारों ओर खोजबीन की। प्रधान ने श्रेष्ठि के घर पर भी खोज करने के लिए आदमी भेजे। स्वयं ने ही जहाँ छुपाया था, वहीं स्वयं के आदमियों को खोजने के लिए भेजा। सेठ के घर हार मिल गया। सेठ को मृत्यु दण्ड की सजा घोषित की गई। प्रधान ने सेठ को कहा - जो तुम लबालब भरी हुई तेल की कटोरी को लेकर तुम्हारे घर से राजदरबार तक आ जाओ तो तुम मृत्यु दण्ड से बच सकते हो। उस समय ढोल-नगारे बजेंगे, किन्तु तेल की कटोरी में से एक बूंद तेल भी नीचे गिर गया तो उसी समय तुम्हारा शिरच्छेद कर दिया जाएगा और एक बूंद तेल भी नीचे नहीं गिरे और तुम राजदरबार में पहुँच जाओ तो तुम्हारी सजा माफ हो जाएगी। मृत्यु दण्ड के भय से सेठ ने इस बात को स्वीकार किया। तेल की कटोरी लेकर घर से निकला। चींटी की चाल से चलते हुए वह राजदरबार पहुँच गया। प्रधान पूछता है - सेठजी! मार्ग में आपने क्या देखा? सेठ कहता है - तेल की कटोरी के सिवाय मैंने कुछ नहीं देखा। प्रधान कहता है - तुम तो एक मात्र मृत्यु के डर से इतने भयभीत हो गए तो साधुलोग जो जन्ममरण के जंजाल से डर गए हैं, एक नहीं अनेक मृत्यु का भय उनके सन्मुख है। इस कारण से वे इस संसार के विषयों से अलिप्त बनकर साधना करते हैं। जिनको मृत्यु का भय लगता है, वे ही इस संसार के स्वाद से अलिप्त रहते हैं। तुम अपराधी नहीं थे, किन्तु तुमने कहा था कि साधुगण निर्लेप रह ही नहीं सकते। इसीलिए यह सब षड्यन्त्र रचा गया था। सभी ने जिनशासन की अनुमोदना की.... इसी प्रकार जिनशासन की प्रभावना करनी चाहिए।

५. तीर्थसेवा

तीर्थ दो प्रकार के होते हैं :- १. जङ्गम तीर्थ और २. स्थावर तीर्थ।

जङ्गम तीर्थ – अर्थात् महामुनियों की सेवा करना, भक्ति करना। **स्थावर तीर्थ** – अर्थात् तीर्थंकरों की कल्याणक भूमियों का स्पर्श करना, यात्रा करना। मन्दिर इत्यादि की व्यवस्था करना। उससे भी संघ विशाल बनता है। लोगों में धर्म की जाग्रति होती है। यह सब तीर्थ सेवा में आता है। ये पाँचों सम्यक्त्व की शोभा बढ़ाने वाले तथा सम्यक्त्व को उज्ज्वल करने वाले हैं, इसीलिए इनको आभूषण कहा गया है। जिस प्रकार ये सम्यक्त्व के आभूषण कहे गये हैं उसी प्रकार सम्यक्त्व को दूषित करने वाले पांच दोष भी है। उनसे मनुष्य को दूर रहना चाहिए।

समकित के पाँच दूषण

१. शंका – जिनमत में शंका करना। भगवान ने कहा है, वह सच्चा होगा या नहीं?

२. कांक्षा – अन्य धर्मों की इच्छा करना। किसी स्थान पर तन्त्र-मन्त्र आदि का चमत्कार देखकर उस-उस धर्म में जुड़ने की इच्छा करना। आज तो यह बहुत है। जहाँ चमत्कार वहाँ नमस्कार।

३. विचिकित्सा – धर्म सम्बन्धि फल में संदेह करना। मैं यह अनुष्ठान करता हूँ अथवा यह तप-जप करता हूँ, उसका फल मुझे मिलेगा या नहीं?

४. मिथ्यादृष्टि की प्रशंसा – मिथ्या धर्म की अथवा धर्मी की प्रगट में प्रशंसा नहीं करना। क्योंकि उससे जिनको सत्य-असत्य का ज्ञान नहीं हो ऐसे जीव इस सन्मार्ग को छोड़कर मिथ्या धर्म में फंस जाते हैं।

५. मिथ्यात्वी का परिचय – मिथ्याधर्मियों के साथ गाढ़ परिचय नहीं रखना। यह बात सभी पर लागू नहीं होती। जो देखा-देखी से ही इस धर्म में रह रहें हैं, उन्हीं के लिये यह युक्त है। छोटे पौधे के रक्षण के लिये ही वाड़ की आवश्यकता होती है। बड़े वृक्षों के लिए वाड़ की आवश्यकता नहीं होती है। अज्ञानी जीव सत्य मार्ग से भ्रष्ट न हों, इसीलिए मिथ्या दृष्टि से अधिक सम्पर्क नहीं रखना चाहिए।

यह पाँचों सम्यक्त्व को दूषित करने वाले होने से इनको सम्यक्त्व का दूषण कहा है। पंचपरमेष्ठि मिलने के बाद उसमें रुचि होना ही महत्त्व का है। जो पाँच परमेष्ठियों पर हमारी अधिक रुचि है, तब यह समझना चाहिए कि हमारे पास सम्यक् दर्शन है। जब सच्चा सम्यक् दर्शन होता है तब उसको ऐसा लगता है कि अनन्त जन्मों में जो यह आँख मुझे नहीं मिली थी ऐसी दिव्य आँख मुझे मिली है। भगवान् का मार्ग इसी दिव्य आँख के द्वारा ही देखने को प्राप्त होता है। चर्मचक्षु से नहीं देख सकते। यह चक्षु भी शास्त्रों के अध्ययन द्वारा तथा उसमें श्रद्धा होने से ही प्राप्त होता है। अरिहंत परमात्मा के मूल में भी सम्यक् दर्शन ही है। समकित प्राप्त होने के बाद ही उनके भवों की गणना होती है। ज्ञान और चारित्र इसका मूल है।

सातवाँ पद - नमो नाणस्स

सम्यक् दर्शन के आधार पर ही शासन का महल खड़ा है किन्तु उसके मूल में तो ज्ञान ही है। ज्ञान ही प्रकाश है। जीवन में अनादिकाल से फैले हुए मोह के अंधकार को दूर करने वाला ज्ञान है। दशवैकालिक में आता है - **'पढमं नाणं तओ दया'** अर्थात् प्रथम ज्ञान और उसके पश्चात् दया। अज्ञानियों को क्या खबर पड़ती है कि हिंसा किस में है और अहिंसा किस में है? हेय क्या है और उपादेय क्या है? ज्ञान हो तभी दया पाल सकते हैं।

किसी मकान में सूई खो गई हो। अब उसकी खोज कैसे की जाए? किन्तु यदि वह सूई डोरे के साथ पिरोई हुई होती है, तो खोज करते हुए समय लगेगा? उसी प्रकार हमारी आत्मा सूई है। यह सूई संसार के विषयों में खो गई है, किन्तु वह यदि ज्ञान रूपी डोरे के साथ पिरोई हुई है, तो उसको खोजने में समय नहीं लगेगा।

ज्ञानपद बोलने वाला है इसी के आधार पर दूसरे पद की महत्ता है। अरिहंत भगवान को केवलज्ञान होता है, तभी वे आगे बढ़ सकते हैं।

ज्ञान नहीं होता तो अरिहंत किस भांति बनते। **ज्ञान यह संसार सागर की दीवादांडी है।** मनुष्य अनेक जन्मों के कर्मों को स्वाध्याय द्वारा ही खपाता है। महापुरुष भी जब संसार की असारता को समझते हैं, तभी निकलते हैं! अज्ञानी मनुष्य करोड़ो भव तक तपादि क्रिया द्वारा जो कर्म खपाते हैं, उन कर्मों को तीन गुप्तियों से युक्त ऐसे ज्ञानी एक श्वासोश्वास में खपा/नष्ट कर देते हैं।

पहले हमारे बाप-दादा इतने लड्डू खाते थे, इतनी रोटी खाते थे और इतना घी पचा सकते थे। लेकिन आज तो नमकीन का जमाना आया है। यह तो भोजन की बात हुई। उसी प्रकार ज्ञान में पहले के श्रावक अनेक शास्त्रों को सुनते और पचाते थे। साधुओं को भी सावधान रहना पड़ता था। व्याख्यान में भी कोरे किस्से नहीं चलते थे। आगम ही पढ़े जाते थे। श्रावक बहुश्रुत कहलाते थे, लेकिन आज जिस प्रकार भोजन में नमकीन आ गया है, उसी प्रकार ज्ञान भी बेकार हो गया है अर्थात् हंसी-मजाक वाला बन गया है। आज तत्त्वज्ञान की बातें रुचिकर नहीं लगती। व्याख्यान हास्यप्रेरक हो वैसा ही व्याख्यान अच्छा लगता है। भूतकाल में श्रुतज्ञान से भी साधु पुरुष केवली कहे जाते थे। अर्थात् श्रुतकेवली कहे जाते थे।

आठवाँ पद - चारित्रपद

चारित्र यह क्रियापद है। जैसे क्रियापद से रहित वाक्य अपूर्ण होता है वैसे ही चारित्र पद के बिना सारे पद अधूरे हैं। वाक्य में कर्ता और क्रियापद होने ही चाहिए। अरिहंत-सिद्ध ये कर्ता हैं। दर्शन, ज्ञान और तप ये करण हैं और चारित्र यह क्रियापद है।

राग का त्याग और त्याग का राग

चक्रवर्ती जैसा समृद्धिशाली व्यक्ति भी तृण के समान छः खण्ड के वैभव का त्याग करके चारित्र मार्ग पर निकल पड़ता है, किसलिये

'चारित्र विण नहीं मुक्ति रे' संयम के बिना इस जीव का उद्धार नहीं हैं। संयम अर्थात् केवल वेश बदलना मात्र नहीं है, किन्तु जीवन में क्षमा, मृदुता, सरलता, निर्लेपता.... ये सब गुण आवश्यक हैं। सब लोग चारित्र लेने में समर्थ नहीं होते हैं, किन्तु उनकी चेतना में जो भोग के प्रति राग है, उसके स्थान पर त्याग के प्रति राग हो तो वे साधु की अपेक्षा भी बड़े-चड़े होते हैं। श्रीपाल महाराजा चारित्र के बिना भी ऊँचे स्थान पर पहुँचे थे। उसका कारण यह है कि उनके चित्त में अरिहंत आदि के प्रति अविचल राग था। त्याग का राग ठूंस-ठूंस कर भरा हुआ था। इसी कारण संयम के बिना भी उन्होंने उच्च गति प्राप्त कर ली। हमारे लिए यह विचार करना आवश्यक है कि हमारी चेतना में कौन बैठा हुआ है? घर और वैभव के पदार्थ या परमात्मा? अधिकांशतः मनुष्यों की चेतना में संसार के वैभव ही समाहित हैं। जिसकी ओर राग होता है, वहीं चित्त आकर्षित होता है। नवकारवाली गिनते-गिनते संसार के पदार्थों में क्षण-क्षण में ध्यान चला जाता है। संसार के पदार्थों की तरफ राग है, इसीलिए ही जाता है न! जो वीतराग की तरफ राग हो तो नवकारवाली गिनते हुए चित्त कहीं भी नहीं जाएगा। **जहाँ राग वहाँ खिंचाव**। शास्त्रकार कहते हैं कि चेतना में सिद्धचक्र के नवपदों को स्थान पर बैठाओ। तुम्हारा भवभ्रमण रुक जाएगा। यदि संसार के पदार्थों को हृदय में स्थापित करोगे तो भवभ्रमण बढ़ जाएगा। भूतकाल में जब अरिहंत परमात्मा विचरते थे, तब भी अनन्त आत्माएं उनके दर्शन से, वाणी से वंचित रहती थी। किसलिए? उनकी चेतना में अरिहंत की स्थापना नहीं थी। साधना में से ही सिद्धि मिलती है, किन्तु मनुष्य प्रसिद्धि के चक्कर में पड़ा हुआ है।

त्याग का भी अहंकार....!

कभी-कभी मनुष्य को त्याग का भी अहंकार आ जाता है। एक साधु थे। परिवार युक्त और सुखी घर के थे। एशो-आराम, मौज-मस्ती और वैभव को छोड़कर दीक्षा ली थी, किन्तु दीक्षा लेने के बाद भी उनके

मन में त्याग का अहंकार था। उन्होंने दूसरे साधु को बात-बात में कहा कि मैंने तो इतनी सारी ऋद्धि को लात मारकर के दीक्षा ली है। सामने विज्ञ और समझदार साधु थे। उन्होंने धीमे स्वर में कहा - महाराज! आपने लात तो अवश्य मारी किन्तु वह लात बराबर लगी हो ऐसा नहीं दिखाई देता क्योंकि पहले तो लक्ष्मी थी उसका अहंकार था और अब उसके त्याग का अहंकार है। पदार्थों का त्याग यह त्याग नहीं किन्तु उसकी तरफ के राग का त्याग ही सच्चा त्याग है। श्रीपाल के पास अखूट समृद्धि होने पर भी वे त्यागी की अपेक्षा भी बड़े-चड़े थे, क्योंकि उनमें वस्तुओं के राग का त्याग था।

जीवन में यदि शिकायत ही करनी हो तो इन तीन की करो....

१. भगवान् मुझे क्यों नहीं मिलते?
२. भगवान् मिल गये हैं, तो हमें रूचिकर क्यों नहीं लगते?
३. भगवान् रूचिकर लगते हैं, तो मैं स्वयं भगवान क्यों नहीं बन जाता?

नौवाँ पद - नमो तवस्स

आसोज सुदि १३

तप के दो भेद

सिद्धचक्र की उपासना अर्थात् चेतना की उपासना। तुम्हारी चेतना में क्या है? तप की भावना है अथवा भोजन की भावना। चेतना में से ही संसार उत्पन्न होता है और चेतना में से ही मोक्ष का आविर्भाव होता है। दोनों का जन्म स्थान एक है, किन्तु एक भवभ्रमण का कारण है जबकि एक भवविराम का कारण है। उपवास करना कठिन लगता है, किन्तु जिसके चित्त में उपवास के प्रति आकर्षण होता है, उसको ऐसा लगता है कि अरे, उपवास कैसा सुन्दर तप है। खाने-पीने की कोई चिन्ता नहीं। यह शुद्ध विचार भी उपवास का फल दे सकता है। चारित्र के द्वारा आते हुए कर्मों को तो रोक लगी, किन्तु अन्दर रही हुई वासनाओं का क्या? ज्ञानी भगवंत कहते हैं कि तप द्वारा उस वासना को नष्ट किया जा सकता है। कर्म रूपी ईंधन को जलाने के लिए तप यह अग्नि है। तप के दो प्रकार हैं - १. बाह्य तप और २. अभ्यन्तर तप।

बाह्य तप के छः भेद

१. अनशन २. उनोदरी ३. वृत्ति संक्षेप ४. रसत्याग ५. कायक्लेश ६. संलीनता।

१. अनशन :- अनशन अर्थात् खाना नहीं। एकासणा, उपवास को भी अनशन कहते हैं और यावज्जीव भोजन का त्याग करते हैं उसको भी अनशन कहते हैं। इस प्रकार इस तप की आराधना करनी चाहिए। भगवान् जानते हैं कि इस भव में मेरा मोक्ष होने वाला है, तब भी भगवान्

कैसी दुष्कर तपस्या की आराधना करते हैं। साढ़े बारह वर्ष तक भगवान् ने भूमि का स्पर्श भी नहीं किया अर्थात् बैठने का नहीं, सोने का नहीं, बस खड़े-खड़े ध्यान में ही रहने का है। ऐसी घोर तपश्चर्या भगवान ने की थी।

२. उनोदरी :- चारों इन्द्रियों का आधार जीभ पर है। संसार के सब प्रकार के क्लेश जीभ के आभारी हैं। शरीर के रोग भी अधिकांशत: जीभ के कारण ही होते हैं। चौबीसों घण्टे मनुष्य की चक्की चालू रहती है। अनशन नहीं हो सकता तो उनके लिए यह तप बहुत उत्तम है। उनोदरी अर्थात् भुख से कम खाना। उनोदरी से बहुत प्रकार के रोग रुक जाते हैं। यह तप बहुत ही कठिन है, क्योंकि मनुष्य के सामने इच्छित भोजन हो तो वह ठूंस-ठूंस कर ही खाता है। इस तप में तीन बार खाने का होता है फिर भी यह तप कहलाता है। इस तप को करने से शरीर के अधिकांशत: रोग खत्म हो जाते हैं।

३. वृत्तिसंक्षेप :- वृत्तियों का संक्षेप करना। कम द्रव्यों का उपयोग करना। आज तो विविध प्रकार के पदार्थ, अनेक प्रकार के फल और अनेक प्रकार की सब्जियाँ देखने को मिलती है, अगर जो अधिक वस्तुएं उदर में जाएंगी तो वे एकत्रित होकर झगड़ा करेंगी। **भीतर एकत्रित होकर ये सब लड़ती है और मनुष्य को रुलाती है।** पूर्णत: कम द्रव्य और सादा भोजन ही उत्तम भोजन है। आज तो विविध प्रकार के पदार्थ वैभव की निशानी माने जाते हैं। कितने ही प्रकार के अचार और मुरब्बे होते है। किसी-किसी अवसर पर दिन के भोजन की एक थाली १५० अथवा २०० रुपयों की पड़ जाती है। अरे, हमने अभी सुना है कि एक भाई के लग्न में एक थाली की कीमत ४०० रुपया थी। भोजन तो शरीर को टिकाने के लिए है जबकि आज शरीर को खत्म करने के लिए बन गया है। **आहार वैसी डकार**! आहार विलासी तो जीवन विलासी अर्थात् जिन्दगी की बरबादी।

४. रसत्याग :- पूर्व के तप में कहा गया है कि पदार्थ कम खाए जाएं किन्तु कम पदार्थ भी अधिक रस वाले नहीं खाने चाहिए। कोई ऐसा कहता है कि मैं तो केवल दो चीज ही खाऊँगा किन्तु लड्डू और खीर। तो यह नहीं चलेगा। कम पदार्थ हों किन्तु अधिक रस वाले (गरिष्ट) न हों। अति स्निग्ध आहार जीव को प्रमादी बनाता है। तुमने अनुभव किया होगा कि किसी जीमण में अधिक गरिष्ट पदार्थ खाकर आए। बाद में आँखें घिरने लगी, आराम करना ही पड़ता है, ऐसा होता है न! इसीलिए भगवान ने कहा है कि अल्पाहार और वह भी अल्प रस वाला आहार करना चाहिए। यह भी तप का एक प्रकार है।

५. कायक्लेश :- खाने-पीने के पश्चात् बैठे रहना नहीं चाहिए। अन्यथा शरीर की चर्बी बढ़ जाती है। आज के मनुष्यों के उसमें भी अधिकांशत: स्त्रियों के शरीर कैसे बेडौल बन गए हैं। बस बैठे-बैठे खाना और नौकरों को आदेश करना। उससे शरीर में चर्बी नहीं बढ़ेगी तो और क्या होगा? शरीर को तनिक भी श्रम नहीं पड़ना चाहिए। एक मंजिल भी उनको चढ़ने का नहीं, लिफ्ट तैयार रहती है। शास्त्रकार कहते हैं कि जीवन में अन्य किसी प्रकार का श्रम न हों तो अन्त में मन्दिर में जाकर १०० खमासमण देने चाहिए। जब काया प्रमादी बनती है। तो मन तो प्रमादी बनेगा ही और आलसी मन विकल्पों के जाल बुनकर कर्मों को बांधा करता है। कायक्लेश को भी तप कहा गया है। प्रतिक्रमण आदि में क्रियाएं खड़े-खड़े करनी चाहिए। हमें लोच का कष्ट होता है। यह सब कायक्लेश है।

६. संलीनता :- हमारा चित्त बाह्य पदार्थों पर ही भटकता रहता है। उसको यदि भीतर की तरफ ले जाएं तभी परमात्मा मिलते हैं। बाहर भटकते हुए चित्त को भीतर की ओर ले जाना यह महातप है। कछुए का उदाहरण आता है। कछुआ स्वयं के शरीर के समस्त अंगों को संकुचित

कर भीतर की ओर ले लेता है, उसके बाद उसके ऊपर से गाड़ी भी निकल जाए तब भी उस कछुए को किसी प्रकार की तकलीफ नहीं होती। उसी प्रकार हमें भी पांचों इन्द्रियों को संकुचित कर लेना चाहिए। पाँचों इन्द्रियाँ बाहर भटक रही हैं। उसको तप के द्वारा भीतर की ओर मोड़ें। '**पराणि खानि व्यतृणत् स्वयंभूः।**' विधाता ने पाँचों इन्द्रियों का प्रवाह बाहर की तरफ रखा है। आँखें तो बाहर के ही पदार्थों को देखती है और उसी में आनन्द का अनुभव करती है। वैसे ही कान भी बाहर का ही सुनते हैं। भीतर से उठी आवाज को दबा देते हैं। यदि इन समस्त इन्द्रियों को भीतर की तरफ ले जाएं, तो अनेक क्लेशों से मुक्ति मिल सकती है। यह सब विडम्बनाएं इन्द्रियों के विषयों को प्राप्त करने के लिए ही होती है न! इन्द्रियाँ जितनी उपयोगी हैं, उतनी ही खतरनाक भी हैं। **बाह्य तप का मुख्य सम्बन्ध जिह्वा के साथ है। जबकि अभ्यन्तर तप का मुख्य सम्बन्ध आत्मा के साथ है।**

अभ्यन्तर तप के छः भेद

१. प्रायश्चित २. विनय ३. वैयावच्च ४. स्वाध्याय ५. ध्यान ६. व्युत्सर्ग (कायोत्सर्ग)

१. प्रायश्चित :- बाहर का तप लोगों को दिखाई देता है। तुम उपवास करो या एकासणा। उसकी सभी लोगों को खबर पड़ जाती है, किन्तु अभ्यन्तर तप को तो वह व्यक्ति स्वयं ही जान पाता है। **प्रायश्चित अर्थात् प्रायः करके चित्त को शुद्ध करने वाला।** किसी भी प्रकार का पाप करने के पश्चात् गुरु के पास जाकर उसको कहना अति दुष्कर है। स्वयं के द्वारा स्वयं की भूल को स्वीकार करने के लिए कोई तैयार नहीं होता। स्वीकार करना ही बड़ी बात है। स्वयं के मुख से स्वयं की भूल को स्वीकार करते समय मनुष्य के लिये अहंकार बाधक बनता है। पहले तो उसे स्वयं की भूल दिखाई भी नहीं देती। भूल दृष्टिगत हो जाए तो उसे

स्वीकार करना भी अत्यन्त कठिन है। चण्डकौशिक नाग किस कारण से बना? ऋषि के भव में भूल की क्षमा नहीं मांगी इसीलिए ही न! भूल कितनी छोटी सी, सजा कितनी बड़ी! इसीलिए कहा जाता है कि **स्वीकार में सुख और इन्कार में दुःख।**

२. विनय :- विनय की आराधना करना अत्यन्त ही कठिन है। सबको ऐसा लगता है '**मैं कुछ हूँ**'। यही सूत्र सबके दिमाग में घूमता रहता है। इस सूत्र को दूर करने के लिए विनय की अत्यन्त आवश्यकता है। दिमाग को पहले खाली करो फिर देखो कि अरिहंत आदि नवपदों का प्रकाश कैसे फैलता है? विनय अर्थात् आठों कर्मों का विनयन (दूर करने का काम) जो करें। उसी को विनय कहते हैं।

३. वैयावच्च :- प्रायश्चित जीवन में कदाचित् आ जाए। अरे! विनय भी आ जाए, किन्तु स्वयं के शरीर को झुकाना बहुत ही दुष्कर है। **सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।** योगियों को साधना करना सहज है, किन्तु सेवा धर्म अत्यन्त कठिन है। साधना में तो मन को एकाग्र ही बनाना पड़ता है, जबकि इसमें तो मन का भोग देना पड़ता है। इच्छाओं का भोग देना पड़ता है। सेवा कभी भी निष्फल नहीं जाती। यह गुण अप्रतिपाती है। इस तप से अनन्त जन्मों के कर्म भी नष्ट हो जाते हैं। ऋषभदेव भगवान् के पूर्व जन्म की बात है।

बाहुबली ने बल को अक्षय किया

भगवान ऋषभदेव के पीठ और महापीठ तथा बाहु और सुबाहु नाम के चार शिष्य थे। पीठ और महापीठ स्वाध्याय ही किया करते थे। चौदह पूर्वधारी थे। जबकि बाहु और सुबाहु दोनों ही वैयावच्च किया करते थे। पाँच सौ साधुओं की गोचरी - पानी लाते थे। उनके पैर भी दबाकर सेवा करते थे। भगवान् बाहु-सुबाहु के काम की प्रशंसा करते थे। यह प्रशंसा पीठ और महापीठ को सहन नहीं होती थी। उन दोनों ने मन

में विचार किया कि सब स्थानों पर काम ही प्यारा होता है। हम रात-दिन दिमाग की कसरत करते रहते हैं अर्थात् स्वाध्याय करते रहते हैं, तब भी हमारी प्रशंसा नहीं होती और इन दोनों की प्रशंसा होती है। मन में यह विचार आते ही अपनी भावना से गिरे। पहले गुणस्थानक पर पहुँच गये और स्त्रीवेद कर्म का बंधन किया। दोनों काल धर्म प्राप्त कर ब्राह्मी और सुन्दरी बने। साधुओं की वैयावच्च करने वाले बाहु-सुबाहु भी कालधर्म प्राप्त कर भरत और बाहुबली बनें। पूजा की ढाल में आता है कि '**बाहुबली बल अक्षय कीनो।**' यह तप अत्यधिक महत्त्व का है। इसमें शरीर को झुकाना पड़ता है।

४. स्वाध्याय :- स्वाध्याय अर्थात् स्वयं का अध्ययन। मनुष्य दूसरों का अध्ययन करने में ही लगा हुआ है। स्वाध्याय करेगा तभी स्वयं के दोष दिखेंगे न! स्वाध्याय से यह ध्यान में आता है कि ऐसा करने से ऐसा होता है। उससे खोई हुई आत्मा, गिरी हुई आत्मा भी ऊँची आती है। प्रायश्चित् करने से यह फल मिलता है। विनय करने से लघुता प्राप्त होती है। वैयावच्च करने से यह लाभ होता है। यह सब कौन समझाता है? स्वाध्याय ही न! परमात्मा के समीप कौन पहुँचाता है? पहले के पुरुष स्वयं के लाखों वर्षों के आयुष्य को भी स्वाध्याय के बल पर बिता देते थे। आज तो हमको यह २५-५० वर्ष भी बिताने हों तो भारी पड़ते हैं। इसका कारण यह है कि स्वाध्याय प्रायःकर लुप्त हो गया है अथवा बहुत कम हो गया है। हाँ, बातों का स्वाध्याय आ गया है। पत्र-पत्रिका और मासिक पत्रिकाओं का स्वाध्याय करके हमने अपने हृदय को पत्थर जैसा कठोर बना लिया है। पहले तो किसी व्यक्ति की मौत के समाचार सुनते ही चौंक उठते थे, जबकि आज के पत्र-पत्रिकाओं में अनेकों की मृत्यु के समाचार पढ़ते हुए एक हाथ में चाय का कप और दूसरे हाथ में पत्रिका होती है। मन में किञ्चित् भी चिन्ता नहीं होती, किन्तु स्वाद लेते हुए चाय

के घूंट उतारते रहते हैं। तनिक भी हृदय को ठेस नहीं लगती। **साधु के लिए तो स्वाध्याय सबसे बड़ा भोजन है।** तप में न्यूनता होगी तो चलेगा किन्तु स्वाध्याय तो चाहिए ही। स्वाध्याय अर्थात् गाथाओं को रट-रट कर कण्ठस्थ करना मात्र नहीं है बल्कि उसके अर्थ में रमणता होनी चाहिए। यही सच्चा स्वाध्याय है। चिन्तन - मनन.. निदिध्यासन ये स्वाध्याय के फल हैं।

जैनों का तप उत्तम कोटि का है। कहीं पर भी ऐसे तप देखने को नहीं मिलेंगे। भगवान महावीर ने हमको कितने उत्तम में उत्तम तप दिए हैं, उनके हम पर अनंत उपकार हैं।

कंचन, कामिनी, पुत्र-पौत्र यह सब प्रेय पदार्थ हैं। सर्वदा पराधीन हैं। जबकि हमारे समक्ष क्षमा, सरलता, कोमलता, निर्लोभता आदि श्रेय पदार्थ हैं जो सर्वदा स्वाधीन हैं। श्रेय पदार्थों से अत्यन्त लाभ होता है और क्लेश कम होता है। जबकि प्रेय पदार्थों से लाभ कम होता है और क्लेश अधिक होता है। किन्तु आज का मनुष्य श्रेय को छोड़कर प्रेय के चक्कर में पड़ा हुआ है।

सिद्धचक्र का ध्यान

आसोज सुदि १४

महापुरुष कहते हैं कि ८४ लाख जीवयोनि रूपी भयंकर अटवी को पार करते-करते महापुण्य के उदय से मानव जन्म को प्राप्त किया, किन्तु अभी एक विशाल अटवी को पार करना शेष है। वह है, वृत्तियों की, विकारों की और विचारों की। इस अटवी को पार करने के लिए भगवान का साथ चाहिए ही। ८४ लाख योनि के संस्कारों को जलाने के लिए तप रूपी अग्नि ही काम आती है। चेतना के भीतर भरे हुए वैभव-विलास के पदार्थों को दूर कर वहाँ नवपद की स्थापना करो। हम तप के अभ्यन्तर भेदों को देख रहे हैं। पाँचवाँ भेद है ध्यान। अर्थात् सिद्धचक्र का ध्यान। हमारी चेतना में सिद्धचक्र के स्थान पर विलास का चक्र स्थापित है। भगवान के बदले भोगवान ही बैठे हुए हैं। जब तक नवकारवाली गिननी हो, तब तक चेतना में रहे हुए सांसारिक पदार्थों को दूर कर अरिहंत आदि को लाना चाहिए। किन्तु जब ध्यान पूर्ण होता है, तो स्वाभाविक रूप से अरिहंत आदि चले जाते हैं और संसार के पदार्थ वापिस आकर अपना स्थान ले लेते हैं। सांसारिक पदार्थों को चित्त से खदेड़ने में बहुत परिश्रम लगता है। हाँ इनको लाने के लिए तनिक भी मेहनत नहीं करनी पड़ती। ये स्वत: ही आकर खड़े हो जाते हैं। क्योंकि हमारे हृदय में सांसारिक पदार्थों के प्रति अतिशय राग है। हमारा ध्यान भी एक प्रकार का व्यायाम ही बन जाता है। श्वासों को देखो और लो। एक मानसिक व्यायाम के अतिरिक्त दूसरा कुछ भी हाथ में नहीं आता है। भगवान के ध्यान को श्वासोश्वासमय बनाने की आवश्यकता है। हमको खबर भी नहीं होगी और हमारे श्वास में अरिहंत का स्मरण चलता होगा। इसको 'अजपाजप' कहा जाता है। जब जाप ऐसा अजपा बनेगा तब ही वास्तविक आनन्द प्राप्त होगा और सहजता से समाधि भी आ जायेगी।

सारे अनुष्ठान चेतना को बदलने के लिए ही हैं। पाँचों इन्द्रियों का पोषण करने के लिए जिह्वेन्द्रिय ही काम करती है। पहले बाह्य तप से जिह्वा को वश में करने का है। जिह्वा के वश में आने पर चारों इन्द्रियाँ शान्त हो जायेगी। उसके बाद संलीनता के द्वारा पाँचों इन्द्रियों को भीतर की तरफ मोड़ने का है। स्वाध्याय द्वारा जीव का उत्थान होगा। आज तो इस मानव देह का मूल्य ही क्या है? किसी दुर्घटना में मर गए.... बीमा करवाया हुआ हो तो दो-पाँच लाख रुपये मिल जाते हैं अथवा सरकार की ओर से पाँच-पच्चीस हजार की मदद मिल जाती है.... सब ऊहापोह शान्त हो जाता है.... किन्तु शास्त्रकार कहते हैं कि यह जन्म तो महामूल्यवान है। इसका मूल्य तो कोई आंक ही नहीं सकता।

६. व्युत्सर्गः- वैभव जन्य पदार्थों का संक्षेप करना। आहार तप का वर्णन पहले कर चुके हैं। **व्युत्सर्ग अर्थात् उपकरणों का तप।** कम से कम वस्त्र, अलंकार और फर्नीचर रखो। आज यह तप पूर्णतः लुप्त हो जाने के कारण जीवन में उदारता आती ही नहीं है। **धन और बातें हम हजम नहीं कर सकते।** इन दोनों को हजम करने का कार्य बहुत ही कठिन है। किसी की बात सुनते ही हमें चटपटी लगती है कि कब मैं किसी न किसी को कह दूँ! पैसा भी ऐसी ही वस्तु है। वह भी आता है, तो बंगले की शोभा में या तन की शोभा में लगाकर ही चैन मिलता है। यदि ये भोग अपने वश में हो जाए तो यह सारा पैसा दीन-दुःखियों पर खर्च कर सकते हैं। व्युत्सर्ग क्या काम करता है, इस पर एक कथा आती है।

एक के पुण्य से अनेक बच गए

कमलपुर नगर में कमलसेन नाम का एक राजा था। उस नगर में एक नैमित्तिक आया। पुराने जमाने में नैमित्तिक लोग बहुत रहते थे। इनकी साधना भी शिखर पर रहती थी। सब कुछ किताबों में लिखा हुआ नहीं होता है। कोई मन्त्र की साधना के द्वारा तो कोई गुरु की आराधना

के द्वारा सचोट ज्ञान प्राप्त करते थे। वैद्य भी ऐसे थे कि तुम्हारी नाड़ी देखकर ही कह देते थे कि तुमने आज क्या खाया है? कितने ही तो आकृति पर से ही रोगों का निदान कर देते थे। आज ये सब साधनाएं पूर्णतः लुप्त हो गई हैं। नैमित्तिक लोग जो कहते थे वह कदापि झूठ नहीं होता था। उन्होंने ऐसा सचोट ज्ञान प्राप्त कर रखा था। राजसभा में नैमित्तिक आता है। राजा ने स्वाभाविक रूप से पूछा - बोलिए, आपके ज्ञान में अभी क्या दिखाई दे रहा है? नैमित्तिक ने ज्ञान के बल से कहा कि बारह वर्ष का भयंकर दुष्काल पड़ेगा। आपको जो व्यवस्था करनी हो वह कर लें। यह सुनकर राजा चिन्तातुर हो गया। प्रजा को बारह-बारह वर्ष तक किस प्रकार से बचाना? सब उदास हो गए। संग्रह भी कितना किया जा सकता है? अन्न पानी का संग्रह भी कितना किया जाए? क्या देश छोड़कर परदेस चले जाएं? यह भी संभव कहाँ है? जमा हुआ व्यापार-धंधा और घरबार आदि छोड़कर जाना भी कोई सहज नहीं होता है। चौमासा निकट में आ गया। आकाश में से आग की वर्षा हो रही है। राजा को ऐसा लगा कि नैमित्तिक की बात सच होने वाली है। सब चिन्ता में थे। किसी को कोई मार्ग नहीं दिखाई देता था। आषाढ़ महीना समाप्त होने को था। एक दिन आकाश में एक बादल दिखाई दिया। देखते-देखते उसका विकसित स्वरूप होता गया और थोड़े ही समय में ऐसी मूसलाधार वर्षा प्रारम्भ हुई। सारी पृथ्वी जलमग्न बन गई। इतनी अधिक वर्षा हुई कि एक ही वर्षा से लोग तृप्त हो गये। लोग विचार में पड़ गए क्योंकि नैमित्तिक का वचन कभी भी असत्य नहीं होता था। नैमित्तिक को बुलाकर पूछा कि तुम्हारा ज्ञान कभी भी गलत नहीं होता था, आज क्या हो रहा है? वह नैमित्तिक भी कहता है - हे राजन्! मैंने अपने ज्ञान के अनुसार ग्रहों की दशा देखकर कहा था। उसके अनुसार इस प्रकार की वृष्टि हो ही नहीं सकती। मैं स्वयं सन्देह में हूँ, यह कोई चमत्कार ही लगता है।

प्रश्न का निराकरण

कुछ समय बाद उस नगर में युगन्धर नाम के ज्ञानी गुरु महाराज पधारे। राजा और प्रजा सभी लोग आचार्य भगवान की देशना सुनने के लिए गए। देशना के अन्त में राजा ने पूछा - भगवन्! बहुत अरसे से मेरे मन में एक प्रश्न घूम रहा है, आप उसका निराकरण करिए.... हमारे नैमित्तिक का नैमित्त ज्ञान कभी भी असत्य नहीं हुआ किन्तु इस समय किस कारण से गलत हुआ? गुरु महाराज कहते हैं कि नैमित्तिक का ज्ञान सच्चा है किन्तु तुम्हारे नगर में एक महापुण्यवान व्यक्ति ने जन्म लिया है। मानो स्वयं पुण्य ही देह धारण करके आया हो! उसके प्रभाव से सारे देश से दुष्काल दूर हो गया है। राजा को आश्चर्य हुआ। उसने गुरु महाराज से पूछा - हे भगवन्! उसने ऐसा कितना पुण्य बाँधा होगा कि जिसके कारण इतनी बड़ी आपत्ति टल गई? यह पुण्य उसने कैसे बाँधा? गुरु महाराज कहते हैं - सुनो....

किसमें से पुण्य बाँधा

एक नगर में एक बालक रहता था। उसके माँ-बाप मर गए थे। अनाथ बालक भटकता हुआ, मार खाता हुआ भीख माँगकर स्वयं का पेट भरता था। भिक्षा मे प्राप्त जैसे-तैसे पदार्थ खाने से उसके शरीर में कोढ़ फैल गया था। कोढ़ यह चिपकने वाला रोग गिना जाता है.... इसके कारण सब लोग उसका तिरस्कार करने लगे.... बेचारा जाए भी तो कहाँ? ऐसे में उसने किसी साधु महात्मा को देखा। उसको विश्वास हुआ कि ये मेरी बात को अच्छी तरह सुनेंगे। इसीलिए उसने साधु महाराज से कहा - भगवन्! मरे ऊपर उपकार कीजिए। मेरा सब लोग तिरस्कार करते हैं कोई भी आंगन में मुझे खड़ा नहीं रहने देता। रोटी भी नहीं देता। भगवन् कोई औषधि बताइये जिससे कि यह मेरा रोग मिट जाए। जगत् में साधु-सन्त ही ऐसे होते हैं कि जो दुःखीजनों के दुःख की बात सुनते हैं और उसकी संभाल भी लेते हैं। सुखी वर्ग तो स्वयं के सुख में डूबा हुआ रहता

है। उसको तो दुःखी के दुःख की कल्पना भी नहीं आती। साधु महाराज ने कहा – जो तुझे रोगरहित बनना है तो पहले तू विरति में आ फिर तू खाने पर संयम रख तभी तेरा यह रोग मिट सकता है। वह बेचारा भी रोग के कारण बहुत उद्विग्न हो गया था, इसलिए विरति अर्थात् पच्चक्खाण के बंधन में आने के लिए तैयार हो गया। उसने साधु महाराज के पास से नियम लिया कि एक अनाज, एक विगई, एक बार भोजन और चार बार पानी पीने के अतिरिक्त अन्य सब पदार्थों का त्याग करता हूँ। खाने पर संयम रखने से धीमे-धीमे उसका शरीर रोग-रहित होने लगा। आज भी ऐसी अनेक घटनाएं देखने को मिलती है कि कोई कैंसर जैसी भयंकर व्याधि से पीड़ित था। उस मनुष्य को ऐसा लगा कि अब मैं शीघ्र ही प्रस्थान करने वाला हूँ। ऐसी दशा में इस मौके को हाथ से क्यों जाने दूं। कई महात्मा ऐसी जीवन को हरण करने वाली व्याधि के होने पर उपवास पर उतर जाते हैं। कितने ही अनशन स्वीकार कर लेते हैं और खाद्य पदार्थों के बन्द होते ही शरीर के भीतर उस बीमारी को जब पोषण नहीं मिलता तो वह स्वतः ही नाश होने लगती है तथा स्वास्थ्य सुधरने लगता है। प्राणों को हरण करने वाली व्याधि भी मिट जाती है। कहा जाता है कि **लङ्घनम् परमौषधम्**। उपवास यह बड़ी से बड़ी दवा है। उस बालक की तबीयत सुधरने पर उस साधु महाराज पर अत्यधिक श्रद्धा उत्पन्न हुई और धर्म पर सद्‌भावना भी जागृत हुई। उसके निरोगी होते ही उसके पास धन भी आने लगा। पदार्थ तो उसे चार ही खाने थे इसलिए धन भी बढ़ने लगा। उस पैसे में से उसने व्यापार-धंधा प्रारम्भ किया। भीख मांगना छोड़ दिया। इसी को भाग्य की लीला कहते हैं। कभी यह खिल जाती है और कभी कुम्हला जाती है। इस भाग्य के सम्बन्ध में कुछ कह नहीं सकते। इस लड़के का भी धंधा दिन दुगुना और रात चौगुना बढ़ता गया। वह लखपति ही नहीं करोड़पति बन गया। बड़ा सेठ बन गया। स्वयं का वृत्तिसंक्षेप का नियम था। अतः उस धन का उपयोग कहाँ

करे? इस कारण उसने अपने धन का सदुपयोग करने का निश्चय किया। दीन-दु:खियों में खूब व्यय करने लगा। इसमें भी दुष्काल जैसा समय आने पर उसने स्वयं के घर के द्वार खुले कर दिये। साधु सन्तों की भी उल्लास से भक्ति करता है। इस सब सत्कार्यों से उसने महापुण्य का उपार्जन किया। वहाँ से मृत्यु प्राप्त कर वह देवलोक में जाता है। उस देवलोक में भी सुखों में लिप्त न होकर एक ही भावना रखता है कि भगवान मुझे तुम्हारा शासन मिले। उत्तम संस्कारी कुल में मेरा जन्म हो। ऐसी उच्च भावना रखता हुआ वह वहाँ से च्युत होकर राजन् तुम्हारे नगर में एक सेठ के यहाँ जन्म लिया है। उस महापुण्यशाली के प्रभाव से ही तेरी नगरी दुष्काल की आपत्ति से बच गई है। देशना पूर्ण होने पर राजा परिवार के साथ उस सेठ के यहाँ जाता है। पालने में झूलते हुए पुत्र को हाथ में लेकर कहता है - हे जगत् के आधार! दुर्भिक्षभञ्जन तुम्हे मेरा नमस्कार हो। वास्तव में इस राज्य के सच्चे राजा तो तुम ही हो। उसका **धर्मनृप** नाम रखता है और उसका राज्याभिषेक करता है। उसके पुण्य प्रभाव के कारण ही सारा राज्य रोगादि व्याधियों से मुक्त हो जाता है। अन्त में वह राज्य का त्याग कर दीक्षा ग्रहण करता है और उसी भव में केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष को प्राप्त करता है। देखो! व्युत्सर्ग ने कैसा काम किया। आज हमारे जीवन में व्युत्सर्ग है ही नहीं! न तो खाने में व्युत्सर्ग है और न ही वस्त्रपात्र आदि सामग्री में.... जो आता है उसे डालो पेट में.... और जो आता है उसे डालो पेटी में। **शरीर और मन को निरोग रखने के लिए तप यह अमोघ दवा है।**

चरक ऋषि की परीक्षा

चरकसंहिता ये आयुर्वेद का सर्वोत्तम ग्रन्थ है। चरक नाम के ऋषि ने ही इसकी रचना की है। चरक का कथन प्रमाण भूत है या नहीं, जानने के लिए एक बार आयुर्वेद के देवों ने पक्षी का रूप धारण कर चरक की परीक्षा की। चरक जहाँ बैठे हुए थे, वहाँ आकर पक्षी बोला -

कोऽरुक् - अर्थात् निरोगी कौन रहता है। चरक ने उत्तर दिया - हितभुक् अर्थात् जो पथ्य पूर्वक खाता है वह। पक्षी ने पुनः पूछा - कोऽरुक्। अर्थात् निरोगी कौन है। चरक ने कहा - मितभुक् अर्थात् सीमित खाने वाला। भूख लगने पर ही खाने वाला। आज तो भूख हो या न हो.... किन्तु कई प्रकार से संस्कारित करके चटपटा करेगा और लोलुपता के साथ खाने बैठेगा। पक्षी ने तीसरी बार पूछा - कोऽरुक्। चरक ने उत्तर दिया - अशाकभुक् - अर्थात् सब्जी रहित खाने वाला। इन तीन बातों की पालना करने वाला निरोगी रहता है।

+++

जगत् में तीन तत्त्व महान् हैं। देवतत्त्व, गुरुतत्त्व और धर्मतत्त्व। ये तीनों ही तत्त्व यदि जीवन के साथ जुड़ जाएं तो जीवन धन्य/सफल बन जाए। देवतत्त्व और धर्मतत्त्व को समझाने वाले गुरु होते हैं "देवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन" देव रुष्ट हो गये तो गुरु बचा लेंगे परन्तु यदि गुरु रुष्ट हो गये तो कोई भी बचा नहीं सकता। गुरुतत्त्व के द्वारा ही समस्त गुणों की प्राप्ति हो सकती है। तीर्थंकर परमात्मा का यह सम्पूर्ण शासन गुरुतत्त्व पर ही चल रहा है।

महामंत्र नवकार

आसोज सुदि पूनम

जगत् के कल्याण के लिये भगवान् ने करुणापूर्वक हमें धर्म का मङ्गलमय मार्ग बताया है। जैसे सिद्धचक्र का महत्व है वैसे ही सिद्धचक्र का ध्यान करने वाले, उपासना करने वाले श्रीपाल महाराजा का भी उतना ही महत्व है। क्योंकि श्रीपाल पात्र थे। पात्र के बिना धर्म आता नहीं। हमें धर्म प्राप्त करना है, तो पात्र बनना पड़ेगा। जैसे बीज का महत्व है, उसी प्रकार जमीन का भी उतना ही महत्व है। पत्थर पर बीज उगाने से क्या वह उग जाता है? योग्य भूमि में ही बीज उत्पन्न हो सकता है। बरसात का पानी सब जगह एक समान होता है, किन्तु स्वाति नक्षत्र में सीप में गिरा हुआ पानी मोती बन जाता है। पानी के लिए सीप ही पात्र है। सिद्धिचक्र की आराधना के लिए श्रीपाल महाराज पात्र बने तभी इस सिद्धचक्र का महत्व दुनिया समझ सकी। हम केवल धर्म से ही चिपके हुए हैं। पात्र बनने की कभी भी कोशिश नहीं की। पात्र बनने के लिए मनुष्य को महान् बनना पड़ता है, सज्जन बनना पड़ता है।

१०० अथवा १००० का नोट छोटे बालक के हाथ में दिया जाए और वही नोट किसी बड़े व्यक्ति के हाथ में दिया जाए, दोनों के बीच में कितना अन्तर पड़ता है। छोटे बालक के हाथ में नोट एक कागज का टुकड़ा होता है। उसकी कोई कीमत नहीं होती। तुम्हारे मन में इस नोट के लिये कितना स्थान है? क्योंकि तुम इसकी कीमत समझ चुके हो। उसी प्रकार जो नवपद का मूल्य समझ जाएगा वही सच्चे अर्थ में आराधना कर सकेगा।

तीन-तीन जन्मों को सुधारने वाला....!

नवकार मन्त्र तुम्हारे तीन-तीन जन्मों को सुधार देगा। यह मन्त्र इस लोक में सुख-शान्ति देगा। परलोक में सद्गति देगा और उसके बाद

भी उत्तम कुल में जन्म देगा। नवकार मन्त्र औषधि का भी काम करता है। आरोग्य भी देता है इसीलिए हमारे मन में स्फुरणा होती है कि मैं इसकी फांकी ले लू.... इस वस्तु का सेवन बन्द कर दूं। इस प्रकार की अन्दर से प्रेरणा होती है। वैसे शरीर को रोग-रहित बनाने की शक्ति भी नवपद के जाप में है। आज की दवाएं तो रोग मिटाने के स्थान पर नए रोगों को आमंत्रित करती है। सचमुच में तो **No Medicine is Medicine** अर्थात् दवा न लेना ही सबसे बड़ी दवा है। अहमदाबाद शहर में दस कदम चलोगे तो डॉक्टर का साईन बोर्ड नजर आएगा। ऐसा होने पर भी दवाखाने बढ़ते ही जाते हैं। गाँवों में भी डॉक्टरों का धन्धा बहुत अच्छा चलता है। रात-दिन बीमार बढ़ते ही जाते हैं। पहले का जमाना तो ऐसा था कि सौ आदमियों में भी एक आदमी बीमार ढूंढने पर ही मिलता था। आज तो तनिक सिर दर्द हुआ तो तत्काल ही चल दिए दवाखाने। उस युग में तो चाहे जैसा भयंकर बीमार हो तो पहले वृद्ध माँ को पूछता था। बुड्ढी माँए दवाओं को जानती थी। अन्य मार्ग न मिलने पर ही वैद्य के पास जाना होता था.... इसीलिए तो यह कहावत है - **वैद्य, वेश्या ने वकील त्रणे रोकड़ीया, जोशी, डोशी ने वटेमार्गु त्रणे फोगटीया**। वैद्य के पास जाओगे तो पहले फीस मांगेगा। रुपया होगा तो ही बराबर दवा मिलेगी। वेश्या तो धन देखकर ही आगे का कदम उठाती है। तुम्हारे पास धन होगा तभी खड़ा रहने देती है.... और वकील तो आज तुम देख ही रहे हो कि पहले फीस और फिर केस लड़ने का.... ये तीनों ही नकद काम करते हैं। जबकि पहले बुड्ढी मांएँ और वैद्य निःशुल्क ही उपचार करते थे। जोशी लोग भी पैसा नहीं लेते थे। पथिक से चाहे जब भी रास्ता पूछ सकते थे। आज तो विभक्त परिवार होने के कारण वृद्धाओं की कोई कीमत नहीं रही। इसीलिए तो बीमारियाँ भी बढ़ रही है। भगवान का नाम, सब दवाओं में अमूल्य दवा है।

सम्पत्ति विष है

नवकार तुम्हे सदा ही प्रसन्नता प्रदान करेगा। आज तो महंगाई इतनी बढ़ गई है और साथ ही मनुष्य की तृष्णा भी इतनी बलवती हो गई है कि घर के स्त्री-पुरुषों और सन्तानों आदि सभी को धंधे के लिए दौड़ना पड़ता है। मनुष्य नहीं किन्तु मानों यन्त्र काम कर रहे हों ऐसा प्रतीत होता है। मुख पर आभा देखने को ही नहीं मिलती है। जबकि यह मन्त्र तुम्हारे सब कामों को सरल बना देगा। तुम्हारे जीवन में सन्तोष आएगा साथ ही प्रसन्नता भी आयेंगी। जितनी अधिक सम्पत्ति होती है, वह जहर बन जाती है। कोई भी वस्तु की जब अति होती है, तब वह विष बन जाती है। **Everything in eccess is poision.** इसीलिए **अति सर्वत्र वर्जयेत्।** अति का सब स्थानों पर त्याग करना चाहिए। किन्तु मनुष्य को सम्पत्ति कभी भी अति नहीं लगती है। लड्डू शक्तिवर्द्धक माने जाते हैं किन्तु अधिकाधिक खाने पर क्या होता है? जीवन देता है या जीवन लेता है? शास्त्रकार कहते हैं कि तुम तुम्हारे वैभव पर जहर का लेबल लगा दो। उसका तुम उपयोग करोगे फिर भी उससे दूर रहोगे। जैसे डॉक्टरों के यहाँ जिस दवा की बोतल पर जहर लिखा हुआ होता है वह किसी को पीने के लिए देता है क्या? अरे, किसी को लगाता भी है तो तत्काल ही साबुन से हाथ धो लेता है। तुम्हारी अति सम्पत्ति भी विष के समान है। इस विष से तुम्हे नवकार ही बचा सकता है। इसमें शांति, संतोष, समता रूपी अमृत है, जो तुम्हे सुखी कर सकता है।

नवकार मन्त्र इस जन्म को तो सुधारता ही है साथ ही आँख बन्द होने पर भी इस मन्त्र के प्रभाव से तुम्हे सद्गति प्राप्त होती है। इतना ही नहीं स्वर्ग में जाने के बाद भी वहाँ से उत्तम कुल में जन्म मिलता है। इस प्रकार तीन भवों की जिम्मेदारी लेता है। तुम्हारा यह लोक भी सुधारता है, तुम्हारा परलोक भी सुधारता है और भवान्तर भी सुधारता है। यदि

निष्ठा पूर्वक एकाग्रता से इसको गिना जाता है तो। ऐसी अनंत शक्ति इस महामन्त्र में रही हुई है।

पहले जीवन में प्रतीति - दृढ़ विश्वास होना चाहिए कि इस मन्त्र ने ही मुझे बचाया है। अन्त समय में करोड़ों की सम्पत्ति अथवा स्वजन परिवार कोई भी बचाने नहीं आता है। चाहे जैसे भयंकर से भयंकर संकट में भी यही मेरी रक्षा करने वाला है, ऐसा दृढ़ निश्चय जब तुम्हारे मन में जाग्रत होगा तभी उसके चमत्कार जीवन में देखने को मिलेंगे। आज भी इस महामन्त्र के आराधकों के जीवन में चमत्कार देखने और सुनने को मिलते हैं।

नवपद के ध्यान के साथ शुभ विचारों की परम्परा भी आवश्यक है। जिसके जीवन में एक ही भावना रम रही हो कि जगत के जीवों का कल्याण कैसे हो? एक ही चिन्ता हो कि जगत् के जीव सुःखी कैसे हो? वही व्यक्ति पूजनीय बनता है। उसके समागम में आने वाले व्यक्ति को भी सुख की अनुभूति होती है। जैसे इत्र के समागम में आने वाले को सुगन्ध मिलती है या नहीं? चन्दन के समागम में आने वाले को शीतलता मिलती है या नहीं? आज तो तुम स्वयं ही अन्दर-अन्दर जलते रहते हो, तो वहाँ दूसरे को ठण्डक कैसे दोगे? हाथी के चारों तरफ छोटे-छोटे बच्चे घूमते रहते हैं। वे ही बच्चे क्या व्याघ्र के चारों तरफ घूम सकते हैं? नहीं तुम्हे बाघ जैसा क्रूर जीव बनना है? आस-पास में कोई फिर ही न सके। तुम दूसरे को सुखी करने की इच्छा अथवा दूसरे लोग दुःखी न हों ऐसी वांछा करोगे तो जगत् के पुण्य के परमाणु तुम्हारी तरफ आकर्षित होकर आएंगे। तुम जैसा विचार करोगे वैसे ही परमाणु प्रभावित होकर तुम्हारे पास आएंगे। शुभ विचारों से शुभ विचार आएंगे और तुम्हारा कल्याण करेंगे। साथ ही तुम्हारे सम्पर्क में आने वाले का भी कल्याण होगा। तुम अपने रोम-रोम में दूसरों के लिए शुभ की भावना को भर दो। सर्व मङ्गल का श्लोक प्रतिदिन बोलते हो, किन्तु जीवन में उसका व्यवहार भी हो कि

जहाँ मैं पैर रखूं वहाँ रहे हुए सर्व जीवों का कल्याण हो। सेवा पूजा, या सामायिक-प्रतिक्रमण नहीं कर सकते हो तो दुकान में अथवा व्यापार में व्यस्त हो तब भी बैठे-बेठे ऐसी शुभ भावनाओं का बन्धन कर सकते हो न! तीर्थंकर नाम कर्म तो बांधने वाले अनेक होते हैं, किन्तु निकाचित तो कोई विरल आत्मा ही कर सकती है। शेष तो तीर्थंकर नाम कर्म का प्रदेश उदय भोग लेते हैं। बहुमूल्य ऋद्धि या मान-सम्मान पाते हैं। एक व्यक्ति के पुण्य प्रताप से आज हजारों वर्ष के बाद भी संघ खड़ा है। उसके नाम पर करोड़ो रुपये व्यय होते हैं। उसकी छाया भारत वर्ष में तो है ही किन्तु विदेशों में भी फैली हुई है। कैसा प्रचण्ड पुण्य! यह पुण्य किसमें से आया? तीसरे भव में मासक्षमण में सतत् यह ही विचारधारा की कि जगत् के जीव सु:खी कैसे हों? हमारी विचारधारा में हम कैसे सुखी हों यही भावना होती है। इसीलिए तो नवपद का जाप करने पर भी फलदायी नहीं होता है। सुविचारधारा से ही जाप शीघ्रता से फलदायी बनता है।

- सर्वजीवों का ध्यान करने पर वह अरिहंत का उपासक बनता है
- साधनाओं का ध्यान करने पर वह सिद्ध का उपासक बनता है
- सदाचार का पालन करने पर वह आचार्य का उपासक बनता है
- सम्यक् ज्ञान का सेवन करने पर वह उपाध्याय का उपासक बनता है
- सहाध्यायी की सेवा करने पर वह साधु का उपासक बनता है

शक्कर का पानी पित्त को शांत करता है।
जिनवाणी का अमृत पान चित्त को शांत करता है।

वृद्धानुग

कार्तिक वदि १

गुणस्वरूप धर्म

शास्त्रकार महाराज हमको सुखी बनाने के लिए मार्ग बता रहे हैं। सर्वत्र धर्म ही सुखी होने का मार्ग है। बाह्य दृष्टि से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि धर्म बहुत बढ़ गया है किन्तु धर्म का अन्तरङ्ग स्वरूप नष्ट हो गया है। इसी कारण ही धर्म बढ़ते हुए भी जगत् में अशान्ति घटने के स्थान पर बढ़ रही है। जब तक गुण स्वरूप में धर्म को स्वीकार नहीं करेंगे तब तक धर्म का ढांचा, ढांचा ही रहेगा। उसमें प्राण नहीं आ सकते। कोई भी धर्म गुण के साथ होगा तो उसका फल अमूल्य बन जाएगा। चाहे दान हो, शील हो अथवा तप हो। शालीभद्र का दान इतनी अल्प मात्रा में था, किन्तु उसमें कितने अधिक भाव भरे हुए थे। **अभी तो दान देना भी हो तो अपने दिखावे के लिए, स्वयं के अहम् को पुष्ट करने के लिए अथवा दूसरे को नीचा दिखाने के लिए। ऐसे धर्म का क्या फल मिलेगा?** एक तरफ शराब पीते हों और दूसरी तरफ भगवान को विराजमान करते हों तो उस भगवान में ओज किस प्रकार आएगा? हमारा प्रतिमा की ओर भावोल्लास किस प्रकार प्रकट होगा? भले ही धर्म थोड़ा करो किन्तु गुण के साथ करो। '**स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते भयात्**।' अर्थात् धर्म का छोटा आचरण भी बड़े से बड़े भय में से उभार लेता है। अर्थात् रक्षा करता है।

सत्तरवाँ गुण - वृद्धानुग। धर्मार्थी मनुष्य वृद्ध का अनुसरण करने वाला होना चाहिए।

मनुष्य को सर्वदा बड़े की संगति करना योग्य है। सामान्यतः मनुष्य युवक होता है, तो युवक की ही अभिलाषा करता है। परन्तु उससे

युवकों की बुद्धि को उच्छृंखल बना देता है। युवानों के विचारों में सर्वदा आवेग का तत्त्व अधिक होता है। वृद्ध की संगत न हो तो वह अंकुश में नहीं रहती। वृद्ध मनुष्य जीवन में अनेक ऊँच-नीच देख चुका होता है इसीलिए वह अनुभवी बन जाता है। उसकी बुद्धि स्थिर होती है। पके हुए घड़े में चाहे जितना भी गरम पानी डाला जाए तो क्या उसका नुकसान होता है? और जो कच्चे घड़े में पानी डाला जाए तो उसको टूटते हुए कितनी देर लगती है? जैसे वह घड़ा अग्नि की ताप से पक जाता है, उसी प्रकार वृद्ध मनुष्य भी जीवन के मीठे-कड़वे अनुभवों के कारण अनुभवी होता है। कहीं भी झगड़ा खड़ा हो तो उसका शमन करने के लिए वृद्ध की आवश्यकता पड़ती है। इसी कारण जो मनुष्य वृद्धों की संगत में रहता है, उसमें स्वत: ही गुण आ जाते हैं।

वृद्ध किसे कहें?

वृद्ध किसे कहें? क्या सिर पर सफेद बाल आ जाने से ही वह वृद्ध कहा जाएगा। शास्त्रकार कहते हैं कि हाँ वे केवल अवस्था से वृद्ध कहलाते हैं, किन्तु उसके अतिरिक्त भी जिनमें तप, श्रुत, धैर्य, विवेक और इन्द्रियों पर संयम आदि गुण हों तो वह तरुण भी वृद्ध कहलाता है। आज के युग में सफेद बाल होने पर भी वह टी.वी. के सामने आँखे फाड़-फाड़ कर देखता रहता है.... मित्र! इस अवस्था में तो टी.वी. देखने में क्या रखा है? वह उत्तर देगा - साहेब! क्या करे, घर में बैठे-बैठे समय नहीं बीतता। समय बीताने के लिए ही यह देखते हैं। भगवान का नाम लो। टी.वी. देखने से तुम्हारा कल्याण नहीं होगा। सिर पर सफेद बाल आ जाने मात्र से वह कोई वृद्ध नहीं बन जाता। उसके साथ गुण भी आवश्यक है। आज तो तरुणाई में भी सफेद बाल आ जाते हैं। सन्त ज्ञानेश्वर ने १६ वर्ष की अवस्था में ही गीता की रचना की थी और २४ वर्ष की अवस्था में तो समाधि ले ली थी। ये ज्ञानवृद्ध कहलाते हैं। शास्त्रों

के चिन्तन द्वारा जो बुद्धि पूर्ण रूपेण परिपक्व हो जाती है.... किसी कार्य में जल्दबाजी नहीं करतें। धैर्य से काम लेते हैं। कार्य और अकार्य का विवेक करते हैं.... चाहे पंचेन्द्रियों के विषय सामने आकर खड़े हों, चाहे मकान का रूप हो, अथवा कपड़े का रूप हो, अथवा १००० के नोटों के बन्डल रूप हों। यह आँख का विषय है। इसी तरह विविध प्रकार के विषय सामने आकर खड़े होने पर भी जिसका एक रोम भी प्रभावित नहीं होता उसी को वृद्ध कहते हैं। वृद्ध मनुष्य की प्रत्येक प्रवृत्ति विचार करने के बाद ही होती है। शराब के नशे के समान तरुणाई में भी एक नशा होता है। शराब पीकर वाहन चलाने वाले कितनी दुर्घटनाएं करते हैं? आज प्राय: कर दुर्घटनाओं का मुख्य कारण ही यही है। स्वस्थ बुद्धि से चलाएँ तो इस प्रकार की दुर्घटनाएं बहुत कम हो सकती है। शराब के नशे में मनुष्य को होश भी नहीं रहता है। उसी प्रकार जवानी के नशे में होश भूले हुए युवक झटके से काम करना ही ठीक समझते हैं। जमे-जमाए घर को कुछ ही मिनटों में बिखेर कर नष्ट कर देते हैं। वृद्ध मनुष्यों की संगत से जीवन बहुत कुछ बदल जाता है।

हृदयपारखी बुढ़िया की कथा

एक गाँव में एक बुढ़ी रहती थी। उस समय में आने-जाने के लिए गाड़ी आदि साधन नहीं थे। उस समय के लोग प्राय: करके पैदल चलकर एक गाँव से दूसरे गाँव जाते थे। उस रास्ते में जो भी गाँव आता वहाँ किसी भले आदमी के यहाँ रात को रूक जाते। उस समय में अतिथि देव के समान माना जाता था। अतिथि सत्कार बहुत अच्छा मानते थे। कोई दो व्यापारी घी और चमड़ा खरीदने के लिए उस गाँव की सीमा से जा रहे थे। सांझ हो चुकी थी। अत: किसी के यहाँ रात्रि निवास करने के लिए गाँव में जाते हैं। इस बुढ़िया के वहाँ रात्रि निवास करते हैं। बुढ़िया दोनों का सत्कार करती है और पूछती है भाई! किस कार्य से निकले हो।

एक ने कहा कि मैं तो घी लेने के लिए निकला हूँ और दूसरे ने कहा मैं चमड़ा लेने के लिए निकला हूँ। दोनों को संध्या का भोजन कराने के लिए बुढ़िया बिठाती है। घी के व्यापारी को बुढ़िया घर के अन्दर बिठाती है और चमड़े के व्यापारी को घर के बाहर पड़साल में बिठाती है। उस युग में अनेक घरों में ऐसी व्यवस्था रहती थी कि हल्की कोम के मनुष्यों को घर के किनारे अथवा पड़साल में बिठाते थे। आज तो सब कुछ वर्णसंकर हो गया। तुम्हारे ही पड़ोस में ढेढ़ और भंगी भी रहते हैं और कसाई या मुसलमान भी रहते हैं.... तुम्हारी सन्तानें नीच कुल में विवाह कर लेती हैं.... इस प्रकार का बहुत कुछ आज के युग में (देश में) चल रहा है। संस्कार की पूंजी पूर्णतः नष्ट हो चुकी है। दूसरे दिन दोनों व्यापारी आगे चले। कुछ समय पश्चात् दोनों ने अपना-अपना माल लेकर वापिस आते हुए, इसी बुढ़िया के यहाँ डेरा डाला। बुढ़िया ने दोनों का स्वागत किया। दोनों को भोजन के लिए बिठाया, किन्तु इस समय चमड़े के व्यापारी को भीतर बिठाया और घी के व्यापारी को बाहर बिठाया। घी के व्यापारी को यह बात सहन नहीं हुई, इसीलिए उसने बुढ़िया से पूछा - माँजी! ऐसा कैसा व्यवहार? जाते समय तो आपने मुझे अन्दर बिठाया था और चमड़े के व्यापारी को बाहर बिठाया था और आज उसको अन्दर बिठाया और मुझे बाहर बिठाया, इसका क्या कारण है? बुढ़िया कहती है - भाई! घी को लाने लिए जाते समय तुम्हारे विचार बहुत सुन्दर थे। तुम विचार करते थे कि मैं जहाँ जाऊं वहाँ सुकाल हो.... घी और दूध की नदियाँ बहती हो तो बहुत बढ़िया होगा, जिसके कारण मुझे घी सस्ते भाव में मिलेगा। जबकि चमड़े के व्यापारी का ऐसा विचार था कि मैं जहाँ जाऊं वहाँ दुष्काल हो तो अच्छा। दुष्काल से पशु अधिक मात्रा में मरेंगे और मुझे चमड़ा सस्ते भाव में मिलेगा। आज तुम घी और चमड़ा लेकर वापिस आए हो। इससे तुम दोनों के विचार में अन्तर आ गया है। तुम्हें यह विचार आया कि अब मैं जहाँ जा रहा हूँ वहाँ अकाल हो तो अच्छा, इससे मेरा

घी ऊँचे भाव में बिकेगा तथा मुझे अधिक फायदा होगा। चमड़े वाला यह विचार करता है कि मैं जहाँ जाऊँ वहाँ सुकाल हो, जिससे पशुओं का मरण नहीं हो और मेरे चमड़े के भाव अधिक बड़े। विचारों का अत्यधिक प्रभाव होता है। जिसे काला बाजार कहते हैं क्या उस बाजार को काले रङ्ग से रङ्गा हुआ होता है? अथवा काले रङ्ग का साईन बोर्ड लगा हुआ रहता है? नहीं, विचार काले हैं, इसीलिए वह काला बाजार कहलाता है। वृद्ध होने के कारण उसने जीवन में बहुत अनुभव किया था इस कारण उसकी बुद्धि भी परिपक्व हो गई थी। उसने दोनों व्यापारियों के मन के विचारों को जान लिया था। दोनों ने अपनी-अपनी भूल स्वीकार की और जीवन को सुधार लिया।

संग वैसा ही रंग

सोने के मेरु पर्वत पर घास आदि पैदा होते ही है। वे भी सोने के भाव में ही बिक जाते हैं न! क्योंकि सोने के जैसी ही लगती है। उसी प्रकार अच्छे मनुष्यों की संगत से दूषित विचार वाला मनुष्य भी अच्छा बन जाता है। जैसी संगति हो वैसा रंग लग ही जाता है। **जंगल में खोए हुए व्यक्ति को आसानी से रास्ता मिल जाता है, किन्तु यौवन में खोए हुए व्यक्ति को मार्ग मिलना बहुत दुर्लभ होता है।** यह छोटी सी जिन्दगी भी बहुत मूल्यवान है। इस छोटी सी जिन्दगी में बड़ी से बड़ी कमाई हो सकती है। **वीतराग स्तोत्र** में आचार्य श्री **हेमचन्द्रसूरि महाराज** ने कहा है -

यत्राल्पेनापि कालेन, त्वद्भक्तेः फलमाप्यते।
कलिकालः स एकोऽस्तु, कृतं कृतयुगादिभिः॥

लोग भले ही कहें कि कलियुग है, किन्तु इस कलियुग में भी थोड़े से समय में बहुत कुछ कमाया जा सकता है। जबकि सत्युग के समय लम्बी आयुष्य में भी एक सेकंड के प्रमाद के कारण कहाँ से कहाँ

फेंक दिया जाता है, ऐसा कहा जाता है। खाना-पीना, इज्जत, मान-सम्मान ये सब तो सामान्य में सामान्य वस्तुएँ हैं। पर परमात्मा के भजन से वह छोटी सी इस जिन्दगी में भी महान् से महान् बन सकता है।

जिन्दगी में एक पल ऐसा भी आता है कि उस पल में डूब गए तो डूब गए और निकल गए तो पार उतर गए.... यह पल है संसार के बन्धनों में पड़ने का....!

समकित के पाँच आभूषण-

1. स्थैर्य-स्थिरता, 2. प्रभावना, 3. प्रभु भक्ति, 4. जिनशासन में कुशलता, 5. तीर्थ सेवा (जंगम, स्थावर)

समकित के पाँच दोष

1. शंका, 2. कांक्षा, 3. विचिकित्सा, 4. मिथ्यादृष्टि की प्रशंसा, 5. मिथ्यात्वी का परिचय।

वृद्धानुग

कार्तिक वदि २

वाणी रूपी किरणें

आत्मा अनन्त गुणों का स्वामी है, किन्तु वे सब गुण आच्छादित हो गए हैं। जैसे सूर्यास्त के समय कमल कैसे बन्द हो जाता है वैसे ही हमारा गुण रूपी कमल भी बन्द हो गया है। उसको विकसित करना है। गुरुवाणी रूपी किरणें उन पर पड़ने से वह खिल जाता है, किन्तु इन किरणों को हम ग्रहण कर सकें तभी न!

किसी भी वस्तु को प्राप्त करने के बाद जो उसके योग्य नहीं बनेंगे तो हाथ में आई हुई बहुमूल्य वस्तु भी चली जाती है। यदि बालक को सच्चा कोहिनूर हीरा दिया जाए तो वह उसका क्या करेगा? फैंक देगा न! क्योंकि बालक उस हीरे के योग्य ही नहीं है। उसको उस हीरे की वास्तविक कीमत का ज्ञान भी नहीं है। वैसे ही हमें भी इस धर्म रूपी हीरे की कीमत समझने के लिए योग्य बनना पड़ेगा। योग्य बनने के लिए गुणों को ग्रहण करना पड़ेगा।

हम धर्मार्थी व्यक्ति के १७वें गुण वृद्धानुग पर विचार कर रहे हैं। जवान मनुष्यों में जो उन्माद, आवेश और उर्मियां होती है वे वृद्ध मनुष्यों में ठण्डी पड़ जाती है। सोच-समझकर कदम उठाने वाले होते हैं। वृद्धों के पास में बैठेंगे तो हमारे में भी स्थिरता आयेंगी। अनेक गुण और दोष संसर्ग से ही आते हैं। आज वृद्ध किसी को अच्छा नहीं लगता है। यही कारण है कि अशान्ति और क्लेश पैदा हो जाते हैं। अपने यहाँ कहावत है कि **घरडा गाडां वाळे**? यह कहावत ऐसे ही नहीं पड़ी है....

घरडा गाडां वाळे – (दृष्टान्त)

किसी गाँव में विवाह का अवसर था। बारात लेकर जाने का था। युवा पीढ़ी उन्माद में चढ़ गई, और सब युवकों ने मिलकर यह निश्चय

किया कि बारात में एक भी वृद्ध को नहीं ले जाएँगे। उस समय में वाहन नहीं थे। बैलगाड़ियों से ही व्यवहार चलता था। दो-चार गाड़े भरकर बारात निकली। घर का जो मुखिया था उसको ऐसा लगा कि यह सब कुछ गलत हो रहा है। यह जवानी का जोश कुछ नया ही तमाशा करके आएगा। ये उन्माद के आवेग में चढ़े हुए हैं.... सोचे-समझे बिना ही कार्य कर रहे हैं.... युवकों को समझाना भी कठिन है.... उस मुखिया ने यह विचार किया कि युवकों को खबर भी नहीं पड़े इस तरह से मैं इनके साथ चला जाऊं। गाड़े के नीचे वस्तुओं को रखने के लिए एक स्थान विशेष होता है। उसमें वह वृद्ध छुपकर बैठ गया। दूसरे गाँव बारात पहुँची। समधी ने देखा कि बारात में कोई भी बुड्ढा नहीं है। देखुं तो सही की युवक कितने बुद्धिशाली हैं? समधी ने परीक्षा करने के लिए युवक वर्ग से कहा कि तुम्हारे गाँव के कुएं को तुम यहाँ ले आओ तभी मैं मेरी कन्या का विवाह कर सकता हूँ। युवक वर्ग तो चिन्ता में पड़ गये कि कुएं को कैसे लाया जाए। कुएं को कोई पैर नहीं होते हैं कि वह चलकर यहाँ आ जाए? क्या करना? जब तक कुआं यहाँ नहीं आएगा, तब तक वह कन्या का विवाह नहीं करेगा.... उनको कोई मार्ग नजर नहीं आया। गाड़ों को वापिस लौटाने का विचार कर ही रहे थे, उसी समय गाड़े के नीचे छुपा हुआ वृद्ध बाहर निकला। उसने पूछा - क्या बात है? उत्तर मिला - समधी कुएं को लाने की बात करते हैं। कुआं किस प्रकार आ सकता है? उत्तर मिला - इसमें क्या है? समधी के पास चलते हैं, उसको मैं जवाब दूंगा। वहाँ जाकर उस वृद्ध ने कहा - देखो भाई, हमारे गाँव का कुआं बहुत ही शरम वाला है, साथ ही वह गाँवड़े का है। वह अकेला शहर में नहीं आ सकता। अनजाने गाँव में जाने के लिए भौमिया/मार्ग जानकार की भी आवश्यकता होती है। कुएं को कोई भी मनुष्य भौमिया की तरह हो तो वह काम का नहीं है। कुएं को तो भौमिया के रूप में कुआं ही चाहिए इसीलिए तुम तम्हारे गाँव के कुएं को लेने के लिए भेजो। यह क्या सम्भव है? समधी ने धन्यवाद दिया। गाड़े वापिस आए। इसके बाद तो युवक

वर्ग की आँखे खुल गई। जो आज यह वृद्ध साथ नहीं होता तो विवाह क्रिया सम्पन्न होने के पहले ही वापिस लौटना पड़ता। इसीलिए यह कहावत पड़ी है कि **घरडां गाडां वाळे**।

अरर....! बुड्ढा जी गया....!

वृद्ध मनुष्य चाहे जैसे विकट समय में भी अपनी बुद्धि से मार्ग निकाल लेते हैं। आज के युवा वर्ग को वृद्ध लोग फूंटी आँख भी नहीं सुहाते। वृद्धों की करुण कहानी सुनते हैं तो हम भी धूज उठते हैं। कुछ ही दिनों पूर्व एक घटना पढ़ने में आई थी। एक गाँव में एक छोटा सा परिवार रहता था। माँ-बाप वृद्ध थे। माँ तो थोड़ी बीमारी भोगकर परलोक चली गई थी। बाप अकेला पड़ गया था। घर में उसके पुत्र, बहू और पोते मौज-मस्ती के साथ रहते थे, किन्तु पिता को किसी भी भाव नहीं पूछते थे। वे अलग कमरे में अकेले ही मन को मसोस कर बैठे रहते थे। भोजन का समय होने पर बहू आकर भोजन की थाली रख जाती थी। उसे वह रुचिकर है या नहीं फिर भी मन मारकर खाना पड़ता था। वह सोचता है कि पहले तो प्रतिदिन पत्नी सामने बैठकर हवा डालती जाती थी और बातें करती जाती थी। उस खाने में बहुत आनन्द आता था। आज तो क्या चाहिए? ऐसा पूछने के लिए भी कोई नहीं आता। कभी-कभी तो सांझ ढलने तक भी वह ऐसा का ऐसा ही खटिया पर पड़ा रहता। मन में बहुत आकुल-व्याकुल रहता। इस कारण से उसकी बीमारी बढ़ती गई, क्योंकि **प्रसन्नता यह मन की खुराक है**। यदि प्रसन्नता हो तो चाहे जैसा भयंकर रोग भी उस मनुष्य पर अधिक प्रभाव नहीं डालता, जबकि संताप तो रोग-रहित होने पर भी नये-नये रोगों को पैदा कर देता हैं। अब तो उस वृद्ध के श्वासोंश्वास भी धीमे पड़ने लग गए थे। पुत्र एवं पुत्रवधू आपस में विचार करते हैं कि अब तो यह बुड्ढा अधिक जीए ऐसा नहीं लगता है। इसलिए वृद्ध के मरने के बाद हम पत्रिका में इसका फोटो छपवा देंगे और नीचे अपना नाम लिखवा देंगे। उसी समय दूसरा बोला - उस विज्ञापन

में केवल हमारा नाम ही नहीं, बल्कि अपनी पत्नी और पुत्रों के नाम भी लिखवाएंगे। इस प्रकार वे उस बुढ़े के मरने की राह देख रहे थे। दो दिन बीत गए, उसकी पुत्री ससुराल से पिहर आई और अपने पिता की ऐसी दयनीय दशा देखकर उसने भाईयों से कहा - भाई! पिताजी को तो प्रभा शंकर वैद्य पर पूर्ण श्रद्धा थी। अभी तक वे उन्हीं की दवा लेते रहते थे। हम भी एक बार उस वैद्य को बुलाएँ तो? पुत्रों के हृदय में तो यह बात थी कि पिताजी कब मरें? वे उनके उपचार के लिये क्यों प्रयत्न करते? कैसा स्वार्थी संसार है! कैसी अधम कोटि की विचारधारा है? यह देश कैसे सुखी होगा? बहन को बुरा न लगे इसीलिए बेमन ही उन्होंने वैद्य को बुलाया। वैद्य ने आकर किसी औषधि को पीस कर वृद्ध को पिलाई। यह औषधि थोड़े ही समय में असर दिखाने लगी। धीमे-धीमे वृद्ध ने आँखे खोली। दो-चार घण्टे के बाद दूसरी खुराक दी.... वृद्ध के शरीर में स्वस्थता का संचार होने लगा। दूसरे दिन तो वह वृद्ध बोलने लगा। लड़कों के मुख काली स्याही पोतने के समान काले हो गए। अरे रे....! यह बुड्ढा तो जी गया। आज की सन्तानों के जीवन में कितना कालुष्य भरा हुआ है। यही कारण है कि घर-घर में क्लेश और अशान्ति दृष्टिगत होती हैं। माता-पिता का आशीर्वाद दवा की अपेक्षा भी अधिक प्रभावशाली होता है। सामान्य में सामान्य मनुष्य भी माता-पिता के आशीर्वाद से कहाँ का कहाँ पहुँच जाता है। वृद्ध मनुष्यों को तो केवल आश्रय की आवश्यकता होती है। किन्तु आज तो व्यापार से थके हुए आते हैं और अपनी पत्नी के साथ गप्पे मारने के लिए बैठ जाते हैं अथवा टी.वी. देखने लग जाते हैं। किन्तु घर में रहे हुए वृद्ध माता-पिता के साथ बोलने की भी आवश्यकता नहीं समझते। वह जी रहा है या मर रहा है, यह देखने का भी उन्हें समय नहीं मिलता। बस आज का युवक वर्ग तो मौज-मस्ती या इधर-उधर भटकने में ही आनन्द मानता है। माँ-बाप कुछ कहने जाएं उसके पहले ही उन्हें दो-चार बातें सुननी पड़ती हैं। इसलिए वे बेचारे मौन

धारण करके बैठे रहते हैं। आज देश भी युवक वर्ग के हाथों में होने के कारण बरबादी के मार्ग पर जा रहा है। राज करने वाला व्यक्ति स्थिर चित्त का होना चाहिए अथवा युवक भले ही हो किन्तु गुणवृद्ध या ज्ञानवृद्ध होना चाहिए।

मन्त्री पद के लायक कौन?

एक राजा था। उसके मन्त्री मण्डल में कितने ही युवक थे और कितने ही वृद्ध भी थे। युवक मन्त्री मण्डल ने एक बार राजा से कहा – ये वृद्ध लोग पूर्ण रूप से बेकार हैं। आपके राज्य में इनकी क्या जरूरत है? इनको निकाल देना चाहिए। व्यर्थ में वेतन लेते हैं। राजा यह सब सुनकर चुप रहता है। उस पर वृद्धों की संगत का असर होने से स्थिर चित्त वाला था। राजा ने सोचा कि ये लोग रोज बकवास करते हैं इसीलिए इनको शिक्षा देनी चाहिए कि वृद्धों की क्यों जरूरत है? इसीलिए एक दिन परीक्षा के लिए उसने राज्य सभा में युवक मन्त्री वर्ग से एक प्रश्न पूछा- मेरे सिर पर लात मारे उसको क्यों शिक्षा देनी चाहिए? युवक वर्ग तो बिना विचार ही बोल उठा कि उसके तलवार से टुकड़े-टुकड़े कर देने चाहिए। किसी ने कहा कि उसको फांसी पर लटका देना चाहिए। किसी ने कहा कि इसको जिन्दा ही आग में डाल देना चाहिए। तत्पश्चात् राजा ने वृद्ध मन्त्री से पूछा - इस सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं? वृद्धों ने विचार कर कहा - हे राजन्! आपके सिर पर लात मारने वाले को तो स्वर्ण हो और हीरों से मढ़ देना चाहिए अर्थात् उसका सम्मान करना चाहिए। राजा ने कहा - साधु, साधु....! क्योंकि वृद्धों ने पहले तो यह विचार किया कि राजा के मस्तक पर लात कौन मार सकता है? रानी या राजकुमार के अतिरिक्त किसी की शक्ति नहीं है। इसीलिए उनका तो हीरे, मोतियों से सम्मान करना ही चाहिए। राजा ने युवक वर्ग के मन्त्रियों को कहा कि देखो, इस प्रकार विचार करके ही उत्तर देना चाहिए। तुम लोग मन्त्री पद के योग्य नहीं

हों। ये वृद्ध ही योग्य हैं। मनुष्य जैसा आश्रय लेता है, वैसा ही बन जाता है। चाहे जितना भी पानी मधुर हो किन्तु उसके साथ नमक का सम्पर्क हो जाए तो वह खारा (कड़वा जहर) बन जाता है। वही यदि शक्कर का संसर्ग करेगा तो? मीठा बन जाएगा न!

परिवर्तनशील जगत - सुबुद्धि मन्त्री की कथा

एक सुबुद्धि नाम का मन्त्री था। श्रावक धर्म का पालन करता था। नाम के अनुसार ही गुणों को भी धारण किया हुआ था। राज्य का मन्त्री जैसा होगा उसी प्रकार उसके राज्य की स्थिति होगी। मन्त्रियों के आधार पर ही राज्य चलता है। राजा मन्त्रीलोचन कहलाते थे। राजा लोग नियमित रूप से बाहर नहीं निकलते थे। मन्त्री ही बाहर की खोज-खबर रखते थे और वास्तविक समाचार से राजा को अवगत कराते थे। मन्त्री उच्च विचारों का होगा तो राज्य भी जल्दी ही उन्नति करेगा। एक दिन राजा और मन्त्री दोनों ही घूमने के लिए निकलते हैं। गाँव के बाहर बहुत बड़ा गड्ढा था। सारे गाँव के गटर का पानी उसमें मिलता था। उधर से ही राजा और मन्त्री निकलते हैं। गड्ढे में से भयंकर दुर्गन्ध आ रही थी। राजा ने नाक बन्द किया। मन्त्री तो उसी प्रकार की स्वस्थता से वहाँ होता हुआ आगे चला। राजा ने कुछ दूर जाने पर कहा - मन्त्रिश्वर! वहाँ भभगती हुई दुर्गन्ध से तुम्हारा नाक फट नहीं गया, तुम्हें कुछ नहीं हुआ, ऐसा कैसे? मन्त्री कहता है - हे राजन्! जगत के समस्त पदार्थों के भाव परिवर्तनशील होते हैं। आज की खराब से खराब वस्तु भी कल अच्छी बन जाती है और कल की अच्छी से अच्छी वस्तु भी आज खराब बन जाती है। सुन्दर से सुन्दर स्वादिष्ट भोजन भी असूचि पदार्थ बन जाता है। अच्छे से अच्छा कपड़ा भी समय बीतने पर सफाई करने का वस्त्र बन जाता है। अच्छे में से खराब और खराब में से अच्छा होना, यह तो चलता ही रहता है। **गीता** में भी **श्रीकृष्ण** ने कहा है -

"अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः॥"

दुराचारी से दुराचारी व्यक्ति भी मुझे अनन्य भाव से भजता है तो वह साधु बन जाता है। वैसे ही जगत् के समस्त पदार्थ परिवर्तनशील होते हैं। इसमें नाक और मुँह को क्या सिकोड़ना? राजा को लगा कि मैं तो इस मन्त्री को बहुत बुद्धिशाली समझता था, किन्तु यह तो बहुत मूर्ख लगता है। इतनी दुर्गन्ध आने पर भी इस पर कोई असर नहीं हुआ। राजा ने कहा कि तुम तो वेदिये के वेदिये ही रहे अर्थात् वेद पढ़ने पर भी मूर्ख ही रहे। उस समय तो मन्त्री चुप रहा कुछ बोला नहीं, समय आने पर राजा को शिक्षा दूँगा। ऐसा सोचकर अवसर की प्रतीक्षा करने लगा।

मन्त्री की योजना

इस घटना को कुछ समय बीत गया। मन्त्री ने राजा की अक्ल को ठिकाने लाने के लिए उसी गटर के पानी के पाँच-सात घड़े भरवाकर मंगवा लिये। पाँच सात दिन तक वे घड़े वैसे के वैसे ही पड़े रहे। सारा कचरा नीचे बैठ गया फिर ऊपर का पानी दूसरे घड़ो में लिया। इस प्रकार छः महीने तक उस पानी को एक घड़े से दूसरे घड़े में बदलता रहा। पानी स्फटिक जैसा निर्मल बन गया। फिर उस पानी में सुगन्धित पदार्थ डालकर उस पानी को बहुत ही सुवासित बना दिया। तत्पश्चात् राजा को अपने घर भोजन करने के लिए आमंत्रित करता है। राजा भोजन करने के लिए आता है। उनके लिए अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थ बनाए गए थे। राजा खाने के लिए बैठता है। भोज्य सामग्री परोसी जाती है। कुछ खाने के बाद राजा पानी माँगता है। मन्त्री वही सुगन्धित पानी देता है। पानी पीने के साथ ही राजा चौंक उठता है और मन्त्री से पूछता है - हे मन्त्रीश्वर! यह पानी कहाँ से लाए हो? देवलोक से लाए हो क्या? राजा भोजन को छोड़कर पानी ही पीने लगा। मन्त्री ने कहा - हे राजन्! यह पानी देवलोक से नहीं आया है। यह पानी तो दुर्गन्ध युक्त गटर का ही

है। जिसकी दुर्गन्ध से आपने मुँह सिकौड़ लिया था। मैंने उस समय कहा था कि अशुभ पुद्‌गल शुभ बनते हैं और शुभ पुद्‌गल अशुभ बनते हैं। यह मेरी वाणी नहीं थी, किन्तु भगवान महावीर की वाणी थी। राजा कहता है - मुझे वह वाणी को सुनना है। उसके बाद राजा पूर्ण रूप से धर्मात्मा बन जाता है। इसीके अनुसार स्थिर चित्त वाले मनुष्य की संगति मनुष्य को कहाँ से कहाँ पहुँचा देती है।

निरोगी रहने के लिए (चरक संहिता)

१. हितभुक् अर्थात् जो पथ्यपूर्वक खाता है।
२. मितभुक् - अर्थात् सीमित खाने वाला यानि भूख लगने पर ही खाने वाला।
३. अशाकभुक् - अर्थात् सब्जी रहित खाने वाला

विनय

कार्तिक वदि ३

छःहों खण्ड में जागृत शासन

जगत् का विषम स्वरूप। एक बालक कितने आनन्द से पत्तों का महल बनाता है और बनाने के बाद उसको देखकर कितना हर्षित होता है। बड़े आदमी को यह महल देखकर आनन्द होता है क्या! नहीं क्योंकि वह समझता है कि एक पवन का झपाटा लगेगा त्यों ही यह गिर पड़ेगा। उसी प्रकार तुम्हारे ये बंगले, गाड़ी, बगीचों को देखकर महापुरुष तनिक भी आनंदित नहीं होते हैं। वे समझते हैं कि कालरूपी पवन का झपाटा लगते ही यह महल भूमिसात हो जाएगा और मृत्यु रूपी वायु का झपाटा लगते ही इस महल को बनाने वाला भी चला जाएगा। इसमें आनन्द मानने जैसा क्या है। आज तक असंख्य मनुष्य ही नहीं, अपितु असंख्य साम्राज्य भी नष्ट हो गये हैं। ब्रिटिश साम्राज्य के लिये कहा जाता था कि उसके राज्य में सूर्य अस्त ही नहीं होता अर्थात् भारत में सूर्य अस्त होता है, तो वहाँ सूर्य उदय हो जाता है। इतना बड़ा साम्राज्य था कि सूर्य एक देश में अस्त होता और दूसरे देश में उदय हो जाता। ऐसे साम्राज्य का भी विनाश हो गया, जबकि भगवान महावीर का शासन छहों खण्ड में वैसा ही प्रकाशमान है। इसका कभी नाश नहीं होगा।

श्रेय और प्रेय

कंचन, कामिनी, पुत्र, पौत्र, यह सब प्रेय पदार्थ है। सर्वदा पराधीन है। जबकि उसके समक्ष क्षमा, सरलता, कोमलता, निर्लोभता आदि श्रेय पदार्थ हैं, जो सर्वदा स्वाधीन है। श्रेय पदार्थों से अत्यन्त लाभ होता है, और क्लेश कम होता है। जबकि प्रेय पदार्थों से लाभ कम होता

है और क्लेश अधिक होता है। किन्तु आज का मनुष्य श्रेय को छोड़कर प्रेय के चक्कर में डूबा हुआ है। मनुष्य को गर्व है। यह सबकुछ मैंने अपनी बुद्धि से प्राप्त किया है अथवा चालाकी से प्राप्त किया है, किन्तु यह गर्व ही उसको नीचे गिरा देता है। षड्यन्त्र और प्रपंच करने वाला बहुत चालाक होता है, किन्तु उसकी बुद्धि ही उसको कैद खाने में भिजवा देती है न! दैवी बुद्धि हो तो वह मनुष्य को तिरा देती है और आसुरी बुद्धि हो तो उसे कहीं का नहीं रखती।

सच्चा ज्ञान तो धर्म द्वारा ही प्राप्त होता है, किन्तु धर्म कब मिलता है? गुण होगा तब। धर्म की प्राप्ति के लिए पहले सद्गुणों की प्राप्ति। **धर्म के योग्य व्यक्ति का १८ वाँ गुण विनय है।**

विनय

विनय यह सब गुणों का मूल है। विनय यह धर्म का भी मूल है। जैसे मूल के बिना वृक्ष नहीं होता वैसे ही विनय के बिना धर्म नहीं हो सकता। शत्रु को भी वश में करना हो तो वह विनय ही है। विनयी मनुष्य सबका प्रिय होता है। अविनीत मनुष्य चाहे जितना भी चतुर हो पर वह किसी को प्रीतिकर नहीं होता। आज तो इस जगत् में से विनय का नामोनिशान भी मिट गया है। माता-पिता और बड़ों आदि का विनय करते ही नहीं हैं। दान लेने के लिए आने वाले का भी विनय करना आवश्यक है। शास्त्रकार कहते हैं कि धर्म का भी विनय करना चाहिए। संसार का, दुर्गति का, दु:खों का और पाप का प्रारम्भ अहंकार से होता है। जबकि धर्म का, कल्याण का, सुख का और नमस्कार का प्रारम्भ विनय से होता है।

नम्रता सबको अच्छी लगती है

राजा के महल में किसी भिखारी को प्रवेश मिल सकता है क्या? नहीं! हम तो फटेहाल की अपेक्षा भी फटेहाल हैं। इस देवाधिदेव के

राजाधिराज के मन्दिर में हमारा प्रवेश कैसे हो सकता है! नमस्कार से ही। नमस्कार यह भगवान के साथ जुड़ने की कुंजी है। गौतम स्वामी महाराज भी विनय से ही महान् बने थे न! भगवान के चरण में मस्तक रखा तो वह रख ही दिया। स्वयं चार ज्ञान के अधिपति होते हुए भी कभी उन्होंने ज्ञान का उपयोग नहीं किया। किसी भी प्रकार की शंका उत्पन्न होने पर वे भगवान के पास जाते.... भगवान के पास जाकर तीन प्रदक्षिणा देकर उकडू आसन से बैठकर भगवान से पूछते - भन्ते! यह कैसे? कितनी नम्रता....! **नम्रता सबसे बड़ा धर्म है।** तुम कुएं मे से पानी भरने के लिए घड़े को कुएं मे उतारते हो। घड़ा तिरछा होता है, तभी उसमें पानी भरता है न! सीधा का सीधा रहने पर वह पानी पर तैरता रहता है। पानी का स्पर्श होने पर भी एक बूंद पानी क्या उस घड़े में आता है? विनय मनुष्य को कहाँ से कहाँ ले जाता है, उसका एक दृष्टान्त शास्त्र में आता है।

पुष्पशाल की कथा

भगवान महावीर के समय में किसी गाँव में पुष्पशाल नाम का एक लड़का रहता था। गाँव का लड़का। अन्य कोई धर्म नहीं जानता था। बाल्यावस्था से ही उसके स्वभाव में विनय गुण रहा हुआ था। कुलवान मनुष्य स्वभाव से ही विनयी होता है। कहीं भी नमन करने की बात हो तो वहाँ अग्रसर ही रहता था। जबकि कुलहीन मनुष्य अहंकारी होते हैं। मैं क्यों नमस्कार करूं? ऐसा विचारधारा वाला होता है। बाहुबली ने नमन करने की प्रतिस्पर्धा की तो केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। बारह-बारह महीनों तक घोर तपस्या के अन्त में भी जो नहीं मिला वह पैर उठाते ही मिल गया। नमन करने में कैसी विलक्षण शक्ति है! पुष्पशाल ने घर में प्रतिदिन के व्यवहार से जान लिया कि घर में पिता बड़े है। क्योंकि माता भी पिता को नमस्कार करती है और दूसरे मनुष्य भी पिता को ढोक देते हैं, इसलिए मुझे भी पिता की सेवा करनी चाहिए। पिता का खुब विनय

करता है। एक दिन गांव में पंचायत भरी, उसमें गाँव के ठाकुर मुख्य स्थान पर बैठे। पिता पुत्र को साथ लेकर उस पंचायत में आते हैं और आकर ठाकुर के चरणों में शीश झुकाते है। पुष्पशाल को अन्य कोई ज्ञान तो था नहीं किन्तु इतना ही ज्ञान था कि पिता जिसको नमस्कार करते हैं, तो वे उनकी अपेक्षा से बड़े हैं, अतः मुझे उनकी सेवा करनी चाहिए। अब ठाकुर की सेवा करता है। एक बार श्रेणिक महाराजा की सभा में ठाकुर आदि जाते हैं। वहाँ ठाकुर श्रेणिक राजा कों विनय पूर्वक नमन करता है। पुष्पशाल यह देखता है, तो वह भी उनका विनय करता है। तत्पश्चात् श्रेणिक महाराज आदि सभी सभ्य लोग भगवान की देशना सुनने के लिए जाते हैं। पुष्पशाल भी साथ में जाता है। श्रेणिक राजा भगवान के चरणों में झुककर नमन करता है। पुष्पशाल यह देखकर विचार करता है कि यह व्यक्ति तो सबसे ऊँचा और महान् लगता है। इसीलिए मुझे इनकी सेवा करनी चाहिए। अन्य कोई व्यवहारिक ज्ञान उसे था नहीं बस, बड़े जिसको नमस्कार करें उसकी सेवा मुझे करनी चाहिए, इतना ही ज्ञान था। भगवान के पास जाता है और भगवान को कहता है- हे भगवन्! मुझे तो आपकी ही सेवा करनी है। भगवान देखते है कि लड़का विनय सम्पन्न और सरल स्वभाव का है अतः उसको दीक्षा दे देते है। पुष्पशाल दीक्षा लेकर स्वयं का आत्मकल्याण कर लेता है। विनयी मनुष्य को सब मान देते हैं।

गुणों को ग्रहण करने के लिए पात्र

विणओ सासणे मूलं। अर्थात् विनय यह शासन का मूल है। जिसके जीवन में विनय नहीं है उसका धर्म कैसा और तप कैसा? विनय रहित तप को शास्त्रकारों ने भूखमरा कहा है। माता-पिता का, बड़ो का, गुरु और परमात्मा आदि सबका विनय करने का शास्त्रकार कहते हैं। विनय तो सर्वगुणों का पात्र माना जाता है। **सर्वेषां गुणानां भाजनं**

विनयः। गुणों को कोई आकाश में नहीं रख सकते हैं। विनय यह सब गुणों को सुरक्षित रखने का पात्र/स्थान है। हीरा, माणक, मोती आदि आभूषणों को रखने के लिए मंजूषा (बॉक्स) चाहिए ही न! भले ही जवाहरात लाखों रुपयों के हों किन्तु मंजूषा तो पचास से सौ रुपये की ही होती है। किन्तु मंजूषा के बिना आकाश में अधर तो रख नहीं सकते। वैसे ही समस्त गुणों को रखने के लिए पात्र/भाजन चाहिए ही न! समस्त गुणों का रक्षण करने के लिए यदि कोई पात्र है, तो वह विनय ही है। पात्र नहीं होगा तो गुण भी ढुलककर गिर जाएंगे.... यह पात्र खाली होगा तभी तो उसमें रख सकते हैं! भरे हुए पात्र में वह कैसे समा सकता है.... वैसे ही पहले समपर्ण के द्वारा रिक्त करन पड़ेगा। **खाली होने पर ही वह भरा जाएगा**। हमारा पात्र अभिमान के द्वारा भरा हुआ है। पहले अभिमान का त्याग करेंगे तभी तो विनय आएगा। हमारी दिमाग रूपी टंकी अहंकार और वासना से भरी हुई है। इसीलिए ही जीवन में विनय आता नहीं है। विनय से ही ज्ञान मिलता है, उसे ही परिणति ज्ञान कहते हैं। आत्मा के साथ ज्ञान जब ओत-प्रोत हो जाता है, वह भी विनय के द्वारा ही प्राप्त होता है। आज तो पाठशालाओं में विनय को जड़मूल से दूर फेंक दिया गया है। प्रोफेसर अथवा शिक्षक कुछ भी कहने के लिए जाएं तो वह मामला खून-खराबे तक पहुँच जाता है। अविनय से कदाचित् अक्षर का ज्ञान मिल सकता है, किन्तु वह फलदायक नहीं होता।

पिता-पुत्र का संवाद

उपनिषद् में उद्दालक और श्वेतकेतु का संवाद आता है। श्वेतकेतु चौदह विद्याओं में पारङ्गत होकर घर आता है। उसके पिता उद्दालक पूछते हैं- वत्स! क्या पढ़कर आए हो? पुत्र कहता है - पिताजी! इसमें आपको कुछ भी खबर नहीं पड़ेगी। पिता कहते है - वत्स, तब तो तूने कुछ भी पढ़ा नहीं है। विनय रहित सबकुछ बेकार है। जब तक तू अपनी आत्मा

को नहीं पहचान पाता तब तक सबकुछ निरर्थक है। कहा जाता है "**ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिन्त्यो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी**" आत्मा कौन है? कहाँ से आयी है? कहाँ जाने वाली है? ऐसे प्रश्न के विषय में जगत् का अधिकांश वर्ग कल्पना भी नहीं कर पाता। आत्मा नाम का कोई पदार्थ जगत् में विद्यमान है, इसको भी मानने के लिए तैयार नहीं होते। केवल इस भव में जो मिला है, उसका भोग कर लो और जो प्राप्त नहीं हुआ है, उसको प्राप्त करने का प्रयत्न करो.... इसी में ही जगत् का अधिकांश वर्ग डूबा हुआ है।

अनीति, लुट-मार कर एकत्रित की हुई सम्पत्ति कभी भी सुख/समाधि नहीं दे सकती। जीवन में/घर में, अशांति, चिन्ता और आपत्तियाँ ही लाती है।

विनय

कार्तिक वदि ४

धर्म रूपी वृक्ष का मूल

धर्म रूपी रत्न प्राप्त करने के लिए जीवन में किन-किन गुणों की आवश्यकता पड़ती है उसका विवेचन चल रहा है। उसमें भी विनय गुण का प्रसंग चल रहा है। **विनय यह धर्म रूपी वृक्ष का मूल है।** मूल होगा तभी वृक्ष स्थिर रहेगा और वृक्ष पर फल-फूल आएंगे। यह वृक्ष सामान्य वृक्षों की अपेक्षा बहुत बड़ा है। कोई भी वृक्ष हो उस पर एक ही प्रकार के फल आते हैं। आम्र के वृक्ष पर केरियाँ ही आएंगी। चीकू और सीताफल नहीं आते हैं, किन्तु यह विनय जिसका मूल है ऐसे धर्म रूपी वृक्ष पर तो विविध प्रकार के फूल आते हैं। शांति, समाधि, सुख-समृद्धि और आनन्द जैसे कई फल प्राप्त होते हैं। वृक्ष पर जब फल आते हैं, तो वृक्ष झुक जाता है, नम जाता है। किन्तु आज का मनुष्य तो वृक्ष की अपेक्षा भी निम्न स्तर का हो गया है। उसको ज्यों-ज्यों बुद्धि रूपी, सम्पत्ति रूपी और मान-वैभव रूपी फल मिलते हैं त्यों-त्यों वह अहंकार में अकड़ जाता है। वृक्ष के ठूंठ के समान बन गया है। समृद्धिमान होते ही स्वयं पूर्व के मित्र मण्डल में बैठते हुए भी लज्जा अनुभव करता है.... उनको बुलाकर संभाषण भी नहीं करता है। उसकी बैठक तो बड़े-बड़े व्यापारियों के साथ होती है.... ऐसी घटनाएं तो आज भी अधिकांशत: सुनने को मिलती है। कल का ग्रामीण, शहर में जाकर करोड़पति बन जाता है, तो वह जब गाँव में आता है, तब गर्दन को अकड़ा कर रखता है। सामान्य मनुष्य को तो वह बुलाता भी नहीं। विनय के बिना यह सारी सम्पत्ति मनुष्य को नीचे गिरा देती है। प्रकृति भी हमको नमन करने की शिक्षा देती है।

आज के युग में विनय धर्म प्रायः कर लुप्त हो गया है। लड़के माँ-बाप की मर्यादा भी नहीं रखते हैं। पिता एक बात कहता है, तो उसे चार बात सुननी पड़ती है। लड़का कितना भी चतुर हो किन्तु वह उद्धत हो तो वह किसी को प्रिय लगता है क्या? किन्तु वह विनीत हो तो कितना प्यारा लगता है। विनय तो एक मोहकता है। भगवान् जैसे भगवान् भी जिसके नीचे बैठकर देशना देते हैं, उस अशोक वृक्ष को देशना से पूर्व तीन प्रदक्षिणा देते हैं और नमो 'तित्थस्स' कहकर बैठते हैं। जहाँ बैठकर जनकल्याण करना है, उसका भी विनय करते हैं।

शास्त्रकार हमें चेतावनी देते हैं कि विनय हो तभी सच्चा साधुत्व आता है। विनय के बिना तो वेश परिवर्तन मात्र है। **विणया विप्पमुक्कस्स कओ धम्मो कओ तवो**। अर्थात् विनय के बिना धर्म और तप कैसा? विनय तो वह एक की संख्या के समान है जिसके पीछे ज्यों-ज्यों शून्य लगाते जाएंगे त्यो-त्यों उसकी कीमत बढ़ती जाती है, किन्तु ज्यों ही प्रारम्भ के एक को निकाल देंगे तो क्या रहेगा? शून्य.... अनेक शून्य हों तो उसका कोई मूल्य है? **साधु जीवन में तो परस्पर बांधने वाली कोई चीज है, तो वह विनय है।**

विनयी कौन? साधु या राजपुत्र

किसी नगर से कोई आचार्य भगवंत शिष्यवृन्द के साथ विचरण कर रहे थे। उस समय उस नगरी का राजा आचार्य महाराज को नमस्कार करने के लिए वहाँ आता है। कुछ समय बैठता है। सूरिजी के विनयी शिष्यों को देखकर उसे आश्चर्य होता है। वह सूरिजी से पूछता है - भगवन्, आपके ये शिष्य आपका इतना ज्यादा विनय क्यों करते हैं? हमारी सन्तानें तो हमारा विनय करें, यह समझ सकते हैं। क्योंकि उनका पिता का राज्य मिलने वाला है, किन्तु ये शिष्य इतना विनय क्यों करते हैं। इनको आपके पास से क्या मिलने वाला है? विनीत हो तो हमारे राजकुमार हों.... किन्तु आपके शिष्यों में विनय का होना, यह आश्चर्य

का कारण है। राजा को अत्यन्त विश्वास हो, इसलिए सूरिजी महाराज ने राजा के समक्ष ही एक शिष्य को बुलाया। आवाज के साथ ही वह शिष्य हां जी कहकर उपस्थित हुआ। हाथ जोड़कर नम्रता पूर्वक पूछता है - भगवन्! क्या आज्ञा है? जाओ और देखकर आओ कि गंगा किस दिशा में बह रही है। 'तहत्ति' कहकर आज्ञा को स्वीकार कर वह शिष्य बाहर निकलता है। गाँव की सीमा पर आता है, वहाँ गंगा पूर्व दिशा में बह रही है, वह देखता है। पूर्ण रूपेण निश्चय करने के लिए आस-पास के लोगों से भी पूछता है और नदी में यह तृण बह रहा है, उसके आधार से उसे दृढ़ निश्चय हो जाता है कि गंगा नदी पूर्व दिशा में ही बह रही है। वापिस लौटकर सूरिजी को नमस्कार कर कहता है - भगवन्, गंगा पूर्व में बह रही है। राजा के गुप्तचर साधु महाराज के पीछे-पीछे चल रहे थे। वे भी राजा को कहते हैं - राजन्, साधु महाराज वहाँ जाकर अच्छी तरह से जानकारी लेकर आए हैं अब राजा अपने राजकुमार को बुलाकर कहता है - पुत्र, जाओ, देखकर आओ कि गंगा किस दिशा में बह रही है। राजकुमार पहले ही उत्तर देता है कि पिताजी, गंगा तो पूर्व में बह रही है। तब राजा कहते हैं - मैं कहता हूँ न? तुम अच्छी तरह से देखकर आओ की गंगा किस दिशा में बह रही है। पिता के कहने से बड़-बड़ करता हुआ और पैर पछाड़ता हुआ बाहर निकलता है। राजा के गुप्तचर भी उसके पीछे चलते हैं। राजकुमार विचार करता है कि इस बुड्ढे की तो मति ही भ्रष्ट हो गई है 'साठे बुद्धि नाठी'। यह तो छोटा सा बालक भी जानता है कि गंगा पूर्व में बहती है। इसको देखने के लिए जाने की क्या जरूरत है। इसीलिए वह समय बिताकर, वापस लौटकर, राजा को कहता है - पिताजी, गंगा पूर्व में बह रही है। उसके पहले ही राजा के गुप्तचरों ने आकर सारे समाचार दे दिए थे। राजा गुरु भगवंत को पूछता है - भगवन्, आपके शिष्यों का विनय देखकर मुझे अत्यधिक आश्चर्य हो रहा है। यह शिष्य आपके सगे सम्बन्धी भी नहीं हैं और न ही आपके देश के हैं। फिर

भी आपके प्रति कितनी मर्यादा रखते हैं। तब सूरिजी कहते हैं - हे राजन्! तुम्हारे राजकुमार को तो केवल एक देश का ही राज्य मिलने वाला है, जबकि हमारे साधुओं को इस विनय के द्वारा तीन लोक का राज्य मिलना है। विनय द्वारा ही उनका आत्म कल्याण होने वाला है। विनय से वाणी की शक्ति विकसित हो जाती है। गुरु कृपा हो जाए तब तो साक्षात् सरस्वती ही उसकी जिह्वा पर आकर बैठ गई हो ऐसा लगता है!

भारत की एक परम्परा थी कि मनुष्य किसी भी अच्छे स्थान पर जाए तो वहाँ मस्तक को झुकाकर, साथ ही वहाँ जो वृद्ध और पूज्य हो उनको नमस्कार करके ही बैठे। आज तो मस्तक झुकाने के स्थान पर सलाम (हाय/हैलो) आ गया है। आज अहम् से मस्तक इतना भारी हो गया है कि वह झुक भी नहीं सकता।

चार प्रकार की बुद्धि

शास्त्रों में चार प्रकार की बुद्धि का वर्णन आता है। पहले प्रकार की बुद्धि है - **कार्मणिकी**। काम करते-करते ही मनुष्य को जो सूझ प्राप्त होती जाती है उसे कार्मणिकी बुद्धि कहते हैं। किसान का लड़का खेती का काम करते-करते ही योग्यता को धारण कर लेता है। दूसरे प्रकार की बुद्धि है - **पारिणामिकी**। अर्थात् अवस्था के साथ ही जो विकास को प्राप्त करती है। जिस प्रकार मनुष्य ज्यों-ज्यों बड़ा होता जाता है, त्यों-त्यों उसकी बुद्धि भी परिपक्व और स्थिर बनती जाती है। बचपन में बुद्धि भी बचपने जैसी होती है। वह ज्यों-ज्यों बड़ा होता जाता है, उसकी बुद्धि में स्थिरता आती जाती है। तीसरे प्रकार की बुद्धि होती है - **औत्पातिकी**। औत्पातिकी अर्थात् प्रत्युत्पन्नमति/हाजिरजवाबी जिस क्षण में प्रश्न पूछा जाए उसी क्षण में बुद्धि एकदम स्फुराय मान होती है। बीरबल के पास में औत्पातिकी बुद्धि थी। इसी बुद्धि के बल पर वह अकबर सम्राट का प्रिय हो गया था। एक समय अकबर ने बीरबल को कहा - बीरबल! आज मुझे स्वप्न आया था कि हम दोनों घूमने के लिए निकले। आगे जाते

हुए दो कुएं देखें। एक में गटर का पानी था और दूसरा सुगंधित जल से भरा हुआ था। यह देखकर तूं तो गंदे पानी के कुएं में नहाने के लिए गिर पड़ा और मैं सुगंधित जल के कुएं में पड़ा। वास्तव में तो अकबर बीरबल की चतुराई को काट रहा था किन्तु बीरबल तो प्रत्युत्पन्नमति था। उसने कहा स्वामी मुझे भी ऐसा ही स्वप्न आया था किन्तु मैंने इससे भी आगे बढ़कर देखा। हम दोनों कुएं में पड़े, कुएं से निकलकर मैं तुम्हारें शरीर को चाटने लगा और तुम मेरे शरीर को चाटने लगे। अकबर एकदम चुप हो गया। ऐसी तो अनेक बातें हाजिरजवाबी बुद्धि की प्रचलित है।

वैनयिकी बुद्धि - दो शिष्यों का दृष्टान्त

चौथी बुद्धि है वैनयिकी - विनय करते-करते ही मनुष्य में यह बुद्धि प्रकट होती है। शास्त्र में दृष्टान्त आता है:- एक गुरु के दो शिष्य थे। गुरुकुल में रहकर दोनों ही पढ़ते थे। एक विनीत था और दूसरा अविनीत। विनीत शिष्य गुरु की सभी प्रकार की सेवा बहुमान पूर्वक करता था। गुरु के इंगित (मुद्रा) पर से वह समझ जाता था। गुरु उन दोनों शिष्यों में किसी प्रकार का भेदभाव न करते हुए पढ़ाते थे। एक समय दोनों शिष्य को किसी कार्य के लिए गुरु महाराज ने पास के गाँव में भेजा। दोनों शिष्य जाते हैं। रास्ते में पैरों के चिह्न देखकर अविनीत शिष्य यकायक बोलता है - यहाँ से कुछ समय पहले ही कोई हाथी गया हो ऐसा लगता है। उसी समय विनीत शिष्य बोलता है - हाथी नहीं, हथिनी गई दिखती है। कुछ दूर आगे जाने पर पुनः वह कहता है - वह हथिनी दांयी आँख से कानी है। कुछ आगे जाने पर विनीति शिष्य फिर कहता है - उसके ऊपर राजा-रानी बैठे हुये थे, रानी ने लाल रङ्ग की साड़ी पहन रखी है, वह गर्भवती है, वह कुछ समय में ही पुत्र को जन्म देने वाली है। यह सुनकर अविनीति शिष्य कहता है - हे मित्र! क्या गप्पे मारता है। तुझे किसी प्रकार का ज्ञान हुआ है या अपने आप ही बोल रहा है। बातें करते हुए वे दोनों गाँव के किनारे पहुँचते हैं। वहाँ देखते हैं कि राजकीय डेरे-तम्बू

लगे हुए हैं और उसके बाहर ही हथिनी बंधी हुई है। थोड़े समय के बाद ही बाजे बज उठे। उन्होंने लोगों से पूछा कि क्या हुआ? तो उत्तर मिला कि रानी ने पुत्र को जन्म दिया है। अविनीत शिष्य को यह सब दृश्य देखकर और सुनकर मन में आकुलता पैदा हुई। उसने मन में विचार किया कि गुरु महाराज ने निश्चित ही इसको सब कुछ सिखाया है और मुझे नहीं सिखाया, पक्षपात किया है। मन ही मन में व्याकुल होता रहा। फिर दोनों तालाब के किनारे आकर बैठे। वहाँ कोई बुढ़ी माँ पानी भरकर जा रही थी। इस बुढ़ी माँ का पुत्र बाहर गाँव गया हुआ था। बुढ़ी माँ ने इस दोनों को ज्योतिषि समझकर पूछा - भाईयों! मेरा लड़का परदेस गया हुआ है, वह कब आएगा? प्रश्न पूछने के साथ ही उसी समय बुढ़िया की असावधानी से सिर पर रखा हुआ पानी का घड़ा नीचे गिर गया और टूट गया। अविनीत शिष्य यह सब कुछ देखकर एकदम बोल उठा- हे बुढ़िया माँ! दुःख की बात है, शायद तुम्हारा पुत्र मर गया होगा। यह सुनते ही बुढ़ी माँ की आँखों के सामने अंधेरा छा गया, विलाप करने लगी। उसी समय पहले विनयवान शिष्य बोल उठा-माँजी! चिन्ता मत करो, तुम्हारा पुत्र तुमको इसी समय मिलेगा। बुढ़िया को हृदय में शान्ति मिली, किन्तु दोनों में सच्चा कौन? इस पर आगे विचार करेंगे।

चलती चकीयां देखकर बैठ कबीरा रोय
दोपड़ भीतर आयके साबूत रहे न कोय
चक्की चले तो चलने दो तु काहे को रोय
खीलड़े से बिलगा रहे तो पीस सके न कोय
परमात्मा रूपी कील से जो बंधा हुआ रहता है,
उसको कोई भी पीस नहीं सकता

विनय

कार्तिक वदि ५

विनय के अभाव में समाज की दुर्दशा

ज्ञानीपुरुष हमारा जन्म सार्थक कैसे हो इसके लिए समझा रहे हैं। सभी जीव खाते हैं, पीते हैं, मौज-मस्ती करते हैं, तो इससे मानव-जन्म की सिद्धि नहीं होती। **पदार्थों को प्राप्त करने का महत्व नहीं है, किन्तु परमात्मा को प्राप्त करना यह महत्व का है।** धर्मार्थी कैसा हो यह बात चल रही है। उसमें भी हम विनय गुण पर विचार कर रहे हैं। वर्षा होती है, तब एक तरफ काली मिट्टी होती है और दूसरी तरफ पथरीली जमीन होती है। इन दोनों में कौनसी जमीन पानी का अधिक संग्रह करती है, और अत्यधिक अनाज पैदा करती है? काली मिट्टी वाली जमीन ही न! यह मिट्टी पानी का अनेक वर्षों तक संचय करके रखती है। काली मिट्टी वाली जमीन बहुत कीमती मानी जाती है। उसी प्रकार विनय यह काली मिट्टी के समान है। विनीत मनुष्य को कुछ भी कहा जाए तो वह जिस प्रकार काली मिट्टी पानी का संग्रह कर लेती है, उसी प्रकार विनीत भी उन बातों को ग्रहण कर हृदय में उतार लेता है। भगवान महावीर ने नयसार के भव में गुरु महाराज द्वारा कथित धर्म को हृदय में उतार लिया, किस कारण से? विनयी थे इसीलिए न! अन्यथा मार्ग में चलते-चलते गुरु महाराज धर्म का स्वरूप समझा रहे थे, उस समय नयसार ने यह विचार किया होता कि यह सब सिरदर्द क्यों? ऐसा समझकर उस वाणी को सुना ही न हो तो क्या वह संसार समुद्र से पार हो सकता था! यह तो **मार्ग बताने गए और स्वयं ही मार्ग को प्राप्त करके आए!** जो मनुष्य विनीत नहीं होता उसको चाहे जितने भी शास्त्रों का श्रवण करवाया जाए अथवा उपदेश दिया जाए किन्तु वह उससे कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता। वस्तुत: कहने वाले को ही क्लेश मात्र होता है। आज इस गुण का अभाव

होने के कारण ही बड़े लोग लड़कों को सच्ची बात कहने पर वे स्वयं शोक का अनुभव करते हैं, डरते रहते हैं। छोड़ो न! लड़के को बुरा लगेगा और मुझे घर से भी निकाल देगा तो! इस कारण से सच्ची बात और सच्ची सलाह भी नहीं देते हैं। इसीके फलस्वरुप समाज में शान्ति देखने को नहीं मिलती। सासु बहू को सच्ची शिक्षा नहीं दे सकती। इस संसार की ऐसी ही दशा है! पहले विनीत शिष्य को शिक्षा देते हुए शिक्षक स्वयं का ज्ञान उन्डेल देते थे। यह विद्यार्थी मेरा है, ऐसा समझकर उसके पीछे अपना सर्वस्व झोंक देते थे। उस जमाने में अमुक उपाध्याय के विद्यार्थी होना भी सम्मान की बात गिनी जाती थी। आज यदि उसकी तुलना की जाए तो! विद्यार्थी और शिक्षक के बीच में कैसा वातावरण है! शिक्षक सच्चे दिल से पढ़ाते नहीं है। शिक्षक का तो सम्बन्ध केवल वेतन से रहता है। उद्धत् विद्यार्थी भी घूस (रिश्वत) के द्वारा अथवा अपनी धाक जमाते हुए आगे बढ़ने का प्रयत्न करते हैं। परिणाम स्वरूप दोनों पक्षों में अशांति है। विद्या तो दान है। यह पैसे से बिकती नहीं है। आज तो विद्या भी धन से मिलती है इसी कारण सच्चा ज्ञान रहा ही नहीं।

विनयी शिष्य का उत्तर

विनय करते-करते मनुष्य में एक प्रकार की विलक्षण कोटि की बुद्धि उत्पन्न हो जाती है। उसी को वैनयिकी बुद्धि कहते हैं। विनय के द्वारा कैसा बुद्धि-चातुर्य प्रकट होता है, यह हम देख चुके हैं। दोनों शिष्य तलाब के किनारे बैठे हुए हैं। उसी समय बुढ़ी माँ हाथ में भेंट लेकर आती है। विनीत शिष्य के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देती हुई कहती है - हे पुत्र! तूने जो कहा था, उसी के अनुसार हुआ है। मैंने मोहल्ले में प्रवेश किया, उसी समय मेरा प्रिय पुत्र दौड़ता हुआ आया। तु खूब सुखी होना, इस प्रकार आशीर्वाद देकर बुढ़ी माँ अपने घर जाती है और दोनों विद्यार्थी भी गुरुकुल में वापस लौटते हैं। गुरुकुल में पहुँचते ही विनयी शिष्य तो दौड़कर गुरु के चरणों में गिर पड़ता है। गुरु महाराज भी धीमे हाथों से

उसकी पीठ को थपथपाते हैं। जबकि अविनीत शिष्य बाहर ठूंठ वृक्ष के समान खड़ा है। गुरु महाराज उसे बुलाते है। वह लालचोल होता हुआ आता है। नमन करना तो दूर रहा बल्कि क्रोध में धमधमाता हुआ गुरु महाराज से कहता है - तुमने बहुत पक्षपात किया है, मुझे अच्छी तरह से पढ़ाया नहीं है, समस्त विद्याएं तुमने इसी को दी है। गुरु महाराज ने जैसे-तैसे उसके क्रोध को शांत किया और पूछा - क्या घटना है? उसने सब कुछ कह सुनाया। गुरु महाराज भी विस्मय को प्राप्त हुए। उन्होंने विनीत शिष्य को पूछा - भाई! तूने कदमों पर से हाथी नहीं हथिनी है, ऐसा किस आधार से निश्चय किया? उसने कहा - गुरुजी! मार्ग पर हथिनी के मूत्र के निशान थे। हाथी का मूत्र करने का तरीका अलग होता है और हथिनी का अलग होता है। इसी आधार से मैंने निश्चय किया की ये हथिनी के चरण है। उसने बांयी ओर से पत्ते, फल, फूल आदि खाए थे, इस पर से मैंने यह निश्चय किया वह दांयी आँख से कानी होनी चाहिए। आगे जाते हुए उस पर से किसी ने उतर कर बबूल के पीछे जाकर लघुशंका की थी.... पुरुष तो खुले स्थान पर मूत्र कर देता है, किन्तु स्त्री ही किसी की ओट लेकर के करती है। इसीलिए मैंने अनुमान किया की वह स्त्री है। हाथी पर सवारी तो बड़े आदमी ही करते हैं न! इसीलिए राजा और रानी ही होने चाहिए ऐसा मुझे प्रतीत हुआ। मैंने वहाँ जाकर देखा तो बबूल में साड़ी के रेशे लगे हुए थे। वे लाल रङ्ग के थे, इससे मैंने यह अनुमान किया कि वह लाल रंग की साड़ी पहनी हुई होगी। वहाँ मैंने दोनों हथेलियों के चिह्न देखे उससे मुझे यह विश्वास हो गया कि लघुशंका करने के बाद दोनों हाथों को टेककर वह खड़ी हुई होगी और दांये हाथ की हथेली पर अधिक भार डाला था। उससे मुझे यह निश्चय हो गया कि वह अवश्य ही गर्भवती होनी चाहिए और प्रसव की तैयारी है। दांये हाथ पर अधिक भार देने के कारण मैं समझ गया कि उसके लड़का ही होना चाहिए। गुरु महाराज उसकी बुद्धि पर वाह वाह कर उठे। इसके बाद गुरु महाराज ने

उससे पूछा कि उस बुढ़िया माँ को तूने किस आधार से जवाब दिया। उसने कहा – गुरुजी! बुढ़िया माँ ने जिस समय प्रश्न किया था उसी समय उसके सिर से घड़ा नीचे गिर पड़ा और टूट गया, उस घड़े के टुकड़े मिट्टी में मिल गये और उसमें रहा हुआ पानी नीचे गिरकर तालाब के पानी में ही मिल गया इससे मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि मिट्टी मिट्टी में मिल गई और पानी पानी में मिल गया, जो जिसका था उसी में मिल गया। इसीलिए बुढ़िया माँ को भी उसका बेटा मिलना ही चाहिए। गुरु महाराज समझ गए कि विनय के द्वारा ही उसकी बुद्धि परिपक्व हुई। अविनीत को अपनी भूल समझ में आने लगी। विनय करते हुए उत्पन्न बुद्धि विलक्षण होती है। उससे इस लोक में तो कल्याण होता ही है और परलोक में भी कल्याण होता है।

स्वर्ग यहीं है

जीवन के भीतर समस्त सुखों का मूल 'पुण्य' है। पुण्य का मूल– धर्म है और धर्म का मूल विनय है। समस्त सुखों की कुंजी परम्परा से विनय में समाहित है। **विनय यह हरी झंडी है**। जबकि मान यह लाल झंडी है। रेलगाड़ी को रवाना करने के लिए हरी झंडी दिखाई जाती है। इसी प्रकार जीवन की गाड़ी को आगे चलाना हो तो हरी झंडी को ही स्वीकार करो। घर के प्रत्येक सदस्य यदि विनय से व्यवहार करें तो स्वर्ग यहीं है।

नौ प्रकार के दान

शास्त्रों में ९ प्रकार के दान के प्रसंग आते हैं:– **१. अन्न २. वस्त्र ३. पानी ४. स्थान ५. शय्या ६. मन ७. वाणी ८. काया ९. नमस्कार**। इन ९ प्रकार के दानों में पैसे का दान तो कही आता ही नहीं है। प्रारम्भ के दान तो समझ में आते हैं किन्तु मन, वाणी, काया, नमस्कार का दान? मन का दान करना यह सबसे बड़ा दान है। ६ या ७ महीने के बालक को मेरी माता कौन यह अथवा यह मेरी जन्मदाता है ऐसा कोई ज्ञान नहीं

होता, फिर भी पच्चीस-पचास स्त्रियों के बीच से वह अपनी माँ को ढूंढ लेता है। क्योंकि माँ ने मन का दान दिया है। इसी कारण बालक उसकी तरफ आकर्षित होता है। पैसे के दान की अपेक्षा भी मन का दान बड़ा-चढ़ा होता है। लाखों रुपयों का दान दें किन्तु यदि मन से नहीं दें अथवा तिरस्कार से दें? तो कोई महत्त्व नहीं है। इस दान के स्थान पर मधुर शब्दों से प्रेम के दो शब्द कहें। तो इन दोनों में कौन बड़ा? पैसे का दान देने वाला या मन का दान देने वाला!

वाणी का दान

एक सेठ ने अनेक मनुष्यों को भोजन का आमंत्रण दिया। सारे लोग भोजन करने आ गए। पंगत लग गई। परोसने की तैयारी थी, उसी समय सेठ बोले - आज मैं तुम्हें ऐसी-ऐसी वस्तुएं थाली में रखूंगा कि उन वस्तुओं का नाम तुमने सुना भी नहीं होगा। बस, इधर परोसने की तैयारी होती है उसी समय सब लोग उठकर वापिस लौटने लगे। क्यों? उसके शब्दों में इतना अहंकार भरा हुआ था। प्रेम से सूखी रोटी भी खिलाने पर मीठी लगती है। मन का दान अत्यन्त महत्त्व का होता है। डॉक्टर के पास जाते हैं, कितने ही डॉक्टर नम्र होते हैं, स्वभाव से मधुरभाषी होते हैं, उनके साथ बातचीत करते ही दर्दी का आधा दर्द समाप्त हो जाता है। जबकि कितने ही डॉक्टर ऐसे अकड़ होते हैं कि उनसे दोबारा पूछने पर तुरन्त ही चिल्ला उठते हैं। पूरी बात भी नहीं सुनते हैं। ऐसे डॉक्टर दर्दी को कैसे लगते हैं?

काया का दान

यमराज जैसा लगता है न! जैसे मन के दान का महत्व है वैसे ही काया के दान का भी उतना ही महत्व है। किसी बीमार मनुष्य की सेवा करना और उसके पैरों को दबाना। यह दान बहुत ही कठिन है। लाखों रुपये खर्च करने वाले छः फुट की काया को झुका नहीं सकते। अपने माँ-बाप की सेवा नहीं कर सकते। माता-पिता बीमार होंगे तो किसी

सेविका को रख देंगे किन्तु स्वयं को तनिक भी कष्ट नहीं देंगे। आज तो पुत्रों को माँ-बाप से कुछ पूछने और बातचीत करने का भी समय नहीं है तब उनके पास बैठने का तो समय ही कहाँ होगा। जिस पुत्र के पीछे माता-पिता ने रात-दिन देखा नहीं वह पुत्र आज एक घण्टे का समय भी देने को तैयार नहीं है! कैसी अधमता है! कैसी निष्ठुरता है!

नमस्कार दान

अन्तिम दान है नमस्कार दान। इस दान से बहुत लाभ मिलता है। सन्मुख व्यक्ति से सम्बन्ध भी इसी के द्वारा होता है। परमात्मा जैसी महान् विभुति के साथ सम्बन्ध बांधना हो तो नमस्कार तो चाहिए ही। विनय होगा तभी नमस्कार कर सकेगा। माता-पिता, पति, गुरु इन सबको व्यक्ति के रूप में नहीं किन्तु तत्त्व के रूप में पूजने का है। इनका स्वभाव कैसा है यह देखने का नहीं। तत्त्व के समान ही उनको पूजना है। मन्त्रियों को नमन करेंगे। ऑफिसरों को नमन करेंगे। अरे, घर में काम करने वाले नौकर के साथ भी अच्छा व्यवहार रखेंगे किन्तु माता-पिता के चरणों में शीश झुकाते हुए लज्जा आएगी। दूध में जामन डालते ही दही कैसा गाड़ा बनता है वैसे ही जहाँ विनय होगा वहाँ प्रगाड़ स्नेह बंधेगा.... विनय रहित मनुष्य अहंकारी होता है। अहंकार वही अंधकार है। अंधकार में चलता हुआ मनुष्य टक्कर खाकर गिरेगा नहीं क्या? ठोकरें ही खाता है! विनय वह दीपक है जो टक्कर और ठोकरों से बचाता है। विनयी मनुष्य सर्वत्र पूज्य बनता है। वही धर्म का सच्चा अधिकारी है।

गुरु कृपा से क्या नहीं होता - पू. धर्मसूरि महाराज

विनय गुण तो एक जुआरी मनुष्य को कहाँ से कहाँ पहुँचा देता है। इसका संकेत बताती हुई यह सत्य घटना है। महुवा में ये रहते थे। गरीब परिस्थिति थी। किसी के यहाँ काम करके दो पैसा कमा कर लाते हैं और वे भी जुए में हार जाते। एक दिन ये भाई पूज्य वृद्धिचन्द्रजी महाराज के परिचय में आए। जीवन में मनुष्य का परिवर्तन केन्द्र कब

आता है और किसके समागम से आता है, कह नहीं सकते। सत्संग से जीवन बदल जाता है.... कल का जुआरी रखड़ेल मनुष्य आज का साधु बन गया। उसका नाम धर्मविजयजी महाराज रखने में आया। दीक्षा लेने के पश्चात् ज्ञान चढ़ता नहीं था, किन्तु विनय भाव शिखर पर था। गुरु पर अत्यन्त बहुमान था। पूज्य नेमिसूरिजी महाराज सा. उनके गुरुभाई थे। धर्मविजयजी महाराज को पढ़ाने का काम नेमिसूरिजी महाराज को सौंपा गया। ज्ञान का क्षयोपसम न होने से अत्यन्त परिश्रम करने पर भी एक अक्षर भी चढ़ता नहीं था। कभी-कभी तो गुरु भाई घड़े के डोरे से मारते भी थे.... किन्तु मन से भी वे बुरा नहीं मानते थे। हंसते-हंसते विनय पूर्वक सब कुछ सहन करते थे। रात-दिन गुरु के नाम को ही रटते थे और गुरु महाराज का ध्यान करते थे। बरसो बीत गए। ज्ञान तो अधिक नहीं प्राप्त कर सके किन्तु गुरु सेवा से मन की तृप्ति अवश्य हुई। गुरु महाराज का अन्तिम समय निकट आ रहा था। धर्मविजयजी महाराज उनके सन्थारे के पास बैठे हुए थे। गुरु महाराज अपने अन्य शिष्यों को कहते हैं कि इस धर्मविजय को पन्यास पदवी देना। गुरु महाराज का स्वर्गवास हो गया। कुछ ही समय में विनय से प्राप्त और गुरुकृपा के बल से हृदय के भीतर की शक्तियाँ खिल उठी। अभ्यास में बढ़ने लगे। माण्डल में छोटी सी पाठशाला प्रारम्भ करवाई। उसमें संस्कृत का पठन प्रारम्भ करवाया और फिर आगे बढ़ते हुए विद्या का केन्द्र ऐसे काशीधाम में पहुँचे। विद्यार्थियों को भी साथ ले गये। प. बेचरदास आदि उनके साथ थे। जैन समाज में ज्ञान को बढ़ाना था। अनेक प्रकार के झंझावात आए। अडिग रहकर अपने कार्य को आगे बढ़ाते गए। लोगों को आकर्षिक करने के लिए वे चौराहे पर खड़े रहकर स्वयं के विद्यार्थियों के सन्मुख व्याख्यान देने लगे। धीमे-धीमे कौतुहल से लोग इकट्ठे होने लगे.... पाँच, पच्चीस करते-करते पाँच सौ मनुष्यों का समुह मार्ग पर खड़ा रहकर उनका व्याख्यान सुनता था। जिनको अच्छी तरह से बोलना नहीं आता था वे

हजारों मनुष्यों को आकर्षित करने में सक्षम हो गये थे। मानों जिह्वा पर सरस्वती ने निवास कर लिया हो। ऐसा करते हुए उनकी ख्याति भारत भूषण पण्डित मदन मोहन मालवीय तक पहुँची। उन्होंने कुम्भ मेले का आयोजन किया था। उस मेले में देशभर के धुरन्धर विद्वानों को आमंत्रित किया था। इस प्रसंग पर धर्मविजयजी महाराज साहब को भी आमंत्रण दिया था। हजारों की ज़नसमुदाय के समक्ष प्रत्येक पण्डितों को भाषण देने के लिए पाँच-पाँच मिनट का समय निश्चित किया था। धर्मविजयजी महाराज का नम्बर आया। उन्होंने वक्तव्य प्रारम्भ किया। पाँच मिनट पूर्ण होते ही सभामण्डप तालियों के गड़गड़ाहट से गूंज उठी.... साथ ही सभा में से आवाज उठी आगे बोलिये, आगे बोलते जाइये.... वक्तव्य के दूसरे पाँच मिनट और दिए गए। पुनः सभा की और से आवाज आई। आगे बोलते जाइये, बोलते जाइये.... ऐसा करते-करते ४५ मिनट तक उनका वक्तव्य चला। तत्पश्चात् श्रीमालवीयजी ने खड़े होकर कहा महाराज साहेब अब कृपा करिए। इन सब पण्डितों को मैं क्या जवाब दूंगा। वाणी में ऐसी गजब की शक्ति आ गई, कहाँ से? विनय के बल से, मिली हुई गुरु कृपा से ही....

प्रशमरति नामक ग्रन्थ में उमा स्वाति महाराज कहते हैं कि विनय का फल शुश्रूषा है। अर्थात् सुनने की इच्छा और सेवा है। गुरु की सेवा द्वारा ही शास्त्रों के रहस्यों को प्राप्त कर सकते हैं और फिर ज्ञान से विरती आती है.... विरती से संवर.... परम्परा से मोक्ष तक पहुँचा जा सकता है। विनय यह सर्वगुणों का भाजन है।

जो कभी भूल न करे, उसे भगवान कहते हैं
जो भूल कर भूल जाए, उसे नादान कहते हैं
जो भूल कर मुस्कुराये, उसे शैतान कहते हैं
जो भूल कर कुछ सीख जाए, उसे इन्सान कहते हैं

कृतज्ञता

कार्तिक वदि ६

भवचक्र का पूर्णविराम!

ज्ञानी महापुरुष हमारे कल्याण के लिए श्रेष्ठ में श्रेष्ठ उत्तम धर्म को समझा रहे हैं कि मानव जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। इस अवतार में ही भविष्य के समस्त अवतार/जन्म ग्रहण पर पूर्णविराम लगा सकते हैं। खाना पीना और मौज-मस्ती ये तो आनुषंगिक फल है। मुख्यत: धर्म करना ही सच्चा है। धन प्राप्त करना यह सद्भाग्य नहीं, किन्तु धर्म प्राप्त करना यह महासद्भाग्य है। किसी भी वस्तु को ग्रहण करने के लिए मनुष्य निकलता है तो उसकी परीक्षा करने के बाद अच्छी तरह से उस वस्तु को देख लेता है। चाहे सब्जी हो या वस्त्रपात्र या कोई भी वस्तु, तब धर्मरूपी महामूल्यवान वस्तु को लेने के लिए मनुष्य को सर्वप्रथम धर्म की पूर्णत: परीक्षा करनी चाहिए। आज धर्म के नाम पर अनेक प्रकार के ढोंग करते हैं। हिंसा भी धर्म मानने में आती है। बकरी ईद के दिन लाखों जीवों का कत्ल होता हैं, तो वह उनका सबसे बड़ा धर्म है। नवरात्रि के दिनों में क्या माताजी की भक्ति के लिए लोग रात्रि जागरण करते हैं? नाचते हैं, कूदते हैं? नहीं! वास्तव में तो ये दिन भक्ति के स्थान पर धूर्तता के आ गए हैं। **नवरात्रि यह युवानों की प्रेमरात्रि बन जाती है।** मौज-मस्ती और प्रेमक्रीड़ा के अतिरिक्त कुछ नहीं होता है। किसी ने लिखा है कि 'बाहर गरबा रास और घर में त्रास' इसको धर्म किस प्रकार से माने? शास्त्रकार कहते हैं कि धर्म की पूर्णत: परीक्षा कर जीवन में उतारें। धर्म को भीतर उतारने के लिए भी गुणों की अपेक्षा हैं। उसमें हम उन्नीसवें गुण कृतज्ञता पर विवेचन कर रहे हैं।

कृतज्ञता

धर्मार्थी मनुष्य कृतज्ञ अर्थात् किए हुए उपकार को भूलने वाला नहीं होता है। ऐसा मनुष्य उच्च शिखर पर चढ़ता जाता है जबकि कितने ही

मनुष्य कृतघ्नी अर्थात् किए हुए उपकार को भूल जाने वाले होते हैं। ऐसे मनुष्यों का अधपतन होता है। कृतघ्नी मनुष्य से सामने वाला मनुष्य अत्यन्त ही आर्त्तध्यान का अनुभव करता है, उसको ऐसा प्रतीत होता है कि इस मनुष्य हो मैं ही ऊँचाई पर लाया और वही आज मेरा सामना कर रहा है। उसके निःश्वासों की हाय कृतघ्नी मनुष्य के जीवन बाग को जलाकर नष्ट कर देती है। इसीलिए कृतघ्नी मनुष्य नीचे ही नीचे गिरते जाता है। कृतज्ञ मनुष्य सामने वाले का राई जितना उपकार भी पहाड़ के समान मानकर जीवन पर्यन्त भूलता नहीं है। एक श्लोक आता है:-

''दो पुरिसे धरउ धरा अहवा दोहिं पि धारिया धरणी।
उवयारे जस्स मई उवयरियं जो न पम्हुसइ।''

हे धरतीमाता! तुम दो पुरुषों को ही धारण करना अथवा दो पुरुषों के कारण ही तुम स्थिर एवं स्थित हो। एक तो वह पुरुष जो उपकार करता है अर्थात् दूसरे का भला चाहता है जो यही उसका व्यसन है, और दूसरा जिसके उपकार को भूलता नहीं प्रत्युपकार करने के लिए सभी समर्थ नहीं होते किन्तु उपकार को तो स्मरण में रखते ही है न! आज दोनों प्रकार के मनुष्य प्रायःकर लुप्त हो गये हैं। प्रथम उपकार माता-पिता का है, इस सृष्टि पर हमको लाने वाले ये ही हैं। बाल्यावस्था से मानव बनाने वाले भी यही हैं किन्तु आज इस तथ्य को कोई स्वीकार नहीं करता। अरे, यहाँ तक दुष्ट मनुष्य ऐसी दुष्टता कर बैठता है कि माता को वह कहता है तुने मुझे दूध पिलाया है न! इसलिए ये ले तेरे दूध के पैसे और यहाँ से निकल जा। इतना ही नहीं धन के लिए माता-पिता की हत्या करने के लिए भी आज की सन्तान तैयार है। मनुष्य जीवन में कदम-कदम पर दूसरों की मदद की आवश्यकता पड़ती है वह एक हाथ से जीवन जी नहीं सकता। चाहे कोई पड़ोसी हो, वैद्य हो, डॉक्टर हो या कोई शिक्षक हो.... सबकि सहायता से ही मनुष्य जीवन बिता सकता है, किन्तु दुःख की बात है

कि किसी के उपकार को याद नहीं रख सकता। अरे, स्मरण न रखें तो न रखें किन्तु उसी का अपकार करता है। और उसका बुरा करने के लिए तैयार रहता है।

भगवान हमारे जैसे ही प्राणी थे किन्तु वे उत्तम किसलिए कहलाते हैं? क्योंकि भगवान कृतज्ञता गुण के स्वामी हैं। हम तो उपकारी मनुष्य के उपकारों को घड़ी के छट्ठे भाग में भूल जाते हैं इसीलिए तो हम आगे नहीं बढ़ पाते हैं और संसार में भ्रमण कर रहे हैं। भगवान तो गुणों के स्वामी हैं। जबकि हम अवगुणों के स्वामी हैं।

यह एक सामान्य सा गुण भी मनुष्य को कहाँ से कहाँ ले जाता है। निम्नांकित सत्य घटना से ध्यान आएगा।

शेयर बाजार का राजा

एक गरीब मारवाड़ी लड़का था। उसका नाम गोविन्द था। धन कैसे कमाया जाए यह उसके लिए सबसे बड़ा प्रश्न था। पढ़ा-लिखा बिल्कुल नहीं था। बम्बई की जाहो-जलाली देखकर उसने सोचा कि बम्बई में कुछ कमाई पर सकूंगा। यह सोच कर वह बम्बई आया। ऐसे बड़े बम्बई शहर में कहाँ रहना? बिल्कुल अनजान था। रोटी तो कमाई से प्राप्त हो जाती है परन्तु रहने का स्थान कहाँ से प्राप्त किया जाए? दिनभर इधर-उधर घूमकर मेहनत-मजदूरी की.... किसी ने कहा - भाई! अमुक धर्मशाला में चले जाना वहाँ तुमको रोटी और रहने का स्थान दोनों ही मिल जाएंगे। नाम और ठिकाना लेकर वह पूछता-पूछता वहाँ पहुँचा। मुनीमजी के पास गया, मुनीमजी से बात की और कहा - मैं इस शहर से बिल्कुल अनजान हूँ। मेरा यहाँ कोई परिचित नहीं है। नौकरी धन्धें के लिए आया हूँ, आपके यहाँ कोई काम हो तो मुझे रख लें। मुनीम को उसके हावभाव और मुखड़ा देखकर दया आ गई। उसने कहा - अच्छा, तुम ऐसा करना कि प्रतिदिन कितने यात्री आते हैं उसको लिख लेना। सुबह से काम पर लग जाना। सुबह हुई.... किन्तु इस भाई को न तो

लिखना आता था और न पढ़ना आता था। जैसे-तैसे दो दिन बीत जाने के बाद मुनीमजी ने कहा - भाई! मैं तुमको रखकर क्या करूँ? तुम्हें न तो लिखना आता है और न ही पढ़ना आता है, इसलिए मुझे तुम्हे छोड़ना पड़ेगा। यह लो दो दिन का वेतन और ये दो रुपये मैं अपनी जेब में से देता हूँ क्योंकि इस बड़ी नगरी में तुम कहाँ जाओगे और क्या खाओगे? दूसरी नौकरी खोजते हुए भी तुम्हे समय लगेगा, उस समय यह दो रुपये तुम्हारे काम आएंगे। निराश होकर वह वहाँ से निकला। कहाँ जाऊँ? जैसे-तैसे कुछ दिन बिताता है। किसी दुकान के चबुतरे पर या फुटपाथ पर समय बिताता है। धीमे-धीमे हतभाग्य का बादल छंटता जाता है और पुण्य आगे आता जाता है। क्रमश: वह बढ़ते-बढ़ते शेयर बाजार का राजा बन गया। चारों तरफ उसका नाम चलने लगा। वह गोविन्द में से गोविन्दराम सेकसरिया बन गया।

दो के स्थान पर दो लाख

इधर सर्वप्रथम जिस धर्मशाला में वह ठहरा था वह धर्मशाला जीर्ण-शीर्ण हो गई। धर्मशाला के मुनीम को धर्मशाला की मरम्मत कराने के लिए चन्दा इकट्ठा करने की शुरुआत की। गोविन्दराम का नाम सुनकर वह उनके पास आया। धर्मशाला फण्ड के लिये बातचीत की.... **गोविन्दराम** तो मुनीमजी को देखते ही पहचान गया। उन्होंने अपने मुनीम को बुलाकर कहा कि इन मुनीमजी को एक लाख रुपया दे दो। मुनीम को एक लाख रुपया शब्द सुनते ही आश्चर्य चकित हो गए। जिसको हजार, पाँच हजार के दान के लिए भी भाई, पिताजी करना पड़ता था वहाँ एक साथ ही इस जमाने में एक लाख रुपये का दान करने वाला यह कौन है? मुनीम तो फटे नेत्रों से उस सेठ को देखने लगा। उसी समय गोविन्दराम सेकसरिया ने कहा - मुनीमजी! तुम्हे याद है? कुछ वर्षों पहले मैं तुम्हारी धर्मशाला में फटेहाल मारवाड़ी लड़के के रूप में आया था। तुमने मुझे आश्रय दिया था। वह लड़का अन्य कोई नहीं मैं स्वयं था। जहाँ कोई खड़ा भी नहीं

रहने दे, उस समय में तुमने उस धर्मशाला में मुझे सर्वप्रथम आश्रय दिया था, अतएव उस कारण से एक लाख रुपया मैं तुम्हें भेंट में देता हूँ और तुमने मुझे जाते हुए मेरे ऊपर दया करके दो रुपये दिए थे, इसलिए आपको मैं दो लाख रुपया और देता हूँ। आप स्वीकार करके मुझे ऋण मुक्त करिए। मुनीम तो पागल ही हो गया। कहाँ २००-५०० रुपये का वेतन और कहाँ एक साथ इतनी बड़ी रकम.... दो रुपये के बदले में दो लाख रुपये!

कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य के जीवन में रहा हुआ एक-आधा गुण भी मनुष्य को कितना महान् बना देता है। इस कृतज्ञता नाम के गुण ने भी सेकसरिया को कहाँ का कहाँ पहुँचा दिया?

सद्गुण एक ऐसी वस्तु है जो प्रत्येक जन्म में साथ देती है। सद्गति को देने की जिम्मेदारी भी इस सद्गुण नाम के गुण में है। अच्छी से अच्छी जमीन, बढ़िया से बढ़िया खेत और सुन्दर से सुन्दर खेती की हो तथा वर्षा भी अच्छी हुई हो तो खेती कैसी होती है? सवाई से सवाई होती है या नहीं? होती ही है! बस इसी के समान यह बात है कि सद्गुणों के साथ धर्म का आचरण किया जाए तो उसका प्रभाव भी अचिन्त्य होता है। उपकारी के उपकार को सर्वदा याद रखना चाहिए। कृतज्ञ मनुष्य ही विश्व में शिखर पर पहुँचते हैं। दूध पर जो मलाई की परत बन जाती है, वह कितनी गाढ़ी और वजनदार होती है। वैसे तो वजनदार वस्तु तैरती नहीं बल्कि डूब जाती है। जबकि मलाई की परत तो दूध के ऊपर ही रहती है, क्योंकि दूध के समस्त परमाणु मलाई की थर को ऊपर रखते हैं। उसी प्रकार गुणवान मनुष्य को समाज ही ऊँचा लाता है, किन्तु हमारे में सबसे बड़ी कमी यह है कि हम सामने वाले व्यक्ति के उपकार को तुरन्त ही भूल जाते हैं। इसमें क्या बड़ी बात है, उसने ऐसा किया तो? यह तो उसका कर्त्तव्य था, उसको करना ही पड़ता न! हम ऐसी ही बातें करते हैं।

ठाणांग सूत्र में भगवान महावीर स्वामी और गौतमस्वामी का संवाद आता है। उसमें भगवान् कहते हैं – हे गौतम! तीन के उपकार का बदला चुकाया नहीं जा सकता:- १. माता-पिता २. पति ३. धर्माचार्य।

माता-पिता का उपकार – जिसने हमें जन्म दिया, हमारे पीछे जिसने रात-दिन एक किये, स्वयं भूखे रहकर हमें भोजन कराया। ऐसे माँ-बाप को तो शतपाक अथवा सहस्त्रपाक तेल से मालिश कर सुगन्धित जल से स्नान कराये, समस्त आभूषण पहनाये, और बत्तीस प्रकार के पक्वान और अठारह प्रकार की सब्जी से भोजन कराये और स्वयं के कन्धे पर बिठाकर यात्रा कराये। इतना करने पर भी उनके उपकार का बदला हम नहीं चुका सकते। गौतमस्वामी महाराज पूछते हैं- भगवन्! तब उनके उपकारों का बदला कैसे चुकाया जा सकता है? भगवान कहते हैं - हे गौतम! कदाचित् माता-पिता यदि धर्म मार्ग से विमुख हो जाएं तो वह पुत्र उनको धर्म मार्ग की ओर लाएं तथा उनके परलोक को भी सुधारे तभी उनके उपकार का बदला चुकाया जा सकता है।

विनयी पुत्र की आकुलता

एक तरफ शास्त्र में माता-पिता के विनय का इतना वर्णन किया और दूसरी तरफ आज इस संसार में माता-पिता कि अत्यधिक करुण स्थिति है। इन दोनों के बीच में आसमान और पाताल का अन्तर है, ऐसा क्यों? उसमें दो कारण हैं। एक तो माता-पिता का स्वभाव भी कारणभूत बन जाता है। अनेक बार माता-पिता ही पुत्र के घर को बरबाद कर देते हैं। पुत्र का उत्साह से विवाह करते हैं। वधू आती है और उस वधू के साथ रोज झगड़ा करते हैं। लड़के के कान भरते हैं कि तेरी बहू ऐसी है, तेरी बहू वैसी है, आदि। अब यदि लड़का विनयी होता है, तो उसके सामने प्रश्न खड़ा हो जाता है। यदि वह स्त्री का पक्ष लेता है तो माता-पिता कि भक्ति का प्रश्न आता है और यदि माता-पिता का पक्ष लेता है तो पत्नी को छोड़ना पड़ता है, क्या करूँ? शास्त्रानुसार चला जाए तो रुदन

करती हुई पत्नी को छोड़ना ही पड़ता है। वहाँ शास्त्रकार कहते हैं कि माता-पिता की भक्ति होते हुए भी उनके विचारों पर सोच-विचार कर न्याय करना ही चाहिए। उनका कथन मात्र स्वीकार करें ऐसा नहीं है। किन्तु उनके खाने-पीने की स्वास्थ्य की और किसी प्रकार की तकलीफ न पड़े इसका ध्यान अवश्य रखना चाहिए। उनको ऐसा न लगे कि पुत्र तो बहू का हो गया, हमारे सामने झांकता भी नहीं। इस घर में बहू हमारी इज्जत भी नहीं करती है तो भी उसे कुछ नहीं कहता है। बस यही ध्यान रखने का है बाकि तो उनके साथ विचार मिले या नहीं मिले.... लड़का लीलालहर करता हो और माता-पिता दु:खी हो उसी तरफ शास्त्रकारों ने अंगुली निर्देश किया है। माता-पिता को भी समझना होगा कि पुत्र की कठिनाई न बढ़ जाए ऐसा उन्हें नहीं करना होगा। स्वयं के स्वभाव को बदलना होगा।

दूसरा कारण यह है कि कितने ही पुत्र ऐसे होते हैं जो माँ-बाप का बिल्कुल ध्यान नहीं रखते हैं। बहू के आते ही उसमें इतने डूब जाते हैं कि सुबह व्यापार के लिए जाते हैं और सायंकाल में आकर तुरन्त ही अपनी स्त्री के साथ अपने कमरे में चले जाते हैं.... दिन में माता-पिता ने खाना खाया या नहीं, उनका स्वास्थ्य कैसा है आदि जानकारी लेने की परवाह भी नहीं होती है। ऐसी सन्तानों को भावी जीवन में पश्चाताप का समय आता है।

जैसी करणी वैसी भरणी

मैं एक परिचित भाई के यहाँ पगला करने के लिए गया.... अहमदाबाद शहर की बात है। उनका लड़का बड़ा चतुर था और व्यापार धन्धे में उसका नाम भी था। घर पर मोटरगाड़ी थी। स्वयं का बंगला था। वैभव के सब साधन थे। इज्जत वाला था। उसके घर जाकर मैं उसके पिता से मिला। मैंने कहा - .... भाई! तुम्हारे पुत्र ने तो बहुत नाम कमाया है। तुम तो बहुत सुखी लगते हो। वहीं , उसके पिता एकदम आकुल-व्याकुल होकर बोले - कैसा सुखी? मैं तो महादु:खी हूँ। सुनकर मुझे

आश्चर्य हुआ कि ऐसा सुखी मनुष्य भी मुझे कहता है कि मैं दुःखी हूँ। मैंने उससे पुनः पूछा - कैसे दुःखी हो? उसने उत्तर दिया - साहेब! यह लड़का तो मुझे पिता कहकर बुलाता भी नहीं है! आप कैसे हो यह पूछने का भी उसके पास समय नहीं है। मित्रों के साथ ही घूमता-फिरता और बातचीत करता है किन्तु मेरे पास कभी भी पाँच मिनट के लिए भी नहीं बैठता है। प्रतिदिन मन ही मन में मैं दुःखी होता हूँ। इस धन और वैभव का क्या करना! निरन्तर मन में जलन ही होती है। वहाँ क्या? शास्त्रकार यहाँ हमें अंगुली निर्देश करके कहते हैं ऐसा नहीं होना चाहिए। अन्त में उस पुत्र ने अपने पिता को सन्तुष्ट नहीं किया, तो इसका लड़का उससे भी बढ़कर निकला। पिता तो असन्तोष में ही मृत्यु को प्राप्त कर गये, अब यह पुत्र जब पिता बना तो अपने पुत्र के साथ उसका बोलचाल का व्यवहार भी नहीं था। एक ही दुकान में बैठते थे किन्तु एक दूसरे के साथ कोई बातचीत नहीं होती थी। अन्त में उसके पिता को कैंसर की व्याधि हो गई। मृत्यु निकट है। पिता प्रतिदिन अपने बिस्तर के आस-पास नजर डालकर देखता है कि कहीं मेरा पुत्र बैठा हुआ हो? एक ही पुत्र है। पुत्र को देखने के लिए उसकी आँखें पथरा गई है किन्तु पुत्र तो दुकान से आने के साथ ही सीधा अपने कमरे में चला जाता है और अपनी पत्नी के साथ गप्पें मारने लगता है किन्तु पिता तो मरण शय्या पर है फिर भी वह देखने के लिए जाता नहीं। अन्त में पुत्र अब आएगा-अब आएगा इसी आशा में ही उसका पिता मृत्यु को प्राप्त हो गया। स्वयं ने अपने पिता को सन्तुष्ट नहीं किया था तो उसके पुत्र ने भी उसके कलेजे को ठण्डा नहीं किया। जगत् का नियम है कि **जलाओगे तो जलोगे, सन्तुष्ट करोगे तो सन्तुष्ट होगे** माता-पिता के स्वभाव की ओर हमें देखना नहीं है.... हमें तो केवल यह देखना है कि उनकी सेवा में किसी प्रकार की कमी न रह जाए। हमें तो केवल अपना कर्त्तव्य ही पूर्ण करना है।

अब दूसरा उपकार है पति का, उसे आगे देखेंगे।

कृतज्ञता

कार्तिक वदि ७

शास्त्रकार महाराज धर्मरूपी रत्न कितना दुर्लभ है, यही हमें समझा रहे हैं। वे हमें नई दुनिया में ले जाते हैं। इस दुनिया में मोटर-बंगला, मान-प्रतिष्ठा और वैभव आदि की महत्ता है। जबकि महापुरुषों की दुनिया ही अलग है। उनकी दुनिया में ये सब वस्तुएं तुच्छ हैं। वहाँ केवल गुण की महत्ता है। किसके पास कितने गुण हैं? धन और बंगला परलोक में काम नहीं आते। वहाँ तो केवल गुण ही काम आते हैं। जिसमें जितने गुण होंगे, उन्हीं गुणों से हमारा कल्याण होने वाला है। धन या सत्ता अपनी इच्छानुसार नहीं मिलती। तुम यदि प्रधानमन्त्री की कुर्सी चाहते हो तो क्या वह मिल जाएगी। आज कुर्सी के लिए अपाधापी होती है न! लेकिन तुम अपनी इच्छानुसार उसे प्राप्त नहीं कर सकते किन्तु गुणों को जितना भी प्राप्त करना चाहो, उन्हें प्राप्त कर सकते हो या नहीं?

सिंहनी का दूध मिट्टी के पात्र में नहीं रह सकता। मिट्टी के पात्र में रखोगे तो वह पात्र ही टूट जाएगा.... उसको रखने के लिए तो स्वर्ण पात्र ही चाहिए। उसी प्रकार धर्मरूपी सिंहनी के दूध के लिए हमें स्वर्ण पात्र बनना पड़ेगा। यदि हमें जीवन को सुधारना है, भावी जीवन को सुन्दर बनाना है तो अभी से ही सद्गुणों को जीवन में उतारना प्रारम्भ करना होगा। अभी कृतज्ञता गुण की बात चल रही है। विनय और कृतज्ञता इन दोनों गुणों को जीवन में अभ्यास से परिपक्व करने की आवश्यकता है। जितना महत्त्व विनय का है उनका ही महत्त्व कृतज्ञता के गुण का है।

शिष्य बनना सहज है

आज हमें भी बहुत कुछ समझने का है। शिष्य बनना सहज है, किन्तु गुरु पद धारण करने में तो अनेक जवाबदारियों को वहन करना

पड़ता है। शिष्य को तो केवल गुरु का विनय ही करना है। जबकि गुरु को तो कृतज्ञ भाव से शिष्य की तमाम जिम्मेदारी धारण करनी पड़ती है, उसको पढ़ाने की और संक्षेप में उसके तन तथा मन की। इस लोक में उसे सुख-शांति प्राप्त हो और परलोक में भी सद्‌गति प्राप्त हो इसकी जिम्मेदारी गुरु पर ही रहती है।

यहाँ ही स्वर्ग है

शिष्य को पढ़ाते समय गुरु यदि वार्तालाप में बैठ जाए, तो यह नहीं चलेगा। विशेष कारण हो तो अलग बात है। प्रतिदिन उसको स्वाध्याय की खुराक देनी ही चाहिए। पण्डितों के पास अध्ययन करने के लिए छोड़ दिया, इससे हमारी जिम्मेदारी पूर्ण हो गई ऐसा समझकर बैठ नहीं सकते। वह क्या करता है? वह क्या अध्ययन करता है? प्रतिदिन की खबर रखनी पड़ती है। उसका उत्साह बना रहे इसलिए प्रोत्साहन भी देना पड़ता है। यदि इस कार्य में गुरु असावधानी रखे तो वह गिर जाता है। गुरु को शिष्य की ओर कृतज्ञ भाव और शिष्य को विनय के द्वारा भावभक्ति पूर्वक स्वयं का कर्त्तव्य निभाने का होता है। जिस प्रकार शिष्य को गुरु के आशीर्वाद की अपेक्षा है, उसी प्रकार गुरु को भी शिष्यों की शुभेच्छा की आवश्यकता है। मनुष्य तपती हुई धरती पर आसन बिछाकर शान्ति से बैठ सकता है क्या? नहीं! शीघ्र ही ऊँचा-नीचा होने लगता है। जहाँ ठण्डक हो वहाँ कैसी शान्ति से बैठता है। वैसे ही शिष्य भीतर से सन्तप्त हो.... उद्विग्न हो तो गुरु प्रसन्न मुद्रा में कैसे रह सकते हैं! नहीं रह सकते हैं! जो परस्पर कर्त्तव्य निभाते हैं उनके लिए तो यहाँ पर ही स्वर्ग है। वह स्वर्ग तो बहुत दूर है, किन्तु यदि कोई पूछे कि पृथ्वी पर स्वर्ग कहाँ है? तो कहना पड़ता है कि जाओ साधु-साध्वियों के उपाश्रय में, वहाँ स्वर्ग जैसी शान्ति और ठण्डक है। कैसा शान्त वातावरण होता है। मनुष्य संसार के ताप से तपकर उपाश्रय में आता है। आने के साथ ही उसे कैसी ठण्डक का अनुभव होता है। जिस प्रकार कोई तमतमाती हुयी गर्मी में से ए.सी. में आता है तो, कैसी ठण्डक का अनुभव करता है! तुम्हारे

संसार में भी बड़ों को कृतज्ञ भाव से छोटो को संभालना चाहिए और छोटो को भी विनय के द्वारा बड़ों का मान करना चाहिए।

भर्ता का उपकार

हमारे ऊपर माँ-बाप के अनंत उपकार हैं। उसका ऋण किस प्रकार चुकाया जाए इस पर हम वर्णन कर चुके हैं। अब भर्ता के उपकार और उसका प्रत्युपकार किस प्रकार किया जाए यह देखते हैं। **भर्ता अर्थात् पति इतना मात्र अर्थ करने का नहीं है। किन्तु भर्ता अर्थात् भरण-पोषण करने वाला।** जब हम किसी संकट में हो, तब जो हमारी सहायता करता है, वही हमारा भर्ता होता है। विषम परिस्थिति में किसी ने हमको धन दिया अथवा दिलवाया अथवा सच्ची सलाह दी, आश्वासन दिया और वह विषम परिस्थिति दूर हो गई। ऐसा तो अनेक स्थानों पर बनता है। अकस्मात् कोई बड़े नुकसान की सम्भावना बन जाती है, समाज में मान-सम्मान होने के कारण, लोगों में मुहँ दिखाना भी भारी पड़ जाता हो, ऐसी विषम स्थिति खड़ी हो जाए तब कोई पड़ोसी या मित्र सच्ची सलाह के द्वारा अथवा थोड़ी सी सहायता के द्वारा उसको बचा लेता है। हमारा समय बदल जाने पर हम करोड़पति बन गए और जिसने विषम परिस्थिति के समय हमारा सहयोग दिया उसका भी समय बदल गया हो, वह किसी दु:ख में आ पड़ा हो, उसकी स्थिति बहुत विकट हो गई हो, तब शास्त्रकार कहते हैं कि हम करोड़ रुपया देकर के भी उसके उपकार का बदला नहीं चुका सकते। उसने भले ही २००-५०० रुपये ही दिये हों किन्तु उस समय उसने नि:स्वार्थ भाव से दिए थे और आज हम उसके बदले में उसको करोड़ रुपया भी देते हैं, तो वह उपकार का बदला ही कहा जाएगा। नि:स्वार्थ भाव से किया गया काम ही ऊँचाई पर रहता है। अरे! तुम यदि कदाचित् करोड़ रुपये न भी दे सको लेकिन उसकी विकट परिस्थिति में सहायक तो अवश्य बन सकते हो....! गौतमस्वामी पूछते हैं - भगवन्! इस भर्ता का बदला कब चुकाया जा सकता है? भगवान् कहते हैं - हे गौतम! यदि वह व्यक्ति

किसी कारण से धर्म मार्ग से च्युत हो जाए तो उसको धर्म (सही) मार्ग पर लाने से, उसका परलोक सुधरे ऐसा करने से तब ही उसके उपकार का बदला चुक सकता है।

उपकार का बदला....!

अहमदाबाद में पांचकुआ में मेरे पूज्य पिताजी की दुकान के पास में एक सेठ की दुकान थी। इस दुकान में एक ग्रामीण लड़का नौकरी करता था। वह नीतिवान, मेलजोल के स्वभाव वाला था। कभी-कभी मेरे पिताजी के पास में आकर बैठ जाता था। इस सेठ की सन्तानों में केवल एक ही लड़का था, वह पैर से लंगड़ा था। वह व्यापार कर सके इस योग्य नहीं था। समय बीतता गया। वह ग्रामीण लड़का स्वयं की चतुरता से बहुत आगे बढ़ गया। उसने अपनी स्वतन्त्र दुकान कर ली, लाखों रुपये कमाये। इधर सेठ की दशा गिरने लगी, कमाने वाला कोई नहीं रहा, स्वयं भी वृद्ध हो गया। स्थिति बदतर हो चली। उस ग्रामीण लड़के को खबर लगी। वह स्वयं एक बड़ी पेढ़ी का मालिक बन गया था। वह सेठ के पास आया, सेठ के चरणों को छूकर अनुरोध पूर्वक कहा - सेठजी! मेरी पेढ़ी पर पधारिए! आपको केवल गद्दी पर ही बैठे रहना है। आपको वेतन मिलता रहेगा। सेठ को अपनी पेढ़ी पर लाया, गद्दी पर बिठाया। इतना ही नहीं वह उनको सेठ कहकर ही बुलाता था। ऐसे गुण ही मनुष्य को महान् बनाते हैं।

धर्माचार्य का उपकार

हमारे ऊपर तीसरा उपकार धर्माचार्य का है। ये हमको धर्म समझाकर हमारे दोनों लोकों को सुधारते हैं। इस लोक को भी सुधारते हैं और परलोक को भी सुधारते हैं। धर्माचार्य के उपकार का बदला किसी भी रूप में नहीं दिया जा सकता। एक श्लोक आता है -

समकितदायक गुरुतणो पच्चुवयार न थाय,
भव कोडाकोडी लगे करतां सर्व उपाय॥

अर्थात् समकित देने वाले गुरुदेव के उपकार का बदला करोड़ो भवों तक अनेक उपाय करने पर भी नहीं चुका सकते। लेकिन इनके उपकारों का सतत् चिन्तन करें तो ही हम पार उतर सकते हैं। यह धर्म जो टिका हुआ है वह देव और गुरु के बल से ही है। देव और गुरु न होते तो हमारी दशा क्या होती? जानवर से भी हम निम्न कोटि के होते। देव ने मार्ग बताया और गुरु ने वह मार्ग हम तक पहुँचाया। गौतम स्वामी पूछते हैं- हे भगवान्! तो ऐसे उपकारी धर्माचार्य का बदला हम कैसे चुका सकते हैं। भगवान् कहते हैं- हे गौतम! कदाचित् धर्म गुरु किसी संकट में आ गए हों, किसी अटवी में मार्ग भूल गए हों तब देव बना हुआ शिष्य आकर उनको योग्य स्थान पर छोड़ देता है तो भी उनके उपकार का बदला चुकाने में समक्ष नहीं होता। परन्तु किसी समय में धर्मगुरु स्वयं के मार्ग से चलायमान होने की स्थिति में हों अथवा चलायमान हो गए हों तो उनको वापिस धर्म मार्ग की ओर प्रेरित करना तथा उनको धर्म में स्थिर करने पर ही उनके उपकार का बदला चुका सकते हैं।

अनन्त उपकारी षट्काय जीव

इन तीनों के अतिरिक्त भी हम सूक्ष्मता से विचार करें तो हमारे ऊपर समस्त जीवसृष्टि का भी उपकार है। छ:काय जीवों के आधार पर ही तुम्हारी गाड़ी चल रही है न! पानी बिना, अग्नि बिना, वायु बिना, पृथ्वी बिना और वनस्पती के बिना तुम क्षण मात्र भी रह सकते हो क्या?

छोटे से छोटे जीवों का भी हमारे ऊपर कितना उपकार है और हम उन्हीं जीवों का निर्दयतापूर्वक कत्लेआम करते चले जा रहे हैं। पानी को आवश्यकता से अधिक बेवजह व्यय करते हैं, स्नान करने बैठेंगे तो नल खुला ही छोड़ देते है, फव्वारे खुले.... बिलकुल बेपरवाह। जिस दिन यह धरती माता रुठ जाएगी और मेघराजा रुठ जाएंगे उस दिन क्या होगा? तुम इस प्रकार से उसको बरबाद कर रहे हो। तुम्हारे प्रतिदिन के नि:स्वार्थ उपकारी, इन सूक्ष्म जीवों के उपकारों का कब विचार करोगे? आज भी बहुत से विवेकी मनुष्य पृथ्वी, पानी और अग्नि को देव मानते

हैं। बहुत से लोग उठने के साथ ही धरती माता के उपकार को याद कर उसको हाथ जोड़ते हैं। धरती को हाथ लगाकर अपने ललाट पर लगाते हैं और इस प्रकार से उसका बहुमान करते हैं। हमें आश्रय देने वाला कौन है? धरती माता ही है न! तुम यदि सब में गुण देखने का प्रयत्न करोगे तो तुमको सभी स्थलों में गुण और उपकार ही दिखाई देंगे। हम कितने जीवों के उपकारों से दबे हुए हैं और इन उपकारियों का ही हम बेदर्द होकर नाश कर रहे हैं। चिन्तन करोगे तो सत्य हाथ में आवेगा। षट्काय जीवों की सहायता के बिना हमारी गाड़ी चल नहीं सकती, यह हकीकत है किन्तु उसका व्यय आवश्यकता के अनुसार ही करें।

कृतज्ञी कुमारपाल

महाराजा कुमारपाल के जीवन में यह गुण अच्छी तरह से समाया हुआ था। एक समय उनकी ऐसी विषम परिस्थिति आ गयी थी कि चना और मुरमुरे भी फांकने को नहीं मिलते थे। गाँव-गाँव भटकते हुए भागदौड़ करते थे। सिद्धराज के सैनिक उनको मारने के लिए हाथ धोकर पीछे पड़े हुए थे। हत्यारों को खबर पड़ी कि कुमारपाल इस गाँव में है तो उन्होंने सारे गाँव को घेर लिया। कुमारपाल किसी कुम्हार के घर के पास खड़े थे। उनको समाचार प्राप्त हुए कि हत्यारे लोग आ पहुँचे हैं। वे झट से कुम्हार के घर में गए। कुम्हार से कहते हैं मुझे कहीं छुपा लो, पर कुम्हार उन्हें छुपावे कहाँ? कुम्हार ने कहा - भट्टे को सुलगाने के लिए मैंने कांटे लाकर जहाँ ढेर लगाया है। तुम उसके नीचे छुप जाओ, मैं तुम्हारे ऊपर और कांटे डाल देता हूँ। मरता क्या नहीं करता, कुमारपाल काँटों के नीचे छिप गये। खबर मिलने पर हत्यारे ढूंढते हुए उस कुम्हार के घर पर आ पहुंचे। सारा घर घूमकर देख लिया। कांटों के ढेर को कौन छूने जाए? जाएं तो कांटे लगे इसलिए वहाँ कोई गया नहीं और कुमारपाल पूर्ण रूप से बच गये। हत्यारे चले गए उसके बाद कुम्हार ने बड़ी सावधानी से उनको बाहर निकाला। वे मार्ग में जा रहे थे। उस समय उनको बहुत तेज भूख लगने लगी, पास में कुछ खाने को नहीं था। उसी रास्ते पर एक

बैलगाड़ी में कोई महिला जा रही थी। उसके पास खाने की सामग्री थी। महिला ने देखा, यह कोई उत्तम पुरुष है। स्वयं भोजन करने के लिए बैठी उस समय कुमारपाल को भी भोजन करने के लिए बुलाया। पूर्व समय में यह एक रिवाज था कि मनुष्य अकेला भोजन नहीं करता था। किसी को भी देकर के ही भोजन करता था। गीता में भगवान् श्री कृष्ण ने कहा है - **ते त्वघं भुञ्जते पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।** अर्थात् जो अपने लिए पकाते हैं वे पाप का भक्षण करते हैं। हम तो **पहले स्वयं खाओ और पीछे स्वजनों को खिलाओ....** समझ गए न! कुमारपाल को दही का करम्बा खिलाती है। अब, जब कुमारपाल राजगद्दी पर आता है, तब उस महिला के हाथ से राजतिलक करवाता है। उस महिला का नाम श्रीदेवी था और कुम्हार को भी बुलाता है.... जिन-जिन लोगों ने उनकी सहायता की थी, उन सबको वह बुलाता है और योग्य भेंट देकर उनका सम्मान करता है। कैसे गुणग्राही और कैसे कृतज्ञी! कुमारपाल महाराजा में एक तो कृतज्ञता का गुण था और दूसरा गुण था सदाचार का, ये दोनों गुण महान् थे।

कुम्भार टुकड़े की आयम्बिल शाला

इस कलियुग में भी इस गुण की बदौलत बहुत से लोग महान् बन गए हैं। सामान्य मनुष्य भी इस गुण के बल पर महान् बनता है। मुम्बई में कुम्भार टुकड़े में इस समय बहुत बड़ी आयम्बिल शाला चल रही है। जिसके सहयोग से यह चल रही है उस भाई का भी यह लम्बा इतिहास है। उस शाला में यह भाई प्रतिदिन भोजन करने के लिए आता था, आयम्बिल करने के लिए नहीं। क्योंकि वह भाई अत्यन्त गरीब था। सुबह-शाम खाने की चिन्ता रहती थी। खाने के लिए क्या करना यह एक बड़ा प्रश्न था। **पेट करावे वेठ।** मनुष्य सब कुछ सहन कर सकता है किन्तु भूख के दुःख को सहन नहीं कर सकता। इसीलिए यह कहावत है कि - **बुभुक्षितः किं न करोति पापम्।** अर्थात् भूखा मनुष्य कौनसा पाप करने के लिए तैयार नहीं होता। इस भाई को एक उपाय सूझा। उसने

विचार किया कि आयम्बिल शाला में जाऊँगा तो मुझे खाने के लिए कोई भी नहीं रोकेगा। हमारे साधर्मिकों की यह दुर्दशा है। जैन समाज के पास अढलक लक्ष्मी होने पर भी ऐसे बहुत से साधर्मिक लोग आज की तारीख में भूखे सोते है, सुबह-शाम जैसे-तैसे करके अपना गुजारा चलाते है। दोपहर को एक टाईम पेट भर के आयम्बिल का खाना खाकर आते हैं.... ऐसे करते-करते वर्षों बीत गए.... इस भाई के भाग्य ने साथ दिया, व्यापार धन्धा जम गया, अच्छी आमदनी होने लगी। इसके जीवन में कृतज्ञता नाम का गुण था। इसलिए उसने विचार किया कि आयम्बिल शाला ने मुझे बचाया है, तो मुझे भी मदद करनी चाहिए। मुझे जीवित रखने वाली यही शाला है, इसलिए उसने स्वयं की कमाई आयम्बिल शाला में देनी प्रारम्भ की। ऐसा सुना है कि अब तो उसके द्रव्य से ही यह आयम्बिल शाला चल रही है।

ये गुण महान् में महान् है। इस गुण को जीवन में अच्छी तरह से उतारना चाहिए। हमें याद रखना है कि मेरे ऊपर किन-किन के उपकार हैं.... जबकि हम तो यह याद रखते हैं कि किस-किस पर हमने उपकार किए हैं। इस विचारधारा को बदलेंगे तभी हम ऊँचे आ सकेंगे। हमारे द्वारा किए हुए उपकार को भूल जाना है और हमारे ऊपर दूसरों के द्वारा किए हुए उपकार को सारी जिन्दगी याद रखना है।

कांटे नहीं फूल बनकर खिलना सीखो।
ज्वाला नहीं ज्योत बनकर जलना सीखो।
जीवन में आने वाली कठिनाई से,
समझकर चलना सीखो।

परहित-चिन्तक

कार्तिक वदि ८

संज्ञा में डूबा हुआ जगत

सम्पूर्ण विश्व चार संज्ञाओं में डूबा हुआ है। धर्मसंज्ञा प्राप्त करने की किसी को आतुरता ही नहीं है और जिसके पास धर्म संज्ञा है, वह भी बाहरी है। जीवन-स्पर्शी देखने को नहीं मिलती है। जगत् के जीव जी रहे हैं, परन्तु जीने-जीने में अन्तर है। बेचारे बहुत से मनुष्य आयुष्य पूर्ण करने के लिए ही जीते हैं। इनके सामने कोई आदर्श नहीं होता और न ही होती है गति, कितने ही खाने के लिए, कितने ही पीने के लिए और कितने ही लड़ने के लिए ही मानो जी रहे हों। कितने ही आहार संज्ञा में और कितने ही भय संज्ञा में जी रहे हैं। सामान्य मनुष्यों की अपेक्षा बड़े मनुष्यों को अधिक भय रहता है, क्योंकि उनको सत्ता आदि की लालसा रहती है। कितने ही रोग के भय में जीवित रहते हैं, कितने ही मौत के भय में भी जीते हैं। मानो सारी जिन्दगी व्यर्थ ही कर दी हो। पापमय प्रवृत्ति में ही जो व्यस्त रहते हैं उनको ही मौत का भय है। जो भगवान के नाम में मग्न रहते हैं उनको मौत का भय नहीं लगता। सन्त पुरुष तो स्वयं आगे से मौत को निमन्त्रण देते हैं।

शिवभक्त संन्यासी

एक शिवभक्त संन्यासी थे। जीवन में अच्छी साधना की थी। उनके पास में एक सर्प भी था। उसको कण्ठ में अथवा हाथ पर लपेट कर रहते थे। कुछ वर्ष बीत गए। संन्यासी को ऐसा आभास हुआ कि बस मुझे अधिक जीवित रहने की आवश्यकता नहीं है। मेरा काम पूर्ण हो गया है। अब मृत्यु की चाहना है। कहाँ मृत्यु से दूर भागते हुए आज के मानवी और कहाँ मृत्यु को स्वयं आगे से आमंत्रण देने वाले सन्त....! संन्यासी ने सदैव

के साथी सर्प को कहा कि तू मुझे डंक मार दे, मेरा काम पूर्ण हो गया है। सर्प डंक मारने के लिए तैयार नहीं हुआ। स्वयं के साथी को कैसे डंक मारे? मानव की अपेक्षा सर्प बढ़ गया। आज तो मानव ही स्वयं के स्वजन सम्बन्धियों को पहले संकट में डालता है। घर में प्रसंग हो तो सबसे पहले टेढ़ा कौन चलता है, निकट में तो स्वजन-सम्बन्धि ही होते हैं। कई वर्षों पूर्व की बात निकालकर कठिनाई खड़ी कर देते हैं जब कि इस् तिर्यंञ्च योनि में रहा हुआ सर्प भी स्वयं मालिक के कहने पर भी डंक मारने को तैयार नहीं होता है। बहुत विनंती करने के बाद भी जब सर्प तैयार नहीं हुआ तब संन्यासी सर्प को कहता है - जो तुमने मुझे डंक नहीं मारा तो मेरे गुरु की सौगन्ध है। बेचारा अब वह क्या करे? गुरु की सौगन्ध को बिना मन से पालने के लिए तैयार होता है। उसने जरा सा मुँह खोला, संन्यासी ने तत्काल ही अपनी अंगुली उसके मुँह में डाल दी। सर्प ने डंक तो नहीं मारा किन्तु अंगुली के स्पर्श से ही उसका जहर शरीर में फैलने लगता है। स्वयं का अन्तिम समय निकट जानकर स्वयं ही सर्प को सुरक्षित स्थान पर छोड़ आता है और समाधि लगाकर बैठ जाता है। अन्त में इच्छित मृत्यु को प्राप्त कर परमात्मा में लीन हो जाता है।

धर्म की संज्ञा में डूब जाओ

कितने ही मूढ़ जीव मैथुनसंज्ञा में डूबे हुए हैं और परिग्रह संज्ञा में तो सारा विश्व ही डूबा हुआ है। मनुष्य को एक ग्रह लग जाता है, तो भी वह तौबा-तौबा पुकार उठता है लेकिन जिसको परि अर्थात् चारों तरफ से ग्रह लग गए हों अर्थात् परिग्रह की ममता हो तो उसका क्या नहीं होगा। इन चार संज्ञाओं के विचारों की प्रवृत्ति में ही मनुष्य व्यस्त है। किन्तु जिनके विचारों में तुम निरन्तर जी रहे हो, वह सब तो यही रहने वाला है। शास्त्रकार कहते हैं कि धर्म की संज्ञा में जीओगे तो अन्य सभी संज्ञाओं से तुम्हे मुक्ति मिल जाएगी।

परहित चिन्तक

धर्म के साथ गुण हों तो वह छोटा सा धर्म भी जीवन में फलीभूत हो जाता है। बीज छोटे से छोटा होता है, पर उस बीज में से वटवृक्ष कितना फैलाव लेता है? भले ही धर्म थोड़ा सा करो, किन्तु वह गुणयुक्त होगा तो वटवृक्ष की भांति विस्तार पाएगा। **धर्म के योग्य व्यक्ति का बीसवाँ गुण है परहित चिन्तक। अर्थात् दूसरे के हित का ही विचार करने वाला।** पूज्य आनन्दघनजी महाराज कहते हैं - **अवसर बेर-बेर नहीं आवे, ज्युं जाणे त्युं करले भलाई, जनम-जनम सुख पावे...।** धर्मी मनुष्य स्वभाव से ही परोपकारी होना चाहिए। कई बार मनुष्य दिखाने के लिए, कई बार आगे आने के लिए और कई बार व्यवहार से मनुष्य भला करता है। पर उससे वह आगे आने की अपेक्षा पीछे ही चला जाता है। शास्त्रकार कहते हैं कि जब भी अवसर मिले उसको शीघ्रता से स्वीकार कर लो। चाहे कोई पक्षी दु:खी हो, कोई पशु दु:खी हो या कोई मनुष्य दु:खी हो तो दिया हुआ या हमारा किया हुआ कभी भी निष्फल नहीं जाता है। किसी को तुमने खिलाया हो, अरे! एक कप चाय पिलाई होगी तो वह भी निष्फल नहीं जायेगी।

माण्डल गाँव के **जगुभाई** के द्वारा वर्णित सत्य घटना उन्हीं के शब्दों में - हमारे यहाँ एक पटेल भोजन करने के लिए आया। उस पटेल के साथ उसका एक मित्र भी था। उनके साथ मेरी किसी प्रकार की जान-पहचान नहीं थी, किन्तु पटेल के साथ थे, इसलिए वे भी भोजन के लिए आए। पटेल को मैंने बिना लिखापढ़ी के ५०,०००/- रुपये दिए। थोड़े समय में ही उन्हें वापिस लौटाने थे। कुछ ऐसी घटना हुई कि अचानक ही पटेल की मृत्यु हुई। उस पटेल के सन्तानों में चार लड़कियाँ ही थी। पुत्र एक भी नहीं था। यह धन उधार लेने की घटना किसी को खबर भी नहीं थी केवल साथ में आने वाले मित्रों को ही यह खबर थी। अब धन का बटवारा हुआ, मैं तो उधार दिया हुआ धन वापिस नहीं आएगा ऐसा

मन में सोच बैठा था, किन्तु पटेल के वह मित्र, जिसके पेट में मेरा अन्न पहुँचा हुआ था, उसने किसी भी जान-पहचान के बिना ही ५०,०००/- रुपये मुझे वापिस दिलवाए। उसने पटेल के जमाइयों को यह कहा कि उस भाई के पैसे नहीं रख सकते। क्योंकि मेरे सामने ही उसने धन दिया था वह भी बिना लिखापढ़ी के, किन्तु धन दिया है यह निश्चित है। दो वर्ष के बाद अचानक ही वह भाई धन वापस लौटा गया। किया हुआ कभी भी निष्फल नहीं होता। जगुभाई के स्वयं के शब्द थे - साहेब! मुझे खाने की अपेक्षा खिलाने में बहुत ही आनन्द आता है। इससे जीवन में नम्रता भी आती है। सामने वाला व्यक्ति छोटा हो या बड़ा उसको पास में बिठाकर खिलाने में एक अलग ही आनन्द आता है।

मोक्ष में जाने वाले अनेक होते हैं, किन्तु तीर्थंकर बनने वाले तो विरले ही होते हैं क्योंकि तीर्थंकर परमात्मा के हृदय में तो केवल परोपकार की ही भावना भरी हुई होती है। इसीलिए वे परार्थ-व्यसनी कहलाते हैं। जिसको व्यसन होगा उसकी पूर्ति के बिना मनुष्य एक घड़ी भी नहीं रह सकता। उसी प्रकार भगवान् को परोपकार के बिना चैन नहीं पड़ता था। जीवन में पुण्य प्राप्त करने की अनेक कुंजियाँ है। दूसरे का भला करने की भावना ही मनुष्य को ऊँचाई पर ले जाती है। **कर भला होगा भला, कर बुरा होगा बुरा।** प्रकृति का यह सनातन सत्य है कि भला करने के विचारों से जगत् में रहे हुए शुभ परमाणु के पुद्गल स्वतः ही आकर्षित होकर आते हैं। बिना पुरुषार्थ ही पुण्य का बल एकत्रित हो जाता है और मनुष्य को शिखर पर पहुँचा देता है।

विचारों का चमत्कार....!

एक नगर में एक बड़ा जागीरदार रहता था। उसके चार पुत्र थे। चारों का विवाह हो चुका था। सब प्रेम के साथ रहते थे। पुत्र खेती संभालते थे और बहूएं भी खेती के काम में मदद करती थी। एक बार चारों बहूएं खाना लेकर खेत में जा रही थी। मार्ग में एकदम आंधी आती

है। आंधी इतनी भयंकर होती है कि आगे का कुछ दिखाई नहीं देता। इस कारण से चारों बहूएं एक वटवृक्ष के नीचे आकर बैठ जाती हैं। इस तरफ ससुरजी भी खेत जाने के लिए घर से निकलते हैं। वे भी आंधी-तूफान के कारण उसी वृक्ष के थड़ के दूसरी तरफ आकर बैठते हैं। वड़ का थड़ बहुत विशाल होता है, इस कारण से एक दूसरे को देख नहीं पाते। जहाँ स्त्रियाँ मिलती हैं, वहाँ वे बोले बिना नहीं रह सकती। चारों औरतें बातों में लग गई हैं। वहाँ बड़ी बहू बोली - इस घर में आकर हमने क्या प्राप्त किया? किसी भी दिन अच्छी साड़ी भी पहनने को नहीं मिली। उसी समय दूसरे नम्बर की बहू बोली - साड़ी की तो बात ठीक है, किन्तु हमने किसी भी दिन तीन रत्ती की एक अंगुठी भी नहीं देखी। इस धन का क्या करेंगे? उसी समय तीसरी बहू बोल उठी - साड़ी तो ठीक है, जैसी-तैसी भी हो वह शरीर ढंकने के काम ही आती है न! और सोना तो कोई रोज पहनने में नहीं आता। वार-त्यौहार ही पहना जाता है, इसीलिए यह नहीं भी हो तो चलता है.... किन्तु मैं तो ऐसा मानती हूँ कि इस घर में आने के बाद मुझे तो किसी भी दिन अच्छा खाने को भी नहीं मिला। रोज बाजरे का अथवा ज्वार का रोटा और छाछ ही मिलती है.... यह भी कोई जीवन है? परिश्रम सबको करने का है पर इच्छानुरूप कुछ भी नहीं मिलता है.... चौथी बहू जो बहुत उन्नत विचारों वाली थी, उसके सन्मुख परलोक था। वह समझती थी कि **इस लोक में प्रकाश फैलेगा तो परलोक सुधरेगा**। जो इस लोक में जीवन को खाने-पीने में और मौज-मजा में व्यर्थ कर देंगे तो अगले जन्म में क्या होगा? इसलिए उसने कहा - भाभियों! खाना-पीना, पहनना, ओढ़ना यह तो मामूली बात है, क्या इसके पीछे महामूल्यवान जन्म को निष्फल कर दें....? मुझे तो ऐसा लगता है कि ससुरजी के पास इतना धन होने पर भी किसी भी दिन हम दो पैसे का दान भी नहीं कर सकते। परोपकार का कोई भी कार्य नहीं कर सकते। हमारा जीवन कितना निष्फल जा रहा है। थड़ के पीछे बैठा

हुआ ससुरजी इन चारों की बातों को सुनता है। चौथी बहू का कथन उसको खटक गया.... उसने विचार किया कि परिश्रम पूर्वक हम जो कमा रहें हैं, वह क्या किसी को देने के लिए थोड़ी है? इस बहू को तो अच्छी तरह से शिक्षा देनी होगी.... इस प्रकार बातें करते-करते बवंडर थमने पर चारों बहूएं खेत की ओर चलीं.... ससुरजी भी खेत पहुँच गये। ससुरजी ने घर आकर, बड़ी बहू को कपड़े प्यारे थे इसलिए अच्छे-अच्छे कपड़े लाकर उसको दिए। जिसको स्वर्ण प्रिय था, उसको अच्छे आभूषण घड़वा कर दिए। तीसरी बहू को खाना-पीना प्यारा था, उसको अच्छी-अच्छी मिठाईयाँ लाकर दी। चौथी बहू को कुछ भी नहीं दिया। घर में उसका तिरस्कार होने लगा। सारे दिन काम करने पर भी उसको कोई मान-सन्मान नहीं.... अच्छा खाने को भी नहीं देते थे। यह बहू मन ही मन में आकूल-व्याकूल होने लगी.... उसने विचार किया कि मैंने कोई अपराध नहीं किया है, फिर भी मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों? ऐसा लगता है कि उस दिन बड़ के नीचे हमारी बातों को ससुरजी ने भी सुन ली है, किन्तु मैंने इसमें गलत क्या कहा था। सबको इच्छानुसार वस्तुएं मिल गई, मेरी ही उपेक्षा हो रही है। उसने अपने पति से बात की। पति को भी ऐसा लगा कि इसके विचार बहुत ऊँचे हैं। मुझे इसकी इच्छा पूर्ण करनी चाहिए। वह किसी को कहे बिना ही धन कमाने के लिए परदेश चला गया। मन में एक ही विचार था कि पत्नी को दूसरों की भलाई करने की भावना है, वह मुझे पूर्ण करनी है। दूसरे का भला करना है, इन्हीं विचारों में रमण करता हुआ वह आगे बढ़ता है। अब देखिए दूसरे का भला करने की भावना, कैसे पुण्य को खेंचकर लाती है।

विचारों के पुण्य से राजा बना

आगे बढ़ते हुए किसी गाँव के बाहर वटवृक्ष के नीचे विश्राम लेने के लिए बैठता है। थकावट के कारण उसे निद्रा आ जाती है। इस ओर उस राज्य का राजा मरण को प्राप्त हुआ। वह पुत्र रहित था। राज्य किसको सौंपना यह विचारणा चल रही थी। राज्य के लोग परम्परा के अनुसार

दिव्य करते हैं अर्थात् हाथी की सूंड में कलश देते हैं, वह कलश जल जिस पर डाल दे उसे ही राजा बनाना होता है। हाथी सूंड में कलश लेकर फिरता-फिरता उस वड़वृक्ष के पास आता है और वहाँ सोए हुए व्यक्ति पर कलश का जल डाल देता है। जनता उसके नाम का जयनाद करती है। उसका राज्य अभिषेक किया जाता है। दूसरों का अच्छा करने की भावना से वह राजा बनता है। वह दीन-दु:खियों की सहायता करने लगता है। इस ओर माता-पिता के यहाँ गिरती दशा चालू हो जाती है.... घर से लक्ष्मी चली जाती है.... खाने के भी सांसे पड़ने लग जाते हैं। ऐसे विकट समय में उसने सुना कि अमुक देश का राजा दीन-दु:खियों की मदद करता है। इसलिए वे भी फिरते-फिरते उस देश में आए.... राजा झरोखे में बैठा-बैठा नगर की शोभा देख रहा था। वहाँ उसने रास्ते पर चलते हुए स्वयं के माता-पिता, भाई-भाभी और पत्नी आदि को कंगाल अवस्था में देखा। तत्काल ही झरोखे से उठकर नीचे की ओर दौड़ा। आकर माता-पिता के चरणों में गिरा। माता-पिता आदि यह देखकर आश्चर्य का अनुभव करते हैं। वह सबको अपने महल में ले जाता है। माता-पिता की सेवा, शुश्रूषा करता है। भाईयों को भी योग्य स्थान देता है और पत्नी की इच्छा पूर्ण करता है। प्रतिदिन पत्नी के हाथ से दान की गंगा बहाता है। मन की शुभ भावना से ही पुण्य खींचकर आता है। वह मिली हुई लक्ष्मी को सार्थक करता है। **लक्ष्मी का उपयोग तीन स्थानों पर होता है - गात्र, खात्र और पात्र।** गात्र अर्थात् शरीर। स्वयं के वैभव के लिए लक्ष्मी खर्च करता है। खात्र अर्थात् चोर इत्यादि चोरी कर जाएं अथवा आजकल तो सरकार आकर लूट जाती है। पात्र - शास्त्रकार कहते हैं कि यदि तुम्हारा धन सुपात्र को दिया जाएगा तो वह सार्थक होगा, तुम्हें सद्गति प्रदान करेगा।

सज्जनों का वैभव परोपकार के लिए ही होता है। परोपकारी मनुष्य के रोम-रोम में एक ही विचार चलता है कि दूसरे का भला कैसे

हो? ऐसे शुभ विचारों से वह लोगों में अधिक प्रिय बनता है। परोपकारी मनुष्य लेने वाले को खोजता है। जबकि लेने वाला देने वाले की खोज करता है, किन्तु इस सम्पत्ति को दान करने का मन कब होता है? परिग्रह परिमाण किया हो तब ही। अन्यथा जितना कमाया उतना ही तिजोरी में डाल देते हैं। आवश्यकता हो या न हो.... संग्रह करते ही रहते हैं।

जीवदया प्रेमी - भणसाली

कीर्त्तिभाई भणसाली का नाम तो तुमने सुना ही होगा.... जीवदया प्रेमियों में उनका स्थान सर्वप्रथम आता है। आज तो वे करोड़पति हैं। कुछ वर्षों पहले ही उनका स्वर्गवास हो गया। एक समय ऐसा था कि वे स्वयं ही दुकान चलाते थे। क्योंकि परिस्थिति सामान्य थी। कोई भी ग्राहक दुकान पर कुछ भी वस्तु लेने के लिए आता और अमुक रुपयों की वस्तु लेता और यदि हिसाब में ग्राहक से चार आने भी लेने शेष रहते, तो ग्राहक कहता - कीर्त्तिभाई अब चवन्नी तो जाने दो। मेरे लड़कों के लिए मूंगफली लेने के काम आएंगे। तब कीर्त्तिभाई कहते - अबे! चार आने कोई मुफ्त में आते हैं क्या? पहले चार आने और दे और फिर जा। हिसाब में समझौता नहीं करते थे। पाई-पाई का हिसाब रखने वाले इस भाई के रोम-रोम में दूसरों का भला करने की भी भावना थी.... समय बीतता गया। उनके ऊपर लक्ष्मी देवी की कृपा हुई किन्तु उन्होंने पूर्व में ३०० रुपये का परिग्रह परिमाण व्रत स्वीकार किया था। मनुष्य किसी भी प्रकार का नियम लें तो उसमें परीक्षा की घड़ी तो आती ही है! उन्होंने परिग्रह परिमाण लिया और इधर व्यापार में लाखों रुपये आने लगे। ऐसा होने पर भी वे अपने नियम में अडिग थे। ३०० रुपये में दो जोड़ी कपड़ा और चप्पल लेते थे। तथा बारह महीने चलाते थे। व्यर्थ खर्च पर खूब अंकुश कर रखा था इसलिए खर्च बहुत कम था और लाखों कि कमाई थी, इसलिए लक्ष्मी को सार्थक करने के लिए जीवदया में खर्च करने लगे। दुष्काल के समय में गाँव-गाँव घूमकर पशुओं के लिए वाड़ा खड़ा

करते। प्रतिवर्ष एक करोड़ रुपया जीवदया में खर्च करने लगे। समय बदला मंहगाई बढ़ी किन्तु स्वयं ने परिमाण के अनुसार ३०० रुपये ही रखे। आज तो तुम्हारी एक चप्पल जोड़ी भी ३०० रुपये की होती है। कीर्त्तिभाई अनेक दुकानों पर जाते थे, मोटे कपड़े की धोती पहनते थे क्योंकि उसे बारह महीने तक चलाना होता था! चप्पल भी चालू ही खरीदते थे। इसमें भी कहीं गए हों और चप्पल चोरी हो जाए तो बारह महीने तक चप्पल के बिना ही चलते थे.... करोड़पति होने पर भी ३०० रुपयों में ही उन्होंने अपना जीवन चलाया। आज चारों तरफ उनका नाम है। उनके एक मात्र पुत्र महेश भाई भणसाली ने तो परोपकार के हेतु विवाह भी नहीं किया। केवल जीवों की सेवा ही उनका लक्ष्य है। उनके जीवन में परोपकार कितना ओतप्रोत हो गया है। सादगी भी कितनी? तुम उनके घर जाओ तो स्वयं चाय बनाकर तुमको पिलाएंगे। घर में कोई नौकर-चाकर नहीं रखते। ऐसी विरल विभूतियों से ही जगत् शोभायमान है और ऐसे परोपकारी मनुष्य ही धर्म के लायक बनते हैं।

भले बनो किन्तु भोले न बनो....
उदार बनो किन्तु उड़ाऊ मत बनो....
खर्च में कटौती करो किन्तु कृपण न बनो....
सच्चे बनो किन्तु खारे मत बनो....
सत्यग्राही बनो किन्तु सत्याग्रही न बनो....

मरने के बाद आँखें खुली क्यों रहती है? शायद
अब भी दुनिया में कुछ देखने का बाकी रह गया है।

लब्धलक्ष्य

कार्तिक वदी १०

महापुरुष कहते हैं कि सभी अवस्थाओं में धर्म आवश्यक है। वृद्धावस्था कि अपेक्षा भी युवावस्था में तो धर्म की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि बड़ी उम्र में बुद्धि परिपक्व होने के कारण मनुष्य प्रत्येक कार्य विचार करके करता है किन्तु युवावस्था में मदोन्मत्त बनकर मनुष्य कार्य-अकार्य में देखे-विचारे बिना ही कूद पड़ता है। अतः धर्म की सच्ची आवश्यकता युवावस्था में है। युवावस्था में किया हुआ धर्म वृद्धावस्था में भी मनुष्य को सुख और शान्ति देता है।

भगवान की दया अर्थात् क्या?

जीवात्मा की दृष्टि इस लोक तक ही सीमित है। शास्त्रकार कहते हैं कि इस लोक के अतिरिक्त दूसरा भी एक लोक है, जहाँ हमें जाना है। अधिकांशतः लोग तो केवल बंगला, गाड़ी और पुत्रों में ही स्वयं के जीवन को सफल मानते हैं। यदि कोई पूछता है कि भाई कैसे हो? तो उत्तर देगा- साहेब भगवान की दया है, घर है, पुत्र हैं, पुत्र वधुएं हैं, धन-वैभव है और मान-सम्मान है, बस इसी को भगवान की दया मानकर संतोष से जीवन व्यतीत करते हैं, किन्तु आँखे बंद होने पर क्या होगा? मैं कहाँ जाऊँगा? इसका कोई विचार नहीं करता। महापुरुष कहते हैं कि जहाँ भगवान की ऐसी दया है, तो अधिक से अधिक धर्म भी करना चाहिए। शालिभद्र को क्या कमी थी? मनुष्य होने पर भी दैवी भोगों को भोगते हुए भी उनको इस सुख में कमी दिखाई दी। इसीलिए तो भगवान् की वाणी सुनते ही निकल पड़े।

संसार दुःख रूप है। उसके कारण भी दुःख रूप और उसका फल भी दुःख रूप होता है। इस दुःखरूपी संसार में जो सुख प्राप्त करना चाहते हो तो धर्म की शरण में जाओ किन्तु धर्म के लिए भी योग्यता चाहिए।

धर्म के योग्य श्रावक का २१ वाँ गुण है लब्धलक्ष्य....

मनुष्य को सामान्य वाणी में भी लक्ष्य बांधकर चलना पड़ता है। घर के बाहर निकलते ही यदि लक्ष्य न बांधा हो तो कौनसी दिशा में जाओगे? जाने का मुम्बई हो और गाड़ी को कच्छ की तरफ दौड़ाओगे, तो क्या मिलेगा? केवल क्लेश ही मिलेगा न। दिन के सामान्य व्यवहार में भी लक्ष्य बांधकर जीने का होता है, जो जीवन में सच्चा लक्ष्य बांधे बिना ही जीवन पूर्ण कर दें तो अन्त में क्या मिलेगा? सारी जिन्दगी क्लेश-युक्त जीवन और अन्त दुर्गति।

हमारा लक्ष्य कौनसा है? पैसा कमाने का, मान कमाने का, इज्जत कमाने का, बस यहीं लक्ष्य में हमारा जीवन रङ्गा हुआ है तो कितने ही सामान्य मनुष्यों का लक्ष्य देखोगे तो इसको पछाड़ना है और इसको मारना है। आज राजकारणों में क्या चल रहा है यही न! एक कुर्सी पर आता है तो दूसरा उसको पछाड़ने का प्रयत्न करता है। पहले उसको आधार देते हैं और फिर खेंच लेते हैं। धन का लक्ष्य मनुष्य को धन तक पहुँचाता है। बहुत से लोग धन अर्जित करने के लिए अमेरिका जाना पड़े तो वहाँ जाने के लिए तैयार हैं। लंदन जाते हैं, अफ्रीका जाते हैं क्योंकि उन्होंने अपना लक्ष्य बांध रखा है कि मुझे धन कमाना है। टाटा, बिरला के समान बनना है। लक्ष्य बांधने के पश्चात् मनुष्य उस दिशा में गति करता है। धन कमाओ इसके लिए ना नहीं हैं क्योंकि धन होगा तो निश्चिन्त होकर धर्म कर सकोगे। इसीलिए **जयवीयराय सूत्र** में भगवान् से इष्टफल सिद्धि की याचना की जाती है किन्तु यह इष्टफल केवल तिजोरी भरने के लिए नहीं पेट भरने के लिए है। संतोष होना चाहिए, संतोष के बिना कभी भी तुम्हारी इच्छाएं रुक नहीं सकती।

सफल होने के लिए पाँच कारण

कोई भी लक्ष्य बांधों तो उसमें सफल होने के लिए पाँच वस्तुएं जरूर याद रखें। पहला **प्रणिधान** - प्रणिधान अर्थात् संकल्प, यह मुझे प्राप्त करना है। तुम्हारा यह संकल्प है कि मुझे किसी भी प्रकार धन प्राप्त

करना है। फिर वह शराब का धन्धा हो या माँस का धन्धा हो करने के लिए तैयार रहते हों। **मटन टेलो** जैसा सुन्दर नाम रखकर भी धन कमाते हैं क्योंकि ध्यान ही धन का है। किसी को कंचन का, किसी को कामिनी का, किसी को कीर्त्ति का, किसी को काया का और किसी को कुटुम्ब का। इस प्रकार किसी न किसी संकल्प में यह जगत् पड़ा हुआ है। महापुरुष कहते हैं कि दुनिया के प्रणिधान छोड़कर उच्च में उच्च विचारों का, उच्च कार्यों का और सद्गति का प्रणिधान करो। किसी भी कार्य का प्रारम्भ करो तो उसे धैर्य के साथ पूर्ण करना चाहिए। कार्य का आरम्भ ही नहीं करना यह बुद्धि का पहला लक्षण है किन्तु आरम्भ करने के बाद उसको पूर्ण करना ही चाहिए।

दूसरी प्रवृत्ति - प्रणिधान के बाद प्रवृत्ति को करनी ही पड़ती है न! परिश्रम के बिना कोई भी कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। कोई भी प्रवृत्ति प्रारम्भ करो तो विघ्न तो आते ही हैं। चाहे छोटी से छोटी प्रवृत्ति ही क्यों न हो।

विघ्नजय - विघ्नों को पार करेंगे तभी सफलता मिलेगी। अधिकांशतः मनुष्य कार्य शुरु करते हैं किन्तु विघ्न आते ही रुक जाते हैं। हमने नवपद की ओली प्रारम्भ की.... एक आयम्बिल किया, सिर दुःखने लगा, वमन हुआ.... विघ्न आए, दूसरे दिन पारणा कर लिया। कितने ही लोग विघ्न आने पर प्रारम्भ की हुई प्रवृत्ति को छोड़ देते हैं।

कार्यसिद्धि - विघ्न पर विजय हो जाने पर कार्य की सिद्धि हो जाती है।

विनियोग - अर्थात् दूसरे को उपदेश दें तो वह उसे स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाए।

इन पाँच प्रकार की भूमिकाओं से कोई भी कार्य करने वाला व्यक्ति प्रवृत्ति करता है तो उसे कार्य की सच्ची सफलता मिलती है। सामान्य कार्यों में भी जो इन पाँच रङ्गमंच में से चलना पड़ता है तो परमात्मा को प्राप्त करने के लिए क्यों नहीं प्रवृत्ति करता?

सन्त कबीर ने एक भजन में लिखा है जब मैं सन्त के मार्ग पर चलने लगा तब घर के सज्जनों ने और लोगों ने बहुत विरोध किया। कबीर बिगड़ गया है, कबीर बिगड़ गया है.... सब लोग बोलने लगे। तब कबीर ने एक भजन बनाया।

कबीरा बिगड़ गया, कबीरा बिगड़ गया
छाछ के संग से दूध भी बिगड़ा,
बिगड़वा बिगड़वा में घृत तो भयोरी....
पारस के संग से लोहा भी बिगड़ा,
बिगड़वा बिगड़वा में कंचन तो भयोरी....
साधु के संग से कबीरा भी बिगड़ा,
बिगड़वा बिगड़वा में सन्त तो भयोरी

अर्थात् छाछ के संग से दूध बिगड़ा और बिगड़ने के बाद हाथ में क्या आया? मक्खन! पारसमणि के संग से लोह खण्ड बिगड़ा किन्तु कंचन तो हाथ में आया न! वैसे ही साधु की संगति से कबीर भले ही बिगड़ा हो किन्तु बिगड़ने के बाद सन्त तो हुआ न! कैसी मस्ती....! जीवन में संकल्प करोगे, लक्ष्य बांधोंगे तो ही प्रभु प्राप्त होंगे।

दूसरे के पास से कुछ भी लेने की इच्छा वाला मनुष्य हल्का कहलाता है। आश्चर्य है कि ऐसे हल्के (स्पृहावाले) मनुष्य भव समुद्र में (हल्के होने पर भी) डूब जाते हैं।

★

हांसी करे घरडां तणी, समजण विनाना मशकरा।
समझे नहीं के काल करशे, आपणी पण आ दशा॥

दीपावली पर्व

कार्तिक वदी अमावस

प्रत्येक वर्ष का पहला पर्व याने प्रारम्भ होने वाला वर्ष (नया साल) और अन्तिम पर्व दीपावली। जैन धर्म के झण्डे को लहराने वाला.... अनेक अनार्यों को धर्म में लाने वाला और उनको स्थिर करने के लिए अनेक मन्दिर तथा अनेक जिनबिम्बों को भराने वाला सम्राट सम्प्रति आर्य स्थूलिभद्र महाराज के शिष्य आर्य सुहस्तिसूरि महाराज को पूछते हैं कि भगवन्, पर्युषण आदि पर्व तो बराबर है किन्तु दीवाली पर्व कैसे बना? आचार्य भगवन् कहते हैं सुनो –

घोर उपसर्गों को सहन करने के बाद केवलज्ञान प्राप्त कर प्रभु तीस वर्ष तक विचरण करते रहे। अपना अन्तिम समय निकट जानकर पावापुरी में हस्तिपाल राजा की सभा में चातुर्मास रहे थे। वहाँ भगवान् अखण्ड १६ प्रहर देशना देते थे। अन्तिम दिनों में मनुष्य का शरीर भी शिथिल हो जाता है फिर भी परोपकारिता के गुण को लेकर भगवान् अखण्ड वाणी की धारा बरसाते हैं। आज जिस प्रकार लोकशाही है उसी प्रकार उस समय में गणतन्त्र चलता था। गणतन्त्र के बड़े-बड़े राजाओं की सभा जुड़ती है। १८ देश के राजा वहाँ आए हुए थे। उनको सूचना मिली कि भगवान् देशना दे रहे हैं। सभी राजागण बैठक छोड़कर भगवान् की देशना सुनने के लिए आते हैं। भगवान की वाणी में इतना माधुर्य होता है कि उठने का मन ही नहीं होता। १६ प्रहर तक एक स्थान पर बैठना कोई सहज नहीं है। तुम्हें तो एक सामायिक में भी बैठने पर कंटाला आता है। कब पूरी हो इसकी राह देखते हो। यह तो भगवान् की वाणी का प्रभाव था। भगवान को चौविहार छट्ठ की तपश्चर्या थी। पावापुरी में आज भी हजारों लोग सम्मिलित होकर भगवान् की चरण पादुका के सामने सारी रात बैठकर जाप करते हैं। यह देखने पर यही प्रतीत होता है कि आज

भी हमारा भगवान् महावीर के प्रति कितना अनुराग है। सुना है कि आज के दिन भगवान् महावीर के निर्वाण के समय छत्र घूमता है। लोग चौविहार छट्ठ की तपश्चर्या भी करते हैं।

उस समय पुण्यपाल राजा भगवान को वन्दन करने के लिए जाते हैं। उनको आठ स्वप्न आए थे। उन स्वप्नों का फल जानने के लिए स्वप्नों को कहकर उसका फल पूछते हैं।

पुण्यपाल राजा के आठ स्वप्न-

१. पहला स्वप्न - पहले स्वप्न में मैंने भग्न और टूटी हुई तथा जीर्णशीर्ण हस्तिशाला में हाथी को खड़ा देखा। भगवान् कहते हैं - हीनकाल आ रहा है। जीर्ण हस्तिशाला के समान गृहस्थाश्रम होगा। भग्न और टूटी हुई किसी पाठशाला के मकान के समान गृहस्थ का जीवन होगा। उसमें गृहस्थ रूपी हाथी पड़ा रहेगा। वैसे तो हाथी की हस्तिशाला बहुत भव्य होती है, वह जीर्णशाला में नहीं रहता, किन्तु गृहस्थी रूपी हाथी ऐसी जीर्णशाला में दु:ख को सुख मानकर पड़ा रहेगा। साधु सन्त चाहे जितना भी उपदेश दें किन्तु संसार की ओर विरक्ति जागृत नहीं होगी। आज हम देखते हैं न! भगवान् का वचन अक्षरश:सत्य है। **संसारदावानलदाहनीरं** रोज बोलते हैं किन्तु संसार दावानल के समान लगता है क्या! धर्मस्थानों-उपाश्रयों में जाना अच्छा लगता है क्या? स्वयं की छोटी सी कोठड़ी में जहाँ एक ओर चूहे चू-चू करते हों.... दूसरी ओर लड़के रो रहे हों.... गन्ध देने वाली रजाई हो तब भी उसी में सोना पसंद करते हैं। यदि उन्हें कहें कि भाई! रात्रि-पौषध करो.... तो स्पष्टत: ना कह देते हैं.... ऐसे विशाल उपाश्रय में उनको नींद नहीं आती है.... करोड़पति लोग भी हमारे चरणों में मस्तक रखकर रोते हैं। साधु जीवन स्वीकार करने पर सभी प्रश्न एक साथ ही समाप्त हो जाएंगे, किन्तु स्वीकार करना अच्छा नहीं लगता। पाँचवे आरे में संसार का स्वरूप कैसा होगा यह इस स्वप्न से सूचित होता है।

२. दूसरा स्वप्न - दूसरे स्वप्न में चंचल उछलकूद करता हुआ बन्दर देखा। भगवान कहते हैं - पाँचवें आरे में जीव चंचल होंगे, ज्ञान और क्रिया में उनका आदर भाव नहीं होगा, किसी भी प्रवृत्ति में उनका मन स्थिर नहीं होगा। आज हम देखते हैं कि व्याख्यान सुनते हैं तो कब व्याख्यान पूरा होगा इसकी राह देखते हैं। दादा की यात्रा करने जाएंगे तो सुबह ऊपर चढ़ेंगे दोपहर को उतरेंगे और सांझ को भाग जाएंगे। मन्दिर में भी पूजा के समय स्थिरता कहाँ होती है। इसी चंचलता के कारण स्थिर चित्त से आराधना नहीं कर सकते। भगवान् महावीर का मार्ग सीधा-साधा होने पर भी चंचलता के कारण भिन्न-भिन्न प्ररुपणाओं से किसी भी विपरीत मार्ग पर चला जाता है।

३. तीसरा स्वप्न - तीसरे स्वप्न में दूध झरने वाला वृक्ष कांटो से घिरा हुआ देखा। भगवान् कहते हैं कि शासन की उन्नति करने वाले, ज्ञान और क्रिया की भक्ति करने वाले, सात क्षेत्रों में द्रव्य का व्यय करने वाले गुणवान ऐसे गृहस्थ, संयमी साधुओं को वेशधारी, अहंकारी और गुणद्वेषि मनुष्य चारो ओर से घेरे रहेंगे। दूध झरता वृक्ष जैसे कांटो से घेरा रहता है, वैसे ही शासन के अच्छे-अच्छे मनुष्य भी कंटक के समान मनुष्यों से घिरे रहेंगे।

आज हम देखते हैं कि अच्छे मनुष्यों पर विघ्न करने वाले अनेक लोग हैं। अच्छे मनुष्य किनारे पड़ गए हैं। पाखण्डी और दम्भी लोग पूजे जाते हैं। अच्छे मनुष्यों को भी विपरीत मार्ग पर ले जाने वाले उसके दिमाग को भ्रमित करने वाले सम्प्रदाय और मनुष्यों का बोलबाला है।

एक सत्य घटना:-

सावरकुंडला के निवासी और घाटकोपर में रहने वाले एक पक्के महाश्रावक थे। ये बहुत वर्षों पहले की बात है, उस समय में इतने उपाश्रय या सुविधाएं नहीं थी.... यह श्रावक साधुजनों के उपयोगी प्रत्येक वस्तुएं, पाट, पाटला, ज्ञान के साधन, पुस्तकों के भण्डार और ज्ञान-दर्शन-चारित्र के समस्त उपकरण अपने यहाँ रखते थे। स्वयं के गाँव सावरकुंडला में

भगवान् को विराजमान भी किया था। धर्मिष्ठ, नम्र और उदार श्रावकों में अग्रगण्य थे। ऐसा धर्मनिष्ठ श्रावक भी कान्हजी स्वामी के सम्पर्क में आया, उसके विचार बदल गए। समस्त उपकरणों और ज्ञान भण्डार को उन्होंने अर्पित कर दिया। इतना ही नहीं किन्तु उनका दिमाग इतना घूम गया कि उन्हें लगने लगा कि मैंने भगवान को विराजमान कर बहुत बड़ी भूल की है। घूमने को निकलते तो कुत्ते को साथ लेकर निकलते! उनका सारा जीवन ही भ्रमित हो गया। ऐसे अच्छे-अच्छे श्रावक भी धर्म से विमुख बन जाएंगे। यह तीसरे स्वप्न का फल है।

४. चौथा स्वप्न - चौथे स्वप्न में कौओं को देखा। वे साफ पानी से भरी हुई बावड़ी को छोड़कर अशुचि वाले पानी से भरे हुए छोटे गड्ढे पर जाकर बैठ गए। भगवान् कहते हैं कि पञ्चम काल में अच्छे से अच्छे साधु भी अपने वृद्ध वर्ग को छोड़कर दूसरों के साथ चले जाएंगे। यहाँ तो यावज्जीव गुरुकुलवास में ही रहने का है। उसके स्थान पर गुरु को छोड़कर अपनी दुकानदारी जमाएंगे। गुरु की उपस्थिति में आगे बढ़ने का अवसर नहीं है इसलिए गुरु से अलग रहकर विचरण करेंगे। श्रावक भी उत्तम में उत्तम ज्ञान जहाँ परोसने में आता हो उसको छोड़कर अलीबाबा चालीस चोर जैसी वार्ताएं सुनने को पहुँच जाएंगे। एक युग था। श्रावक को पूछा जाता था कि क्या-क्या सुना है? तो वह कहता कि अमुक साधु महाराज के पास से मैंने आचारांग सूत्र सुना है, अमुक महाराज के पास से उत्तराध्ययन सुना है और अमुक के पास से भगवती सूत्र सुना है। आज शास्त्रों की बातें सुनने वाले बहुत कम हैं और सुनाने वाले भी कम हैं। सबको हास्यरस चाहिए।

५. पाँचवाँ स्वप्न - पाँचवें स्वप्न में मरे हुए सिंह को देखकर लोग भयभीत होते हैं। भगवान् कहते हैं कि जिनेश्वर भगवान् का दर्शन सिंह के समान है। आज वह भले ही नष्ट हो रहा हो, भंग होने पर भी भरुच कहलाता है। मरा हुआ भी सिंह ही है न! जैन दर्शन का नवदीक्षित साधु और अन्य दर्शन का बहुत पुराना संन्यासी यदि दोनों की तुलना की

जाए तो आसमान और जमीन का फर्क पड़ता है। जैन दर्शन भले ही मृत सिंह के समान हो किन्तु उसकी तुलना में कोई भी दर्शन नहीं आ सकता। दूसरे धर्मगुरुओं के पास जाकर पूछोगे तो कहेंगे तुम्हारा आचार बहुत कठोर है। रात में खाना-पीना नहीं, खुले पैर चलना, कोई भी वस्तु को स्वयं पकाना नहीं.... कितना दुष्कर है। परदर्शन को भय देने वाला है। मुट्ठी जितना जैन समाज है, तब भी उसकी तुलना में कोई भी समाज नहीं आ सकता। एक भी जैन भेड़, बकरी या गाय-भैंस रखता है क्या? नहीं, किन्तु उनके पीछे करोड़ो रुपये खर्च करते हैं न! पांजरापोल चलाते हैं। दूसरे कहीं भी पांजरापोल देखने को मिलती है क्या? इतना छोटा समाज होते हुए भी सभी समाजों में इसका महत्त्व है। इस समाज के दान, शील, तप और भाव उत्तम कोटि के हैं।

६. छट्ठा स्वप्न - छट्ठे स्वप्न में कमल की उत्पत्ति सरोवर में होती है। उसके स्थान पर कमल की उत्पत्ति मलिन कचरे में देखी।

भगवान् कहते हैं कि काल ऐसा गिरा हुआ आएगा कि महापुरुष उत्तम कुल में जन्म लेने के स्थान पर मध्यम अथवा नीच कुल में जन्म लेंगे। आज देखो न बड़े-बड़े धनवान हैं, वे धन पर लेटते हैं और आकाश में उड़ते रहते हैं। धर्म तो मध्यम वर्ग के पास ही रहा है ना! अधिकांशतः सन्त पुरुषों को देखोगे तो वे मध्यम अथवा नीच कुल में ही मिलेंगे। उत्तम कुल में तो सभी लोग भोगपरायण हो गए हैं, आसक्ति परायण बन गए हैं। यह काल का ही प्रभाव है न! देखोगे तो, पूर्व में तीर्थंकर इत्यादि उच्च कुल से ही आते थे!

७. साँतवाँ स्वप्न - साँतवें स्वप्न में बंजर भूमि में किसान को बीज बोते देखा। पात्र और अपात्र का विचार किए बिना ही दान देने वाला वर्ग होगा। किसी समय में लोग नर्तकियों को लाखों रुपया दान देते थे।

८. आँठवाँ स्वप्न - आँठवें स्वप्न में आभाहीन स्वर्ण का कलश देखा। कलश पर मिट्टी जमी हुई थी। ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना करने वाले साधु पुरुषों को छोड़कर लोग सामान्य साधु की पूजा

करेंगे। उनके उज्ज्वल कार्यों से समाज रंजित होगा। गीतार्थ एक कोने में बैठे रहेंगे। उनको भी इन हीन आचरण वालों के साथ मेल-जोल रखना पड़ेगा। गोरजियों का शासन चलता था उस समय साधु भी उनकी सेवा में रहते थे। पूज्य मणिविजयजी दादा के पहले गोरजियों का शासन था। पालकी में बैठते थे, ठाठ-बाट से रहते थे। आज भी देखो न, गुरु ज्ञानी और संयमी होने पर भी यदि शिष्य वक्ता हो तो शिष्य के आधार पर ही गुरु को जीना पड़ता है। शिष्य के हाथ में ही संचालन रहता है। कहते हैं कि अस्थिर चित्त वाले मनुष्य अधिक हों और समझदार मनुष्य दो-चार ही हो तो, अस्थिर चित्त वालों के साथ ही रहना पड़ता है।

जैसे के साथ तैसा

पृथ्वीपुर नगर में पूर्णभद्र नाम का राजा था। उसका सुबुद्धि नाम का मन्त्री था। एक बार राजसभा में नैमित्तिक आया। मन्त्री ने पूछा - भविष्यकाल कैसा होगा? ज्ञान के आधार से नैमित्तिक ने कहा - मन्त्रीश्वर! आज से एक महीने के भीतर वर्षा होगी और उस वर्षा का पानी पीने से लोग पागल हो जाएंगे। कितने ही दिनों बाद दूसरी वर्षा होगी उस वर्षा का पानी पीने से सब लोग निरोगी हो जाएंगे। सब लोग सावधान नहीं रहते हैं। वर्षा हुई, लोगों ने वह पानी पिया, सब लोग पागल हो गये। राजा और मन्त्री दोनों सावधान थे इसलिए उन्होंने वह पानी नहीं पिया। इस कारण से वे दोनों श्रेष्ठ और समझदार रहे। पागलों का समूह राजसभा में नाचते हुए आया। राजा और मन्त्री स्वस्थ बैठे थे। पागलों को ऐसा लगा कि यह राजा और मन्त्री दोनों ही पागल है इसीलिए चुपचाप बैठे हैं। अतःएव उनको मारकर निकाल दें? मन्त्री बुद्धिमान था। उसने राजा से कहा - राजन्! आप भी नाचने लगो, नहीं तो यह लोग अपने को अच्छी तरह से पीटेंगे। पागलों के साथ पागलों जैसा व्यवहार किया। दोबारा वर्षा हुई, लोगों ने उस पानी को पिया, सब लोग समझदार बन गए। अन्त में उनको अपनी गलती का अहसास हुआ। आज देखो न, तुम भी, जो चलता है, उसी में सम्मिलित होना पड़ता है। प्रजा के जो सच्चे हितेशी

होते हैं उसको लोग देश के शत्रु के समान समझते हैं। एक ने कहा इसलिए सब उसी के अनुसार बोलने लगते हैं।

पुण्यपाल राजा को उनके आठ स्वप्नों का फल भगवान् ने बतलाया। स्वप्नों का फल सुनते ही पुण्यपाल राजा ने दीक्षा ग्रहण की और मोक्ष के अधिकारी बन गए इतना जानने पर तुम्हें तनिक भी वैराग्य आता है क्या?

पाँचवें आरे का स्वरूप

भगवान् की देशना सुनकर गौतमस्वामी को आश्चर्य होता है। गौतमस्वामी पूछते हैं - भगवन्! पाँचवाँ आरा कैसा होगा? भगवान कहते हैं - हे गौतम! पाँचवें आरे के लोग निर्दयी होंगे। छोटी-छोटी सी बातों में खून करने लगेंगे। भद्रीक लोगों को ठगने वाले होंगे। पाप जन्य स्थानों पर खड़े रहेंगे, कत्लखाने होंगे, दारु की दुकानें होंगी, लोग अनाचारी और अन्यायी बनेंगे, रिश्वत और भ्रष्टाचार खूब बढ़ेगा, कुलीन स्त्रियाँ लज्जाहीन होंगी, वेश्याओं की तरह भटकती रहेंगी। लक्ष्मी भोगियों और कृपणों के पास रहेगी-दान दाताओं के पास नहीं। उत्तम और कुलीन मनुष्यों को नीच कोटि के आदमियों की सेवा करनी पड़ेगी। ऐसा पाँचवें आरे का अन्तिम स्वरूप है। पाँचवाँ आरा २१,००० वर्ष तक रहेगा।

छट्ठे आरे का स्वरूप

छट्ठा आरा तो पाँचवें आरे से भी भयंकर आएगा। उसमें मनुष्य की आयु १६ वर्ष की ही होगी। स्त्री ६ वर्ष में गर्भ धारण करेगी। एक हाथ की काया होगी। अग्नि की भीषण वर्षा होने से लोग रात्रि को खाने की खोज के लिए निकलेंगे। मत्स्य इत्यादि जीवों को सेक-सेक कर खाएंगे। दु:ख का साम्राज्य फैला हुआ रहेगा। मनुष्य के शरीर में से अत्यन्त दुर्गन्ध आएगी और प्राय: जीव मरकर दुर्गति में जाएंगे। यह छट्ठा आरा भी २१,००० वर्ष तक रहेगा। उसके बाद उत्सर्पिणी काल आएगा। उसका पहला आरा छट्ठे आरे के समान, दूसरा आरा पाँचवें आरे के समान,

तीसरा आरा चौथे आरे के समान होगा। इस आरे के अन्त में तीर्थंकर जन्म लेंगे। इस प्रकार भविष्यकाल का स्वरूप बताया। भगवान् ने देखा कि जीवन का अन्तिम क्षण आ रहा है। गौतम का मेरे ऊपर अत्यधिक अनुराग है, अतः इसे दूर भेजना चाहिए। इस प्रकार विचार कर भगवान् गौतम स्वामी को देव शर्मा को प्रतिबोध देने के लिए भेजते हैं। सामान्यतः तो भगवान से पूछने पर उतना ही उत्तर मिलता है, किन्तु अन्तिम १६ प्रहर तक कोई पूछे या न पूछे फिर भी इन लोगों को सब कुछ बता देना है। इसी करुणा से भगवान ने प्रश्न किए बिना ही अखण्ड धारा से देशना दी। अमावस्या की पिछली रात है। भगवान समाधि में बैठे हुए हैं अ.... इ.... उ.... ऋ..... लृ.... इतना उच्चरण करें उतने समय की ही समाधि। तत्क्षण ही भगवान की पुण्यात्मा ज्योति में मिल गई। जगत् में से प्रकाश चला गया, चारों और विषाद, दुःख और उद्वेग छा गया। एकत्रित समस्त राजाओं ने सोचा की भाव दीपक चला गया है। अब द्रव्य दीपक का प्रकाश करें। इन विचारों के कारण ही उन लोगों ने दीपकों की ज्योत् जलाई इस प्रकार उसी दिन से दीपावली पर्व प्रकट हुआ।

भगवान् ने चौविहार छट्ठ की तपस्या करके देशना दी थी। इसी कारण आज भी कितने ही महानुभाव चौविहार छट्ठ करके उनका जाप करते हैं। एक ओर भगवान् का निर्वाण और दूसरी तरफ गौतम स्वामी को केवलज्ञान, देव शर्मा को प्रतिबोध देकर पीछे लौटते हुए गौतम स्वामी देवों की दौड़ा-दौड़ देखते हैं और पूछने पर उन्हें ज्ञात होता है कि भगवान् मोक्ष पधार गए हैं। यह सुनते ही उनको मार्मिक आघात लगता है। वीर-वीर की पुकार करते हुए वे वीतराग बन जाते हैं।

विरोधियों को नहीं, विरोध को दूर करो,
शत्रु को नहीं, शत्रुता को दूर करो।

ज्ञान-पञ्चमी

कार्तिक सुदि ५

अज्ञानता से भटकती आत्मा

अनादि काल से आत्मा संसार में भटक रही है। अनन्त काल के कचरों से उसका स्वरूप आच्छादित हो गया है। कॉलेज की पुस्तकें पढ़ने मात्र से यह कचरा दूर नहीं होगा। सम्यक् ज्ञान रूपी प्रकाश जब फैलता है, तब ही ज्ञान होता है। काम, क्रोध, मान, माया, आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा, परिग्रह संज्ञा कैसी और कितनी है। जब तक इस कूड़े-करकट को दूर नहीं करेंगे तब तक सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा को हम नहीं पहचान सकेंगे। कचरे का ढेर लग गया हो और उसको निकालते-निकालते थक भी गये हों किन्तु निकालने की शुरुआत करेंगे तो थोड़ा बहुत भी निकलेगा ही न! कचरा है, इसका ज्ञान होने पर ही तो निकालने की प्रक्रिया प्रारम्भ होगी।

कोई मकान कई वर्षों से बन्द पड़ा है। उसको साफ करना है? क्या करना चाहिए? घोर अंधेरे में उसको साफ किया जा सकता है क्या? अंधेरे में क्या दिखाई देगा? प्रकाश चाहिए न! प्रकाश बिना अच्छी तरह सफाई नहीं हो सकती।

अंधेरे को दूर करता हुआ कुटुम्ब

एक अज्ञानी परिवार है। स्वाभाविक रूप से रात्रि के समय घर में अंधेरा छा जाता है। वह कुटुम्ब ऐसा मानता था कि हमारे यहाँ आकर कोई अंधेरा छोड़ जाता है। क्या करना? यह अंधेरा कैसे दूर हो? संध्या के समय घर के समस्त सदस्य इकट्ठे होकर झाड़ू और टोकरा लेकर उसके पीछे पड़ गए.... अंधेरे को दूर करने के लिए।

सारी रात वे लोग यही प्रवृत्ति करते रहे। सुबह होने पर वे लोग मानने लगे कि हमने सारे अंधेरे को ढूंढ-ढूंढकर बाहर फेंक दिया है। यह उनकी दैनिक प्रवृत्ति थी। ऐसे समय में उनके बड़े लड़के का विवाह हुआ। घर में बहू आई। संध्या होते ही सब लोग झाड़ू और टोकरी लेकर शुरू हो गये। बहू को भी साथ तो देना पड़े न! इसलिए वह भी उसमें सम्मिलित हो गई। बहू ने विचार किया कि इन मूर्खों को यह भी ज्ञान नहीं है कि अंधेरे को कैसे निकाला जाए। प्रकाश होने पर ही अंधेरा चला जाता है.... दूसरे दिन संध्या समय उसने घर के बड़ों को कहा कि आज तुम लोग निश्चिन्त होकर सो जाओ मैं अकेली ही अंधेरे को भगा दूंगी। सब ने कहा - नहीं! तेरे अकेले से इसको नहीं फेंका जा सकता। बहू ने भी जिद्द पकड़ी कि मैं किसी को इसमें हाथ नहीं बटाने दूंगी। घर का सारा कामकाज बहू को ही करना होता है। तुमने आज तक सब-कुछ किया, अब मेरा कर्त्तव्य है कि आप लोगों को मैं शान्ति प्रदान करूं। बड़ी कठिनाई से सबको तैयार किया। साथ में यह एक शर्त भी रख दी कि तुम्हारे में से कोई भी जागता नहीं रहेगा। सभी को सिर ढककर सोना होगा। क्योंकि मैं नई बहू हूँ, घूँघट निकालकर काम करना मुझे पसंद नहीं है। इसलिए आप लोगों को सिर ढककर ही सोना है। उस चद्दर को दूर नहीं करना है। सब लोगों को सुला दिया और स्वयं भी सो गई। सुबह होते ही वह सबसे पहले उठी और सबको जगाया। उठो, अंधेरे को बाहर निकाल दिया है। सब लोग उठे, आश्चर्य हुआ, बहू को बहुत-बहुत धन्यवाद दिया। इस प्रकार दो-तीन दिन बीत जाने पर उसने सबको समझाया कि इस अंधेरे को बाहर नहीं निकाला जा सकता.... यह तो जब प्रकाश आएगा तब स्वयं ही चला जाएगा। यह दृष्टान्त हम पर भी लागू होता है। हम भी दुःख को दूर फेंक कर सुःख प्राप्त करने के लिए व्यर्थ प्रयास करते हैं, और दुःख में

ही सुख की खोज करते हैं। सुख तो आत्मा में है। पहले तो लाखों करोड़ो रुपये इकट्ठे करने के लिए दौड़धाम मचाते हैं और दुःख को इकट्ठा करते हैं, और फिर इन लाखों करोड़ों रुपये के रक्षण करने में भी दुःखी इस प्रकार दुःख को ही न्योता देते हैं। परिग्रह संज्ञा के कारण ही हम दौड़ते हैं और इसी अंधकार को दूर करने की समान प्रवृत्ति भी करते हैं! यह सब धन के पीछे दौड़ते हैं। क्या खाने को समाप्त हो गया है इसलिए दौड़ रहे हैं? नहीं इकट्ठा करने के लिए दौड़ रहे हैं। केवल स्वयं के अहंकार का पोषण करने के लिए ही। इन सब कचरों को दूर करने लगोगे तो घर साफ सुथरा हो जाएगा।

दीपावली का तप करके प्रसन्न होते हो या खाजे पुड़ी, मिठाई खाकर राजी होते हो? तप में सुख की कल्पना भी नहीं। खाने में सुख की कल्पना है। पटाखें चलाने में आनन्द मानते हैं। बेचारे निर्दोष पक्षी बैठे हुए हैं उनको उड़ाने में आनन्द आता हैं। यह सब कुछ अज्ञान जनित ही सुख है न! ज़ेब काटने वाला नए वर्ष के पहले दिन किसी की जेब काटता है तो वह मानता है कि आज मुझे मंगलकारी शकुन हुआ है। यह सब सुख की भ्रांति है।

सम्यक् ज्ञान प्रकाश है। एक अमेरिकन भारत में आया। चारों तरफ वह कुछ खोज रहा था। एक मानव ने उससे पूछा - भाई क्या खोज रहे हो? क्या भारत में कोई कारखाना खड़ा करना है? नहीं भाई, मेरे पास तो अपार धन है, मैं तो केवल शांति की खोज कर रहा हूँ। **I have plenty of money, but not the peace of mind.**

समस्त क्रियाओं का मूल श्रद्धा है....

यदि सम्यक्त्व न होगा तो कोई भी क्रिया फलदायिनी होगी क्या? तप-अहिंसा आदि में सम्यक्त्व होने पर ही वे क्रियाएं सफल होती है। पूजन पढ़ाते हैं, किन्तु श्रद्धा रहित होकर पढ़ाते हैं। तो क्या फल मिलेगा?

पूंजी में से दस-बीस हजार कम कर दिए। अन्य किसी प्रकार का फायदा हुआ क्या.... इस वर्ष का यह प्रथम पर्व आकर खड़ा है.... पहले गौतमस्वामी को केवलज्ञान और फिर आता है ज्ञानपञ्चमी का पर्व। संवत्सरी के समान ही ज्ञान पञ्चमी की महिमा है.... हम तो ज्ञान को सजा कर पूजन करते हैं, खमासणा देते हैं और काऊसग्ग करते हैं, इतने से ही हमारी पूजा पूर्ण हो जाती है। यह तो बाह्य पूजा हुई लेकिन हमने प्रतिवर्ष ज्ञान के लिए क्या और कैसा उद्यम किया। आजकल माता-पिता अपने छोटे लड़के को मार-मारकर धमकी देकर स्कूल में छोड़ आते हैं। यह सोचकर की यह पढ़ेगा नहीं तो इसका क्या होगा.... संसार को सुखी बनाने के लिए ज्ञान आवश्यक है। यदि तुम्हें ऐसा लगता है तो भवोभव को सुखी करने के लिए सम्यक् ज्ञान की कितनी आवश्यकता है? ज्ञान पञ्चमी के दिन दो वस्तुएं समझनी है। १. ज्ञान की आशातना और २. ज्ञानी की आशातना से बचो। ज्ञान की बहुत आशातना हो रही है। भयंकर आशातना-अवहेलना हो रही है। इसी कारण प्राणी अनेक यातनाओं से पीड़ित होता है। पत्रिका में देखो तो भगवान का फोटो और गुरु महाराज का फोटो और फिर ये फोटो पैरों से रौंदे जाते हैं। फोटुओं को फाड़ नहीं सकते। पानी में विसर्जन करते हैं तो भी आशातना होती ही है। आकाश फटे उसे कहाँ-कहाँ सांधे? ज्ञान का बहुमान करो। प्रजा ने सरकार को शस्त्र अर्पित किए। प्रजा निर्बल बनी और साधुओं को शास्त्र सौंपे। मन्दिर की तिजोरी में रहे हुए नोटों की कीमत अधिक है या उसमें रहे हुए आभूषणों की कीमत अधिक है या ज्ञान भण्डारों की कीमत अधिक है। महाराजा कुमारपाल ने ७० वर्ष की अवस्था में भी संस्कृत पढ़ना प्रारम्भ किया था और संस्कृत में काव्य लिखते थे। **ज्ञान यह आत्मा का मुख्य गुण है।**

भक्ष-अभक्ष्य का ध्यान ज्ञान से ही आता है न!

रत्नाकरसूरि महाराज

एक गाँव में एक आचार्य थे। वहाँ कोई व्यापारी श्रावक व्यापार करने के लिए आया। श्रावकों का नियम होता है कि श्रावक जहाँ-जहाँ जाता है वहाँ देवगुरु के दर्शन करने के लिए अवश्य जाता है। श्रावक का नाम सुधन था। व्याख्यान सुनने जाता है। आचार्य महाराज देशना देते हैं। विशिष्ट ज्ञानी हैं। इस कारण देशना भी रस युक्त होती है। सुधन वहाँ रुक जाता है। सामायिक लेकर बैठा है। आचार्य महाराज प्रतिलेखना प्रारम्भ करते हैं। आचार्य महाराज के पास में हीरा माणेक की एक थैली थी। प्रतिलेखना करते हुए उस थैली को भी खोलकर अच्छी तरह से देखते हैं? कुछ कमी-पेशी तो नहीं थी। फिर उस पोटली को बांधकर तिजोरी में रख देते हैं। यह सुधन विचार करता है कि यह ऐसा क्यों? ऐसे ज्ञानी महात्मा के पास यह क्या? आचार्य महाराज उसको उपदेश माला के श्लोकों का अर्थ समझाते हैं। उसमें एक श्लोक आता है, उस श्लोक का सारांश यह होता है कि सब अनर्थों का मूल धन है। यह वाक्य सुधन के गले नहीं उतरता है। आचार्य महाराज अनेक उदाहरण - दृष्टान्त देकर समझाते हैं किन्तु छः-छः महीने तक समझने पर भी सुधन के गले में यह बात नहीं उतरती है। आचार्य महाराज अत्यन्त ज्ञानी थे अतः विचार करते हैं कि शास्त्र की यह बात इसके गले क्यों नहीं उतरती। विचार करते हुए उन्हें सद्ज्ञान हुआ कि अरे, मेरे पास ही हीरा आदि है। मेरे जीवन में जब तक आचरण में इस गाथा का रहस्य नहीं आएगा तो फिर उसका दूसरे पर कैसे प्रभाव पड़ेगा? अतः दूसरे दिन जिस समय सुधन आया उसी समय सुधन के देखते-देखते ही हीरा, मोती इत्यादि का चूरा कर उसको राख की कुंडी में फेंकने लगे। सुधन कहता है - अरे, आप यह क्या कर रहे हैं? आचार्य महाराज कहते हैं - तुझे उस गाथा का अर्थ समझा रहा हूँ।

सुधन भी ज्ञानी था। उसने कहा - महाराज! अब सब कुछ मेरी समझ में आ गया है। यदि इस तरह ज्ञान हो तो, मनुष्य के आचरण में भी कभी आ सकता है। ये सूरि भगवन्त अन्य कोई नहीं किन्तु रत्नाकर पच्चीसी के प्रणेता रत्नाकरसूरिजी महाराज थे।

ज्ञान पञ्चमी के दिन सौ-पचास रुपयों से ज्ञान की पूजा करेंगे; किन्तु उसके भीतर क्या लिखा हुआ है उसको देखने का अवकाश भी नहीं है।

जीव में जीव जैसा दर्शन, याने	- बोधि
जीव में शिव जैसा दर्शन, याने	- समाधि
शिव में शिव जैसा दर्शन, याने	- सिद्धि